माध्यमिक पाठ्यक्रम

# भारतीय दर्शन-247

## पुस्तक-1

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

# माध्यमिक स्तर

## भारतीय दर्शन-247

## सलाहकार समिति

**प्रो. सरोज शर्मा**
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

**डॉ. राजीव कुमार सिंह**
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

## पाठ्यक्रम निर्माण समिति

**समिति अध्यक्ष**
**डॉ. के. इ. देवनाथन्**
कुलपति,
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517502 (आन्ध्रप्रदेश)

**समिति उपाध्यक्ष**
**डॉ. दिलीप पण्डा**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर:, कलिकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

**डॉ. रामनाथ झा**
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

**डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल**
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

**श्री सन्तु कुमार पान**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

**आचार्य प्रद्युम्न**
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

**आचार्य फूलचन्द**
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावडा-711202 (प. बंगाल)

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

## पाठ्यक्रम-समन्वयक

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

# पाठ्यविषय निर्माण समिति

## संपादक मण्डल

**डॉ. वेंकटरमण भट्ट**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय,
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

## पाठ लेखक

**(पाठ 1, 5, 6, 17-24)**
**श्री राहुल गाजि**
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

**(पाठः 8)**
**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

**(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)**
**श्री विष्णुपदपाल**
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावड़ा-711202 (प.बंगाल)

**(पाठः 16)**
**डॉ. दिलीप पण्डा**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कलकत्ता-700035 (प. बंगाल)

## अनुवादक मण्डल

**डॉ. योगेश शर्मा**
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

**डॉ. मुकेश कुमार शर्मा**
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, उस्नोता,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

**श्री पुनीत त्रिपाठी**
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

## रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

**स्वामी हररूपानन्द**
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

**मैसर्स शिवम ग्राफिक्स**
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

# आप से दो बातें ...

## अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

**अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ ( वायुपुराणम् 61.78 )**

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत से शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' नामक से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक है, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बने, देशभक्त हो, और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

**अध्यक्ष**

**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# आप से दो बातें ...

**निदेशकीय वाक्**

**प्रिय पाठक,**

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है की जो गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखे हुये हैं। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि। भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्चतर माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना आवश्यक है।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थो के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

**किं बाहुना विस्तरेण।**

**अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य**

**सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।**

**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥**

**दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।**

**शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥**

**स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।**

**मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥**

**निदेशक ( शैक्षिक )**

**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# आप से दो बातें ...

**समन्वयक वचन**

**प्रिय जिज्ञासु,**

**ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥**
**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हों, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

**अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना**
**ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

**भवत्कल्याणकामी,**
**पाठयक्रम समन्वयक**
**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

## अपने पाठ कैसे पढ़ें!

**भारतीय दर्शन,** माध्यमिक की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

**पाठ का शीर्षक :** इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

**भूमिका :** यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

**उद्देश्य :** प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

**पाठगत प्रश्न :** इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

**आपने क्या सीखा :** यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

**पाठांत प्रश्न :** पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

**उत्तरमाला :** आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

## पुस्तक-1

### दर्शन प्रस्थान परिचय

1. दर्शन का सामान्य परिचय
2. भारतीय विद्या विभाग
3. भारतीय विद्या परिचय-1
4. भारतीय विद्या परिचय-2
5. प्रस्थानत्रयी का श्रुतिप्रस्थान
6. प्रस्थानत्रयी के स्मृति-न्याय प्रस्थान

### नास्तिक दर्शन

7. चार्वाक दर्शन
8. बौद्ध दर्शन
9. आर्हत दर्शन

### आस्तिक दर्शन

10. न्याय दर्शन
11. वैशेषिक दर्शन
12. सांख्य दर्शन
13. योग दर्शन
14. मीमांसा दर्शन
15. वेदान्त दर्शन-1
16. वेदान्त दर्शन-2

## पुस्तक-2

17. अनुबन्ध चतुष्टय
18. निर्गुण ब्रह्म
19. सगुण ब्रह्म
20. अज्ञान
21. जीव
22. अध्यारोप-अपवाद
23. बहिरन्न साधन
24. अन्तरन्न साधन
25. मोक्ष

# भारतीय दर्शन

## माध्यमिक पाठ्यक्रम

## पुस्तक-1


| क्रम | विषय-सूची | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| दर्शन प्रस्थान परिचय | | |
| 1. | दर्शन का सामान्य परिचय | 1 |
| 2. | भारतीय विद्या विभाग | 35 |
| 3. | भारतीय विद्या परिचय-1 | 56 |
| 4. | भारतीय विद्या परिचय-2 | 80 |
| 5. | प्रस्थानत्रयी का श्रुतिप्रस्थान | 106 |
| 6. | प्रस्थानत्रयी के स्मृति-न्याय प्रस्थान | 128 |
| नास्तिक दर्शन | | |
| 7. | चार्वाक दर्शन | 150 |
| 8. | बौद्ध दर्शन | 163 |
| 9. | आर्हत दर्शन | 178 |
| आस्तिक दर्शन | | |
| 10. | न्याय दर्शन | 193 |
| 11. | वैशेषिक दर्शन | 218 |
| 12. | सांख्य दर्शन | 249 |
| 13. | योग दर्शन | 269 |
| 14. | मीमांसा दर्शन | 286 |
| 15. | वेदान्त दर्शन-1 | 304 |
| 16. | वेदान्त दर्शन-2 | 324 |

# 1

# दर्शन का सामान्य परिचय

## प्रस्तावना

मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है - यह उसकी अन्य प्राणीयों से विशेषता है। उस विशेषता द्वारा मानव जो सर्वोच्च जीवन का लक्ष्य आविष्कृत करता है, वह 'दर्शन' शब्द द्वारा व्यपदिष्ट होता है। दर्शनों में ही वह सभी सुचीबद्ध होता है। दर्शन ही मनुष्यों की संस्कृति एवं सभ्यता के व्यवस्थापन का मूल है।

वह ही सर्वश्रेष्ठ संस्कृति जहाँ सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य सुलभ होता है। अत: दर्शन का मानव जीवन में अत्यधिक प्रभाव है।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' - यह गीता की उक्ति है। इहलोक में ज्ञान पवित्रता का जैसा कारण है, वैसा अन्य कोई भी नहीं है- ऐसा इस श्लोकांश का भाव है। ऐसी ज्ञान की महिमा है। और वह ज्ञान लौकिक एवं अलौकिक - दो प्रकार का है। लौकिक ज्ञान से जीवन का निर्वाह होता है। परन्तु मोक्ष सिद्ध नहीं होता। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' - यहाँ उक्त विद्या अलौकिक ज्ञान है। लौकिक ज्ञान को अपरा विद्या कहते हैं। मोक्ष की उपायभूता विद्या परा विद्या कहलाती है। 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते', ऐसा मुण्डकोपनिषद् (1-1-3) में उपदिष्ट है।

**अत:** 'दर्शन क्या है' - इस विषय का अवलम्ब्य करके यह पाठ विरचित है। दर्शनों में मतभेत अशान्ति और युद्धों के कारण होते हैं, ऐसे इतिहास और वर्तमानकाल में अनेक उदाहरण हैं। अत: दर्शन का अध्ययन अत्यन्त गरिमा को उत्पन्न करता है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- दर्शन शब्द के विविध अर्थों को जान पाने में;

टिप्पणी



- दर्शन की आवश्यकता को समझ पाने में;
- दर्शन की व्यापकता का बोध कर पाने में;
- दर्शन की प्रवृत्ति को जान पाने में;
- दर्शन का मूल निश्चित कर पाने में;
- दर्शन की विशेषता का बोध कर उसकी व्यावहारिकता को जान पाने में;
- दर्शनों में मतभेद का कारण जानकर समन्वय स्थापित कर पाने में।

## 1.1 दर्शन

दृशिर् प्रेक्षणे धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। कोष में –

**दर्शनं दर्पणे धर्मोपलब्ध्योर्बुद्धिशास्त्रयोः।**
**स्वप्नलोचनयोश्चापि.....। (अनेकार्थसंग्रह, 410)**

नयन, स्वप्न, बुद्धि, धर्म, उपलब्धि, शास्त्र, दर्पण – ये अर्थ कोशग्रन्थ में उक्त हैं। विभिन्न साहित्यशास्त्रों में इस प्रकार के अर्थों में दर्शन पद का प्रयोग सुलभता से मिलता है। एवम् दर्शन शब्द के नाना अर्थ होने पर भी भारतीय दर्शन, आस्तिक दर्शन इत्यादि स्थलों पर प्रयुक्त दर्शन शब्द के क्या अर्थ अभिप्रेत हैं, ऐसी जिज्ञासा उदित होती है। किसी पद के नाना अर्थों में कब कौन सा अर्थ ग्रहण करने योग्य है, पद किस अर्थ को बोधित करता है, पद के कितने अर्थ है आदि के निर्णय में प्रकरण आदि सहायता करते हैं, विशेष स्मृति कारण होती है। एवम् यहाँ पर भी दर्शन पद का क्या अर्थ व्याकरण के द्वारा सम्भव है, क्या अर्थ युक्त है इत्यादि प्रस्तुत किया गया है।

किसी भी धातु का अर्थ, फल और व्यापार होता है। दृषि धातु का अर्थ, ज्ञानरूप फल तथा तदनुकूल व्यापार जाना जाता है। अतः फल का व्यापार में अनुकूलत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है।

दृशिर् धातु के अर्थ जानने में ही क्या फल और व्यापार हैं, इसका निश्चय करने में समर्थ है। दृशिर् प्रेक्षणे इति शिष्ठैः इस प्रकार शिष्ठों के द्वारा दृश् धातु का प्रेक्षण (देखना) अर्थ प्रदान किया गया है। तथापि धातुओं की बहवर्थता सुप्रसिद्ध है। अतः 'प्रेक्षण', इसका अर्थ यहाँ केवल चाक्षुषदर्शन नहीं अपितु ज्ञानसामान्य भी लिया गया है। पाँच अथवा छः इन्द्रियों द्वारा साक्षात् अथवा परम्परा से जो भी ज्ञानबोध बुद्धि, प्रमा और प्रमीति उत्पन्न होता है वह भी प्रेक्षण का एक पक्ष है।

दृशिर् धातु में कृत्यल्युटो बहुलम्, इस सूत्र से ल्युट् प्रत्यय बाहुल्य अर्थ में होता है,

जिससे दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति होती है। उसके द्वारा दर्शन शब्द के विभिन्न अर्थ सम्भव होते हैं। वे ही व्युत्पत्तियाँ हैं-

1. 'दृश्यते यथार्थतया ज्ञायते पदार्थः अनेन अति करणव्युत्पनः दर्शनशब्दः। अर्थात् करण में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूल व्यापार का करण दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञानजनक व्यापार का करण **शास्त्र** है। ज्ञान के करण, जो सुप्रसिद्ध प्रमाण है, वे भी होते हैं। अतः दर्शन तो शास्त्र अथवा प्रमाण दोनों है। यहाँ दृश् धातु का अर्थ फल, ज्ञान तथा तदनुकूल व्यापार है। प्रत्यय का अर्थ करण होता है। अत एव फल के अनुकूल व्यापार का करण, यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे ज्ञानानुकूल व्यापार के करण को दर्शन पदार्थ कहते हैं।

2. पश्यति अति कर्तृव्युत्पन्नः दर्शनशब्दः। अर्थात् कर्ता में ल्युट् अथवा ल्युः। तब ज्ञान के अनुकूल व्यापारवान् दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञानजनक व्यापार का आश्रय तो ज्ञाता अर्थात् 'प्रमाता' होता है।

3. यत् दृश्यते तद् दर्शनम् इति कर्मव्युत्पन्नः (जो दिखाई देता है, वह दर्शन है) अर्थात् कर्म में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूलव्यापारजन्यज्ञान का विषय दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञान का विषय 'प्रमेय' होता है।

4. दृश्यते इति दर्शनम् इत्यत्र भावव्युत्पन्नः दर्शनशब्दः। अर्थात् भाव में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूलव्यापारजन्यफल का ज्ञान, यह अर्थ प्राप्त होता है। यह ज्ञान ही **'प्रमा'** है।

इस प्रकार दर्शन शब्द की चार प्रकार की व्युत्पत्तियाँ सम्भव होती हैं। एवम् दर्शन शब्द के प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमा, ये चार अर्थ होते हैं।

'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुति में 'द्रष्टव्य' - इस पद में 'दृश' धातु का अर्थ आत्मसाक्षात्कार है। अर्थात् प्रमा अर्थ में प्रयोग होता है।

जब भारतीय दर्शन, नास्तिक दर्शन, और आस्तिक दर्शन शब्दों का प्रयोग होता है, जब दर्शन पढ़ता हूँ, दर्शन पढ़ाता हूँ आदि कहा जाता है तब भी दर्शन शब्द का अर्थ प्रमाण अथवा शास्त्र ही होता है। अर्थात् सत्य के साक्षात्कार के लिए जो उपायभूत उपकरण रूप वह ही इसका अर्थ है।

सभी दर्शनों के अपने मतों के अनुकूल प्रमाण और प्रमेय होते हैं। प्रमाता प्रायः जीव ही होता है। कोई ईश्वर भी होता है। प्रमाणों के द्वारा प्रमाता की प्रमेय विषयिणी प्रमा उत्पन्न होती है, यह दर्शन का प्रधान कर्म है। तथा सत्य प्रमा अर्थात् निर्भ्रान्त ज्ञान के होने पर, उस दर्शन का प्रतिपाद्य विषय स्फुटित होता है।

भारतीय दर्शन के द्वारा भारतीयशास्त्र अर्थात् प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता, प्रमा, ये सभी संग्रहीत होते हैं। कारण यह है कि ये सभी शास्त्रों में प्रतिपादित हैं। भारतीय दर्शन क्या हैं, इस पृष्ठ पर न केवल ग्रन्थ कहे जाते हैं। तथापि बहुलता से प्रधान रूप में विद्या

तथा गौण रूप में उसके प्रतिपादक ग्रन्थ, इस रूप में दर्शन शब्द प्रयुक्त है। वैसे ही-

**''यदाभ्युदयिकं चैव नैश्रेयसिकमेव च।**
**सुखं साधयितुं मार्गं दर्शयेत् तद्धि दर्शनम्''॥ (भाट्ट संग्रह 1.21)**

**सरलार्थ** - आभ्युदयिकं और नैश्रेयसिक, यह दो प्रकार के सुख हैं। उस सुख को साधने का मार्ग या उपाय जो दिखाता अथवा निर्दिष्ट करता है, वह दर्शन है। यहाँ इस श्लोक में दर्शन शब्द विद्या से भिन्न है।

**शास्त्रम्** - वैसे ही शास्त्र क्या है ? शासु अनुशिष्ठौ धातु के करण अर्थ में ष्ट्रन्-प्रत्यय से शास्त्रशब्द व्युत्पन्न होता है। शास्त्र के द्वारा अनुशासन किया जाता है। विधि और निषेध के भेद से अनुशासन दो प्रकार का होता है। वैसे ही अभियुक्त (विद्वान) ने कहा-

**''प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।**
**पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते॥''**

जो पुरूष अर्थात् मर्त्य का नित्य अथवा इष्ट में प्रवृत्ति को उपदिष्ट करता है तथा अनित्य में निवृत्ति को उपदिष्ट करता है वह शास्त्र है।

## पाठगत प्रश्न 1.1

1. दर्शनशब्द की व्युत्पत्ति लिखें?
2. भारतीयदर्शनानि, इस पद में दर्शन शब्द का क्या अर्थ है?
3. दर्शन पद के चार अर्थ कौन से है?
4. करण व्युत्पन्न दर्शन पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
5. कर्तृव्युत्पन्न दर्शन का पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
6. भावत्युत्पन्न दर्शन पर का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
7. कर्मव्युत्पन्न दर्शन पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
8. शास्त्र क्या हैं?

टिप्पणी

## 1.2 दर्शन की आवश्यकता

इस जगत में जीवों के दु:ख और मृत्यु, यह दो शाश्वत एवं अविशेष रूप से होते हैं। अत: दु:खनिवारण एवं मृत्युभय से रक्षा कौन नहीं चाहता है। प्राणी वर्ग सदा दु:खपरिहार एवं मृत्यु से रक्षा के लिए प्रयत्न मान परिलक्षित होते हैं। उन जीवों में मनुष्य ही चिन्तनशील है। पशुजीवन तो उद्देश्यहीन होता है। सहज प्रवृत्ति ही पशुओं की प्रेरक एवं प्रवर्तक होती है। कुछ पशु-पक्षी भी भविष्यकालीन प्रयोजन की सिद्धि के लिए गृहनिर्माण, सञ्चय आदि कार्य करते परिलक्षित होते हैं। तब भी सहज ही होते हैं। मनुष्य ही विशिष्ट बुद्धिमान है। यह ही उसकी प्राणियों से विशेषता है। मानव बुद्धि के प्रयोग से और युक्तियों की सहायता से ज्ञान अर्जित करता है। युक्ति की सहायता से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न ही क्रम बद्ध रूप से आयोजित हो दर्शन रूप में परिणत होता है। बुद्धि और युक्ति से प्राप्त ज्ञान के द्वारा मानव जीवन शैली को निर्धारित करता है तथा आचरण करता है, जैसे - यहाँ तथा परत्र सुख रहना चाहिए। यह शैली ही धर्म है। तथाहि-

**आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।**
**धर्मो हि तैषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥**
**( हितोपदेशः )**

**भावार्थ** - अन्नपानादि रूप आहार, निद्रा, भय और मैथुन, यह चार कार्य जैसे मनुष्यों में वैसे ही पशुओं में परिलक्षित होते हैं। इस दृष्टि से पशुओं से मानव की कोई भी पृथकता नहीं है। परन्तु मनुष्य का धर्म ही वह विशेष है जो पशुओं में नहीं है। यदि किसी मानव का धर्म न हो तो वह पशु के समान ही है। उसी प्रकार दर्शन की महिमा है कि उसके बिना मानव पशु के समान होता है।

यथा वैद्यकशास्त्र शरीर से उत्पन्न (देहज) दु:ख के अलगाव (पार्थक्य) के लिए औषधियों एवं उपायों का आविष्कार करता है। जैसे- जामिता के परिहार के लिए मनोरंजन करने में नाटक, काव्य, उपन्यास, उद्यान-क्रीड़ा आदि उपलब्ध होते हैं। यथा अन्न, पेय, वस्त्र आदि की अनिश्चितता को दूर करने एवं सुरक्षा के लिए लोग जीविकोपाय के चुनाव में गोरक्षा, वाणिज्य आदि करते हैं। यथा स्वजन, बान्धवों के भी जीविका व्यवस्था एवं दु:खनिवारण के लिए प्रयत्नशील लोग अल्प नहीं दिखते हैं। स्वयं के सम्मान लाभ और धर्मलाभ के लिए...। इसी प्रकार जगत प्रवृत्त होता है। इन सब में भी शास्त्रों का प्रयास, चौसठ कलाएँ हैं, उनके अनुकूल ज्ञान-दान हेतु विद्यापीठ और विद्यालय होते हैं। इन सब का जीवन में विशिष्ट स्थान है, यह किसके द्वारा नहीं जाना गया है।

यदि कल किसी प्रकार के दु:ख का अभाव हो अथवा किसी प्रकार का सुखाधिक्य हो, ऐसी चिन्ता लोगों को होती हैं, यदि आजीवन दु:ख से अलगाव के लिए एवं सुख के लिए भी लोग चिन्तित होते है, तो इस जन्म से आगे के जन्मों में क्या स्थिति होगी, उस स्थिति में भी सुख आदि के लाभ और दु:ख-उद्भव के निवारण के लिए

टिप्पणी

क्या प्रयास हैं, उसके लिए इस जन्म में क्या कर सकते हैं, जीवन का जन्ममृत्युचक्र, अथवा इस प्रकार अन्तकाल प्रवृत्त होगा, उसका कोई भी विराम है अथवा नहीं, ये सभी प्रश्न मनुष्यों के होते हैं। फिर भी जीव किस प्रकार की चिन्ता करे। यदि कोई प्रियजन मृत्यु को प्राप्त होता है तो दु:खार्ता स्वयं मरणोत्तगति का चिन्तन करते हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद् में नचिकेता का प्रश्न है - येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। अर्थात मनुष्य के मृत्यु के पश्चात् उसका अस्तित्व होता है अथवा नहीं? कोई अस्तित्व होता है, ऐसा मानता है तो कोई नहीं। अत: इस विषय में संशय है। इन सभी प्रश्नों का महत्व मनोरंजन आदि से भी अत्यधिक है। जो क्षणिक सुख देता है, उसका गुरूत्व भी अल्प ही होता है। जो अधिक समय अथवा चिरकाल से सुख को प्रतिपादित करता और देता है उसकी महिमा का तो क्या वर्णन। अतएव अन्य शास्त्र यथा समीपवर्ती भ्रान्ति दिखती है वैसे ही वह दर्शन शास्त्र भी निकटवर्ती है। क्योंकि दर्शन भी उसी प्रकार सुख को प्रतिपादित करता है। अत एवं दर्शन आवश्यक है। जिस प्रकार जन्म-मृत्यु चक्र होता है, उसी प्रकार जन्म के पश्चात् क्या होगा, ऐसी ही जिज्ञासा होती है। उस जिज्ञासा की समाधि/समाधान दर्शन ही करता है। अत: दर्शन विरूद्ध लोग जो कुछ भी करें, मृत्यु से भयभीत वे भी साक्षात अथवा प्रकारान्तर से मरणोत्तर की स्थिति के विषय में जिज्ञासा करते हैं।

दर्शनशास्त्र के अध्ययन की क्या आवश्यकता तो कहते हैं -

**शास्त्रं सुचिन्तितमहो परिचिन्तनीयं,**
**आराधितोऽपि नृपतिः परिसेवनीयः।**
**अङ्के धृताऽपि तरूणी परिरक्षणीया**
**शास्त्रे नृपे च युवतै च कुतो वशित्वम्॥**

## 1.3 दर्शन की व्यापकता

दर्शन के द्वारा सामान्य ज्ञान होता है, विशिष्ट ज्ञान भी उत्पन्न होता है। अत: ज्ञान और विज्ञान दर्शन है, यह स्थिति है। प्राणी सुख ही चाहता है, दु:ख को त्यागता है, यहाँ कोई मतभेद नहीं है। दर्शन सुख प्रदान करने, सुख प्राप्ति के उपाय ढूँढने तथा दु:ख से निवारण के लिए प्रवृत्त करता है। अत: नाना प्रकार के सुख और साधन जो भी भ्रान्ति रहित होकर प्रतिपादित होते है वह सभी दर्शन में स्वाभाविक रूप से अन्तर्भूत होते हैं। सुख-लाभ और दु:ख से निवृत्ति के कुछ दृष्ट उपाय तथा कुछ अदृष्ट उपाय होते हैं।

कुछ दृष्ट उपाय व्यवहारिक रूप से शास्त्र के बिना ही चलते हैं। पशु शास्त्र के बिना ही अन्न-पान आदि जानते हैं। कुछ दृष्ट उपायों को प्रधान रूप से विज्ञान आदि प्रतिपादित करता है। और अदृष्ट उपायों को धर्मशास्त्र प्रतिपादित करता है। यह समग्र (सम्पूर्ण) धर्मशास्त्र को दर्शन माना जाता है। जगत में विद्यमान स्थूल रूप से दो विभागों की

टिप्पणी

कल्पना की जा सकती है -चित् (चेतन) और अचित् (जड़)। ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या, चित्तविद्या इत्यादि प्रधान रूप से चिदंश (चित् का अंश) को लेकर प्रवृत्त हुए है। इनमें प्रधान रूप से चित् के स्वरूप और उसके बन्ध-मोक्ष आदि पर विचार किया जाता है। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कलाशास्त्र (सौन्दर्यशास्त्र) इत्यादि सुख प्रदान करने हेतु नीति, नियम और उपायों को उपदिष्ट करते हैं। पदार्थ विज्ञान, गणित, भूगोल ये सभी अचिदंश (अचित का अंश) को लेकर प्रवृत्त हुए है। इनका चिदंश के विषय में मौन होना प्रायः परिलक्षित होता है। अतः ये अत्यन्त स्थूल जड़ विषयक शास्त्र केवल उदरपूर्ति तक होते हैं। शरीर आदि में रोग होने पर रोग के निवारण और रोग के प्रादुर्भाव पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु आधुनिक अथवा प्राचीन शरीर-विज्ञान के आयुर्वेदशास्त्र आदि हैं। इन सभी प्रकार के शास्त्रों में भाषा शास्त्र और आन्वीक्षिकी की विद्या अर्थात् तर्कशास्त्र उपकारक होते हैं। जो तर्क के द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है, वह धर्म कहा गया है, अन्य नहीं, ऐसा मनु का मत है। और यहाँ तर्क मीमांसा (पूजित विचार) है। केवल शास्त्र का आश्रय लेकर कर्तव्य का निर्णय नहीं होता है। युक्तिहीन विचार से तो धर्महानि होती है। यह विद्वानों का मत है। अतः यह स्पष्ट है कि सुख के साधन के लिए जो भी उपकारक है वह दर्शन की परिधि में है। अतः दर्शन की व्यापकता सर्वाधिक होती है। प्रायः सभी वाङ्मय साक्षात् रूप से, परम्परा अथवा दूरान्वय के द्वारा दर्शन के ही पोषक हैं।

## पाठगत प्रश्न 1.2

9. पशुओं से मनुष्य का क्या अधिक विशेष है?
10. मानव कैसी जीवन शैली निर्धारित करता है?
11. जामिता के परिहार हेतु क्या उपाय है?
12. सुख दुःख के तारतम्य से किस शास्त्र की महिमा प्रकट होती है?
13. दर्शन किस प्रकार के उपायों को प्रतिपादित करता है?
14. सम्पूर्ण वाङ्मय साक्षात रूप में परम्परा अथवा दूरान्वय के द्वारा किसके पोशक हैं ?

## 1.4 दर्शन की प्रवृत्तिः-

दार्शनिकों के द्वारा प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता और प्रमा रूप वाङ्मय रूप प्रपंच किस प्रयोजन को उद्देश्य करके अत्यन्त परिश्रम से प्रस्तुत किया गया है? दर्शनशास्त्र किस कारण प्रवर्तित होते हैं? उसके नियामक क्या है? यह कुछ कहा गया है।

टिप्पणी



### 1.4.1 पुरूषार्थः-

सभी प्राणी इष्ट-प्राप्ति की इच्छा करते हैं। अनिष्ट के परिहार की इच्छा करते हैं। वहाँ क्या इष्ट और क्या अनिष्ट है? सुख इष्ट और दुःख ही अनिष्ट है। इसीलिए सुख का उपाय ही इष्ट है। दुःख का कारण ही अनिष्ट है। सुख और उसके उपाय के बिना जीव अन्य कुछ भी नहीं चाहता। उसी प्रकार दुःख-निवारण (परिहार) और निवारण के उपायों के विषय में जिज्ञासा करता है।

सभी प्राणी सुख प्राप्त करने और दुःख दूर करने का प्रयास करते हैं। ऐसा कोई भी जीव नहीं जो दुःख की प्राप्ति और सुख के परिहार के लिए प्रयत्न करता है। जो भी दर्शन, विज्ञान आदि सम्प्रदाय अथवा संस्था का व्यक्ति स्वयं के शरीर, मन आदि को जिस प्रकार का सुख देता है वैसा ही ग्रहण करता है। कभी आपात काल में दुःख के उत्पन्न होने पर भी आगे सुख हो, ऐसी आशा द्वारा अवलम्बित रहता है। कोई दुःख को उत्पन्न करने वाला भी होता है, ऐसा देख जाता है। वह भी वस्तुतः व्यक्ति के अविवेक के कारण होता है। वह किसके द्वारा क्या प्राप्त करेगा? किसका क्या कारण है, ऐसा वह विवेक करने में असमर्थ होता है। इसीलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है। विष मृत्यु का कारण है, अतः विद्वान कभी भी विष नहीं खाते। यदि जीवन मृत्यु से भी अधिक दुःख उत्पन्न करने वाला प्रतीत हो (विष भी) खा लेते हैं।

सुख-प्राप्ति और भ्रान्ति के निवारण के लिए दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के स्वरूप और लक्षण को प्रतिपादित करने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के उपायों को खोजने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के उपायों को खोजने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। दुःख क्या है, उसके कितने प्रकार है, उसके क्या कारण हैं, उसके परिहार के क्या उपाय है, इनके बोध हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। और यह प्रमाण-प्रमेय के प्रतिपादन द्वारा सिद्ध होता है। अतः सभी दर्शनों में ये दोनों प्रतिपादित होते हैं। प्रमा और प्रमाता प्रमेय के ही अन्तर्गत आते हैं। उसके अंगभूत तत्वों के द्वारा अन्य सभी प्रसंगों का वर्णन किया जाता है।

और जीव सुख के अधिकाधिक मात्रा की इच्छा करता है। अल्प के द्वारा संतुष्ट नहीं होता। यदि निरंन्तर नित्य सुख सम्भव हो तो कौन नहीं चाहेगा। कुछ दर्शनशास्त्र सुख केवल अनित्य है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं। बहुतों के द्वारा नित्य और अनित्य सुख का प्रतिपादन किया गया है। उसका ही वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सुख दो प्रकार का होता है। नित्य और अनित्य। नित्य सुख दर्शन के भेद से विविध प्रकार है। वह उत्पन्न नहीं होता है। न किसी भी प्रकार के कारण से वह सुख उत्पन्न होता है। अनित्य सुख जन्य होता है। उसका कोई भी कारण होता है।

आस्तिक समय में अनित्य सुख का कारण ही धर्म है। धर्म के बिना सुख नहीं होता है। धर्म भी जन्य है। वेदविहित यज्ञ आदि कर्मों से धर्म उत्पन्न होता है। उसका अन्य

नाम पुण्य है और उसके कुछ गुणविशेष हैं। उस धर्म का जनक (उत्पत्तिकर्ता) यज्ञ आदि है। अत: वह यज्ञ आदि भी धर्म कहलाते हैं। अत: पुण्य धर्म है। धर्म का जनक होने के कारण कर्म भी धर्म है, ऐसी स्थिति है।

दु:ख का भी कोई कारण तो होता ही है। सुख अथवा दु:ख बिना कारण के उत्पन्न नहीं होते हैं। शास्त्रों में तीन प्रकार के दु:ख वर्णित हैं। 'ऊँ शान्ति: शान्ति: शान्ति:', इसीलिए त्रि शान्ति की जाती है। सुख का क्या कारण है इसका असंदिग्ध ज्ञान आवश्यक है। उसके द्वारा जो इष्ट रूपी सुख है, उसका जो साधन है, उसकी निष्ठापूर्वक प्रवृत्ति हो। किसी सुख के कितने भेद होते हैं, वह भी व्यक्ति को स्पष्ट रूप से जानना चाहिए। उसके द्वारा प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार 'मदिष्टसाधनम्', ऐसा ज्ञान प्रवृत्ति का कारण होता है।

जो चाहा जाए वह अर्थ है। पुरूष का अर्थ पुरूषार्थ है। अथवा पुरूष द्वारा जो चाहा जाता है, वह पुरूषार्थ है। अर्थात् पुरूष, नर अथवा नारी जो कामना करते है, इच्छा करते हैं अथवा चाहते हैं, वह ही पुरूषार्थ है। पुरूष सुख चाहता है। अत: सुख ही समस्त प्राणियों का पुरूषार्थ है। सुख के प्रकार हैं। अत: पुरूषार्थ के भी प्रकार हैं। नित्य सुख को मोक्ष कहते हैं। अनित्य सुख को काम कहते हैं। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न प्रीति अथवा आनन्द ही काम है। काम के कारण को धर्म कहते हैं। धर्म के साधन को ही अर्थ कहते है। अर्थ ही धर्म की सामग्री धन आदि है। एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वैदिक संस्कृति के चार सुप्रसिद्ध पुरूषार्थ हैं। उनमें काम और मोक्ष मुख्य हैं। काम का साक्षात् कारण धर्म है। धर्म का प्रयोजक अर्थ है। काम-लाभ हेतु धर्म और अर्थ ही सेवित हैं, अन्य अर्थ नहीं। अत: धर्म और अर्थ गौण है। मुख्य काम और मोक्ष में भी मोक्ष नित्य है। अत: मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। अर्थ अनित्य है, यह प्रत्यक्ष द्वारा जाना जाता है। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न सुख क्षणिक है, वह भी अनित्य है, यह अनुभव सिद्ध है। इसीलिए अनित्य सुख का कारण धर्म भी अनित्य ही होता है। कारण के न होने पर कार्य का भी अभाव होता है। अर्थात् यदि कारण होता है तो उसका कार्य भी होगा। कारण है किन्तु कार्य नहीं है, ऐसा नहीं होता है। वहाँ यदि कारण नित्य है, अर्थात् सदा रहता है तो ही कार्य भी नित्य रहेगा। कार्य अनित्य होने पर उसका कारण भी अनित्य ही होगा। इस प्रकार धर्म के कार्यभूत काम के अनित्य होने पर उसका कारणभूत धर्म भी अनित्य ही होगा।

वेदान्त में श्रुति एवं उसके अनुकूल युक्ति एवं अनुभव, यह तीनों सदा प्रमाण के द्वारा कहे जाते हैं। काम आदि के अनित्यत्व में श्रुति प्रमाण है - तद्यथेह कर्मचितो लोक: क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोक: क्षीयते। (इसका अर्थ है - इस संसार में धर्म, अर्थ, कर्म आदि लोक हैं तथा घट आदि जिस प्रकार नष्ट होते हैं वैसे ही लोकान्तर में स्वर्गादि पुण्यनिर्मित लोक नष्ट होते हैं।)

और स्मृति - ते तं भुक्तत्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (गीता 9.21)

टिप्पणी



**अर्थ** - जो पुण्य प्राप्त कर स्वर्ग जाते हैं, वे विशाल एवं विस्तीर्ण स्वर्गलोक को भोगते हैं। उस भोग का उत्पन्नकर्ता (जनक) पुण्य जब क्षीण होता है तब मर्त्यलोक (मनुष्यलोक) में मानव रूप को पुनः प्राप्त करते है। इस गीता की उक्ति से यह स्पष्ट है कि पुण्य नष्ट (क्षीण) होता है। अर्थात् धर्म और पुण्य अनित्य होते हैं। अतः उससे उत्पन्न सुख और काम भी अनित्य ही होते हैं।

इसीलिए कहा गया है - जो कृतक है वह अनित्य है, यह नियम दृष्ट (प्रत्यक्ष) और अनुमान दोनों द्वारा सिद्ध है। धर्म कर्मजन्य होता है। अतः अनित्य है। काम धर्मजन्य होता है। अतः अनित्य है। धर्मलाभ कैसे होता है, यह जैमिनिमुनि द्वारा उद्धृत धर्ममीमांसाशास्त्र में विस्तारपूर्वक वर्णित है। वहाँ प्रथम सूत्र है - अथातो धर्मजिज्ञासा।

इस प्रकार सिद्ध है कि मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। और वह प्रमा (ज्ञान) के द्वारा सुलभ है। अतः प्रमा क्या है? उसकी प्राप्ति का प्रमाण क्या है, यह जिज्ञासा होती है। अतः सभी दर्शनों में प्रमाण निरूपित है।

पुरूषार्थ के प्रतिपादन तथा उसके उपाय के प्रतिपादन हेतु दर्शनों की प्रवृत्ति सिद्ध है।

पुरूषार्थ के विषय में कुछ श्लोक यहाँ दिये गए हैं-

**''धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थफलमुचयते।**
**संकल्पमूलास्ते सर्वे संकल्पो विषयात्मकः।।'' (महा.)**

**सरलार्थ** - चारों पुरूषार्थों में अर्थ अन्ततम है। वह धर्ममूल अर्थात् धर्म का कारण है। अर्थ का फल काम है अर्थात् सुख। ये तीनों भी संकल्पमूलक हैं अर्थात् संकल्प इनका कारण है। तो संकल्प क्या है। वह ही विषयात्मक है। अर्थात् विषय ही संकल्प है।

**''धर्मश्चार्थश्च कामश्च जीविते फलम्।**
**एतत्त्रयमवाप्तव्यमर्धपरिवर्जितम्।।'' (महा.)**

**सरलार्थ** - जीव के जीवन में तीन प्रकार के फल होते हैं। वे हैं धर्म, अर्थ और काम। ये तीनों प्राप्त करने योग्य हैं। यह अवधारणा है कि अधर्म का परिवर्जन हो।

**''धर्माविरूद्धो भूतेषु कामेऽस्मि भरतर्षभ।'' (गीता)**

**सरलार्थ** - हे भरतर्षभ ! जीवों में धर्म मार्ग पर प्रवृत्त करने वाला काम रूप मैं वासुदेव हूँ। अर्थात् वेदविहित आचार के लिए व्यक्ति को प्रेरित करता है, निषिद्ध कर्मो से दूर करता है, विधि मार्ग में नियम का आचरण करने हेतु प्रेरित करता है, वह गुणविशेष काम है, सन्निकृष्ट विषय की अपेक्षा असन्निकृष्ट विषयों में प्रवृत्ति के कारण तृष्णारूप है।

**''धर्मं समाचरेत् पूर्वं ततो ह्यर्थं धर्मसंयुतम्।**
**ततः कामं चरेत् पश्चात् सिद्धार्थः स हि तत्परम्।।'' (महा.)**

टिप्पणी

**सरलार्थ** – आरम्भ में वेद और उसके अनुकूल स्मृति ग्रन्थों में विहित कर्म करने चाहिए। वह कर्म पुण्य धर्म का जनक है। इस प्रकार अपने कर्म से प्राप्त अर्थ अर्थात् सुख-सामग्री अर्जित करना चाहिए। तथा प्राप्त अर्थ से काम (इच्छा) को प्राप्त करना चाहिए, सुख का अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार कामतृप्त और विरक्त (व्यक्ति) अन्त में सिद्ध अर्थ मोक्ष को प्राप्त करे।

**''पुण्यपापमयं देहं क्षपयन् कर्मसञ्चयात्।**
**क्षीणदेहः पुनर्देही ब्रह्मत्वमुपगच्छति॥ (महा.)**

**सरलार्थ** – देह का कारण पाप और पुण्य है। वे दोनों कर्म से उत्पन्न हैं। कर्म से उत्पन्न संस्कार ही कर्म सञ्चय करते हैं। और वह फल उपभोग से नष्ट (क्षीण) होते हैं। और निष्काम कर्म से क्षीण होते हैं। इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि के द्वारा पाप और पुण्य का कारणरूप कर्म सञ्चय जब क्षीण होता है तब शरीर धारण भी नष्ट होता है। तथा जिसका देह क्षीण हो जाता है वह क्लेश रहित, निरञ्जन, शुद्ध, पुण्यपाप से रहित होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

**''ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति मे।**
**धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥'' (महा.)**

**सरलार्थ** – दोनों भुजाओं को ऊपर करके ऊँचे स्वर में बोलता हूँ। तथापि कोई भी मेरे वचनों को नहीं सुनता है। लोग धर्म के बिना अर्थ और काम की इच्छा करते हैं। दोनों (अर्थ और काम) धर्म सेवा के द्वारा सुलभ हैं। धर्म से अर्थ और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं। तथापि धर्म कहीं से सेवित अथवा पूजित नहीं है, यह दुःख है। यह व्यासदेव की उक्ति है।

## सुख में लिप्त होने वालों का विभाग

अनेक बार पूर्व में कहा गया है कि जीव सुख चाहता है। सुख की अधिक मात्रा को चाहता है। सुख दीर्घकाल तक हो, यह चाहता है। यद्यपि शरीर क्षीण होता है तथापि शरीर का नाश न हो, ऐसा चाहता है। सशरीर अमर हो, ऐसी प्रबल इच्छा करता है। शरीर का नाश तो होता ही है। अतः शरीर नाश से श्रेष्ठ (परम) पुनः शरीर धारण हो, यह चाहता है। पुनः-पुनः प्राप्त जन्म सुखमय हो, यह चाहता है। कुछ लोग तो तब भी अनेक जन्मों में प्राप्त सुख को अल्प मानते हैं।

वह सुख कर्मजन्य होता है। अतः उसे अनित्य मानते हैं। इस प्रकार के सुख से विरक्ति होती है। जन्म-मृत्यु के चक्र को कैसे रोक सकते हैं, यह जिज्ञासा करते हैं। अतः चक्र का आरम्भ कैसे हुआ? चक्र के प्रवर्तक कौन है? चक्र की इष्ट गति कैसे होती है? अनिष्ठ गति कैसे होती है? उसका परिवर्तन कैसे होता है? गतिरोध कैसे होता है? ये सभी प्रश्न मनुष्यों में बहुतों के होते ही हैं। अतः जीवों के तीन दलों की कल्पना की जा सकती है।

**प्रथम दल**- एक ही जन्म है। उसमें अधिक सुख की अधिक काल तक कामना करने वाले। वे चार्वाक कहलाते हैं।

**द्वितीय दल**- अधिक सुख चिरकाल अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों में हो, ऐसी कामना करने वाले। ये पूर्व-मीमांसक हैं।

**तृतीय दल**- जन्म-मरण चक्र के विराम की कामना करने वाले। ये मुमुक्षु हैं।

## पाठगत प्रश्न 1.3

15. सभी प्राणी क्या इच्छा करते हैं?
16. सभी प्राणी क्या इच्छा नहीं करते हैं?
17. सुख कितने प्रकार का है और वह क्या है?
18. नित्य सुख क्या है?
19. अनित्य सुख क्या है?
20. अनित्य सुख का क्या कारण है?
21. दु:ख का क्या कारण है?
22. धर्म का क्या कारण है?
23. अधर्म का क्या कारण है?
24. प्रवृत्ति का कौन सा ज्ञान कारण होता है?
25. पुरूषार्थ पद की क्या व्युत्पत्ति है?
26. पुरूषार्थ कितने और क्या हैं?
27. गौण-मुख्य के भेद से पुरूषार्थों को लिखें।
28. मोक्ष के परम पुरूषार्थत्व में क्या हेतु है?
29. काम पुरूषार्थ के अनित्यत्व में कौन सी युक्ति प्रमाण है?
30. सुख में लिप्त रहने वालों के नाम लिखें।
31. परम पुरूषार्थ क्या है -

    (क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

32. नित्य पुरूषार्थ क्या है-

टिप्पणी

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

33. कौन सा पुरूषार्थ प्रत्यक्ष नहीं, अनुमेय होता है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

34. अर्थ पुरूषार्थ की सामग्री क्या है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग)काम (घ) मोक्ष

## 1.5 दर्शन का मूल

ऊपर जैसा कहा गया है वैसे ही सुख के स्वरूप और कारण हैं, जीव का स्वरूप और गति है, संसार-चक्र का स्वरूप और कारण है, स्व-अभीष्ट सुख के उपाय आदि मुख्य रूप से प्रतिपादित है। आस्तिक दर्शनों में जीव, सृष्टि, ईश्वर, ब्रह्म, बन्ध, मोक्ष, मोक्षसाधन आदि विषय प्रमेय हैं। और इनका भ्रमरहित ज्ञान होना प्रमाणों को प्रतिपादित करता है। सृष्टि के मूल में क्या है? सृष्टि के प्रारम्भ में क्या स्थिति थी? सत्य एक है अथवा अनेक, ये प्रश्न दर्शनों में आलोचनापूर्वक ग्रहण किये जाते हैं। उनके समाधान द्वारा पुरूषार्थ सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रश्न और उनके उत्तर ही दर्शन के मूल हैं।

इस प्रकार सभी दर्शन पुरूषार्थों को प्रतिपादित करके प्रवर्तित होते हैं। दर्शन के भेद से पुरूथार्थ भी भिन्न हो सकते हैं। पुरूषार्थ का लाभ पुरूषार्थ लाभ के उपाय के संशय-विपर्यय के ज्ञान के द्वारा संभव है। अतः अपने दर्शनों के अनुसार पुरूषार्थ और उसके उपाय दर्शनों में प्रतिपादित होते हैं। कभी सम्पूर्ण विषय का प्रकटन साक्षात् पुरूषार्थ के प्रतिपादन के द्वारा किया जाता है। कभी प्रमाण-प्रमेय आदि रूप में किसी पदार्थ के प्रतिपादन द्वारा किया जाता है। सभी आस्तिक श्रुति को प्रमाण रूप में अंगीकृत करते हैं। श्रुति में दर्शन का मूल प्राप्त होता है। श्रुतियों में ऋग्वेद सर्वप्रथम आता है। इसमें अनेक देवताओं की स्तुतियाँ परिलक्षित होती हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण, सविता, प्रजापति, हिरण्यगर्भ आदि देवता इसके कुछ उदाहरण हैं।

सृष्टि में अनेक प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। यथा-वर्षा-विद्युत, सूर्य और उसका उदय-अस्त होना, चन्द्रमा और उसको उदय-अस्त होना, वायु, अग्नि, सम्पूर्ण विश्व इत्यादि। इन परिवर्तनों का नियन्ता कोई है, ऐसा ऋग्वेद में विहित है। इन देवताओं की स्तुति प्रधान रूप से ऋग्वेद में उपलब्ध है।

**एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ.वे. 1.164.46)**

(सत्य है परन्तु विद्वानजन (ब्राह्मण) उसे विभिन्न नामों द्वारा प्रकट करते हैं।) पुरूष एवेदं सर्वम् (ऋ.वे. 10.90.2) (यह सम्पूर्ण विश्व वस्तुतः पुरूष ही है।) नासदासीन्नो सदासीत् (ऋ.वे.10.129.1) (सृष्टि के पूर्व असत् नहीं था। सत् नहीं था।)

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे (ऋ.वे. 10.121.1) (हिरण्यगर्भ प्रजापति के समक्ष प्रपञ्च सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। माया की अध्यक्षता से परमात्मा ने सृजन किया।) इन स्थलों पर सृष्टि की प्रागवस्था (प्रारम्भ की अवस्था), सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, सृष्टि के प्रारम्भ में क्या उत्पन्न हुआ इत्यादि अनेक विषय ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। उपनिषदों में तो यह ही विषय प्रधान होता है। अथवा इस आत्मा से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से पृथिवी, यह मन्त्र सृष्टि क्रम को विहित करता है। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड, सृष्टि और प्रपञ्च उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। और वह महान विषय है। अतः उसका विस्तार यहाँ नहीं किया गया है। इस प्रकार सुस्पष्ट है कि दर्शन का मूल वेद में ही होता है।

## 1.6 भारतीय दर्शन की विशेषता

### 1.6.1 दर्शनों की व्यवहार योग्यता

शास्त्र और पुस्तक जगत् की सृष्टि, सर्जन तथा उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। उनमें प्रतिपादित विषय मानव के व्यवहार योग्य हैं अथवा नहीं, यह विचार निश्चय ही करना चाहिए। वैसे ही किसी भी दर्शन की जीवन में कैसी उपयोगिता है, कैसी व्यवहारिकता है, यह विचार करके ही लोग प्रेरित होते है। जैसे- गणित की व्यवहारयोग्यता कितनी है तो कहते हैं कि जहाँ गणना करना हो वहाँ गणित उपयोगी है। वैद्यशास्त्र की उपयोगिता कितनी है तो कहते हैं कि जब शरीर रोगग्रस्त होता है तब रोग नाश के लिए चिकित्साशास्त्र होता है। एवं सभी शास्त्रों का विशिष्ट अवदान (योगदान) मानव जीवन में होता है।

यह जन्म सुखपूर्ण करने के लिए अगले जन्म को भी सुखमय करने और जन्म मृत्युरूप संसारचक्र को रोकने के लिए दर्शनशास्त्र प्रवर्तित होता है। अतः सुखमय-चक्र और चक्र के विराम के प्रतिपादक दर्शन अत्यन्त उपयोगी है। कोई भी जीव सुख के बिना नहीं जीता है। अतः प्रत्येक पद पर दर्शनशास्त्र मार्ग प्रदर्शक होता है। यथा अपरिचित स्थान पर जाने के लिए मार्ग में रूककर किसी को पूछता है कि 'आप मार्ग निर्दिष्ट करें'। अन्यथा अनिष्ट मार्ग द्वारा अनिष्ट स्थान की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार सुखलाभ के लिए अपरिचित मार्ग पर चलने के लिए लोग निश्चित सुखलाभ के लिए दर्शन का ही आश्रय लेते हैं। दर्शन की इतनी उपयोगिता है। धर्महीन लोग पशुओं के समान होते है, ऐसे सुभाषित हैं। अतः भारतीय दर्शन तो भारतीयों की जीवन शैली ही है। दर्शन में कथित सिद्धान्तों को व्यवहार के लिए जीवन में प्रयुक्त करने हेतु स्मृतिशास्त्र प्रवर्तित होते हैं। उनमें विस्तार करना विधि निषेध आदि को प्रतिपाद्य करता है। जिनके द्वारा जीवन में धर्म का पालन होता है, उनका जीवन धर्म का आदर्शभूत होता है, उसके ही समान महामानवों का चरित्र रामायण, महाभारत पुराण और काव्यों में सम्यक् रूप में परिलक्षित होता है। अतएव सिद्धान्त, उनकी व्यवहारोपयोगिता पूर्वक विधिनिषेधमुख

टिप्पणी

के द्वारा प्रतिपादन और दर्शन के अनुसार जीवन, ऐसे तीन स्तरों से युक्त शास्त्र भी भारत में स्पष्टरूप में उपलब्ध होते है। रघु, राम आदि के जीवन में दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार मनुष्य दर्शनों में सिद्धान्तों को पढ़ें, स्मृति आदि में विधि और निषेध को जानें, महात्मा-पुरूषों के जीवन में उसके उपयोग को देखें। इसके द्वारा अपने जीवन में दर्शन के अनुसार व्यवहार सुबोध, सुलभ और सुकर होता है। इस प्रकार भारतीय दर्शनों की व्यावहारिकता होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

## 1.6.2 अधिकारी-भेद से दर्शनभेद

मानवों में नर-नारी, यह लैंगिक भेद है। आयु में शिशु, युवक और वृद्ध का भेद है। सत्व, रजस् और तमस् तीन गुण हैं। गुणों के तारतम्य के कारण मनुष्यों के तामसिक, राजसिक और सात्विक भेद होते हैं। उसमें भी रज-उपसर्जनीभूत तामसिक, तम-उपसर्जनीभूत राजसिक, सत्व-उपसर्जनीभूत राजसिक, रज-उपसर्जनीभूत-सात्विक भेद उपलब्ध होते हैं। अत एव वर्ण और आश्रम, ये दो विभाग भारतीय संस्कृति में ही परिलक्षित होते हैं। मानव ने आश्रमों में विभाजन किया है। वे आश्रम हैं - ब्रह्मचर्य-गृहस्थ- वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या की उपासना होती है। गृहस्थ आश्रम में विषय की उपासना। वानप्रस्थ आश्रम में संयम द्वारा तप का आचरण। और सन्यास आश्रम में विधि पूर्व इहलौकिक एवं परलौकिक कामनाओं के त्यागपूर्वक मोक्ष की साधना। मानवों के सत्व आदि गुणों के तारतम्य से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र, चार वर्ण स्वभाव से (कर्म से) सिद्ध होते हैं, न की जन्म से। इस प्रकार ब्राह्मण के चार आश्रम, क्षत्रिय के चार आश्रम, वैश्य के चार आश्रम और उसी प्रकार शूद्र के भी। तमोगुण की अधिकता के कारण आश्रम व्यवस्था के लिए शूद्र स्वयं को योग्य नहीं मानते। इस प्रकार मानवों के आठ विभाग होते हैं।

इनमें पुनः वैराग्य के तारतम्य से अर्थात् मन्द-मध्यम-तीव्र वैराग्य के भेद से विधि और निषेध में भेद होते है। मानवों के तर्क-विचार में, कर्म में, भक्ति में और ध्यान आदि में मन प्रवणता के भेद से चार भेद होते है। और उसके द्वारा जो तर्क द्वारा मीमांसा करने के लिए प्रधान रूप से प्रवृत्त होते है, वे ज्ञानयोग के अधिकारी होते हैं। जो सकाम-निष्काम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे कर्मयोग के अधिकारी होते हैं। जो प्रेमास्पद ईश्वर की प्रेमपूर्वक पूजा और उपासना करने के लिए प्राकृतिक रूप से प्रवृत्त होते हैं, वे भक्ति योग के अधिकारी होते हैं। जो आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि में नैसर्गिक प्रवृत्ति को अनुभव करते हैं, वे राजयोगी अथवा ध्यानयोगी हैं, ऐसा कह सकते हैं। यद्यपि सभी में तर्क-कर्म- प्रेम-ध्यान आदि होते हैं तथापि जिसकी प्रधानता होती है, उसके योग्य, उसका वह अधिकारी, इस प्रकार विभाग होता है। यह उसका अनेक जन्मार्जित स्वभाव-धर्म, स्वधर्म और पिण्डधर्म कहा जाता है। अत एव गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कहा- 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

नर-नारी भेद, वयसा-भेद, गुणों के तारतम्य से भेद, वैराग्यमात्र से भेद, मन प्रवणता द्वारा भेद, इस प्रकार मानव के बहुत से विभाग हैं जो स्वत: ही सिद्ध है। अत: कहे गए सभी विभागों के लिए सुख के उपाय भिन्न हैं। वे सभी एक प्रकार का सुख ही नहीं चाहते हैं। तमोगुणी निद्रा द्वारा सुख चाहता है। राजसिक कर्म द्वारा तथा सात्विक ज्ञान द्वारा सुख चाहते है। अत: मानवों की योग्यता में भेद है। जैसी योग्यता वैसी सुख-प्राप्ति। अत एव वैसे ही सुख सम्बन्धी उपाय की चेष्टा। सभी प्रकार के मानवों के उपाय का उपदेश दर्शन करता है। यद्यपि सभी दर्शन इतने समर्थ/प्रौढ़ नहीं हैं किन्तु दर्शन का यह कर्तव्य है कि शक्ति-भेद से व्यक्ति-भेद, व्यक्ति-भेद से अधिकार-भेद, अधिकार-भेद से विधान-भेद हो।

अतएव दर्शनों में विधान-बहुलता परिलक्षित होती है। किसी एक के लिए जो विधान है, वह अन्य के लिए निषिद्ध भी हो सकता है। यथा उदर-रोग की औषधि सिर संबंधी रोग के निवारण हेतु दी जाय तो यह इष्ट तो नहीं होता है, अनुचित ही होता है। इस प्रकार एक के लिए दर्शन का जो विधान है, वह अन्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इस विषय को सरलता से समझने हेतु एक उदाहरण दिया गया है। देहली गन्तव्य स्थल है। देहली जाने हेतु वायुमार्ग, भूमार्ग तथा रेलमार्ग, ये तीनों मार्ग हैं। ये भी पुन: विभिन्न स्थानों के लिए देहली में गमन हेतु अनेक हैं। कोई देहली में भ्रमण की इच्छा होने पर किस मार्ग से और किस वाहन द्वारा जाएगा, यह प्रश्न है। जो निश्चित रूप से चण्डीगढ़ में है, उसका जितना धन है, तदनुसार उसके द्वारा विमान-रेलयान-वाहन आदि अवलम्बित किया जाता है। परन्तु वह उज्जयिनी आकर देहली जाए, ऐसा उपदेश उसके लिए अयुक्त ही है। इसी प्रकार जो निश्चय ही उज्जयिनी में है, वह वाराणसी जाकर देहली जाए, यह वचन निष्प्रयोजक एवं भ्रामक है। और जो नागपुर में रहता है, वह चैन्नई नगर जाकर देहली जाए, यह स्पष्ट रूप से ही अत्यन्त विपरीत उपदेश है। उसी प्रकार सभी मानव पूर्व-पूर्वजन्मों में अर्जित संस्कार द्वारा प्रभावित अपने मार्ग पर चलकर मोक्ष के समीप अथवा दूर होते हैं एवम् मोक्ष के अनेक मार्ग हैं। उनमें किसके मार्ग पर क्या है। अत: जो जिस मार्ग द्वारा प्रस्थित है, जितनी दूर आया है, वहाँ से आगे जाए, यह उपदेश ही साधना चाहिए (अर्थात् माना जाना चाहिए) वह ही उपदेश श्रेयस्कर है। इस प्रकार मार्ग-भेद द्वारा मार्ग में स्थिति के भेद बहुत प्रकार के होंगे, यह उपदेश हो, इसमें आश्चर्य नहीं। यदि ऐसा उपदेश न हो तो आश्चर्य हो की अनेक रोगों की एक ही औषधि कैसे हो? विविध आकार के लोगों के लिए एक आकार के पहनने योग्य वस्त्र कैसे हो?

## 1.6.3 पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष रूपों द्वारा मत की परिशुद्धि

दर्शन दूरदृष्टि, भविष्यत्-दृष्टि और अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है। जीवनयापन के मार्ग का उपदेश और शिक्षा देता है। समय समय पर विद्वानों में भी मति-भेद एवं व्युत्पत्ति भेद के कारण मतभेद होते हैं। जब भी मतभेद होता है, तब कौन सा मत अच्छा है, इस

टिप्पणी

निर्णय के लिए कोई मार्ग आवश्यक होता है। और वह मार्ग शास्त्रार्थ के रूप में अंगीकृत किया गया है। शास्त्रार्थ किसी वाद-विवाद का सर्वसम्मत उपाय है। वहाँ युक्ति प्रधान होती है। पूर्वपक्ष अपने मत को स्थापित करता है। उत्तरपक्ष सामर्थ्य के अनुसार युक्ति द्वारा उसके खण्डन में प्रवृत्त होता है। वहाँ क्रमशः दो पक्षों में वाक्य-प्रबन्ध होता है। इस वाक्य-प्रबन्ध को कथा कहते हैं। अतः भारतीय दर्शन का वैशिष्ट्य यह है कि युक्ति द्वारा मत की परिशुद्धि की जाती है। कोई भी मत बलात् ग्रहण नहीं किया जाता है। यदि वादी-प्रतिवादी का समय-भेद के कारण एकत्र वाद सम्भव नहीं होता है तो दोष होने पर पूर्व में लिखे गए ग्रन्थ के खण्डन में परिवर्ती विद्वान प्रवृत्त होते हैं।

## 1.6.4 धर्म से दर्शन पृथक नहीं है

धर्मशास्त्र और दर्शन, यह विभाग भारत में ही दिखाई देता है। पाश्चात्य देशों में इन दोनों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। धर्मशास्त्र जीवन पर आश्रित है। दर्शन किसी बुद्धिमान का विस्तृत चिन्तन है, ऐसा मानना है। दर्शन का धर्मशास्त्र पर प्रभाव नहीं है, मानव जीवन पर तो नहीं ही है। परन्तु ऐसा भारतीय दर्शनों में नहीं। भारतीय दर्शन में जो लक्ष्य निश्चित किया जाता है, उसके लाभ के लिए धर्मशास्त्र प्रवर्तित होता है। मानव जीवन भी दर्शनशास्त्र में कहे लक्ष्य की सिद्धि हेतु नियन्त्रित होता है। अतः भारतीय दर्शन धर्म से अथवा जीवन से भिन्न नहीं है। दर्शन, धर्मशास्त्र और जीवन, सभी एक सूत्र रूप है। एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे के साधक हैं। यह पाश्चात्य दर्शन से भारतीय दर्शन का महान भेद है।

### पाठगत प्रश्न 1.4

35. दर्शन के प्रतिपाद्य विषय स्थूल रूप से क्या हैं?
36. भारतीय दर्शन व्यवहार-योग्य है अथवा नहीं?
37. दर्शन, स्मृति पुराण आदि क्या करते हैं?
38. भारतीय दर्शन का धर्म पर प्रभाव है अथवा नहीं?
39. यह आश्रम है -

    (क) संन्यास (ख) ब्राह्मण (ग) तमः (घ) क्षत्रिय

40. यह वर्ण है-

    (क) ब्रह्मचर्य (ख) गृहस्थ (ग) क्षत्रिय (घ) सत्व

41. यह गुण नहीं है -

    (क) सत्व (ख) शूद्र (ग) रज (घ) तम

## 1.7 दर्शनों में मतभेद का कारण

मतभेद के अनेक कारण हैं। उदाहरण द्वारा कुछ प्रकट किये गए हैं।

**दार्शनिकों के सामर्थ्य-भेद से दर्शनों में कलह** - कुछ नेत्रहीन लोग गज को देखने गए। उनमें से किसी ने हाथी के पूँछ को स्पर्श करके कहा की यह हाथी झाड़ू के समान है। किसी ने पद स्पर्श करके कहा की यह हाथी स्तम्भ के समान है। अन्य ने कान स्पर्श करके निर्णय किया की हाथी सूप के समान है। इस प्रकार सभी अंधों ने हाथी के किसी अवयव को स्पर्श करके निर्णय किया कि हाथी इस प्रकार का है। जब उनके द्वारा परस्पर आलाप किया गया तो उनमें विवाद उत्पन्न हुआ। प्रत्येक नेत्रहीन का मत था की गज स्वयं द्वारा जैसा अनुभूत हुआ वैसा ही है, अन्यथा नहीं। इनमें कलह का कारण स्पष्ट ही है। कलह की व्यर्थता भी स्पष्ट है। उसी प्रकार सत्यान्वेषण में लगे विद्वान सत्य का किस उपाय द्वारा क्या अनुभव प्राप्त कर निर्णय करते हैं कि यह ही अन्तिम सत्य है, इसके अतिरिक्त सत्य नहीं हो सकता है। अत: दार्शनिकों में कलह होती ही है। यथा दृष्टि शून्य लोग स्व चाक्षुषदोष के कारण दूषित होकर गज के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते तथा कलह में मग्न होकर अपने सामर्थ्य के अभाव से सत्य वस्तु के ज्ञान-प्राप्ति में असमर्थ होते हैं। सत्य एक ही होता है। मतभेद से भिन्न नहीं होता। मतों के भेद से मार्ग भिन्न होते है। जैसे मत होते हैं वैसे ही उसके मार्ग होते हैं। सत्य तो एक ही है।

### अधिकारी भेद से दर्शनों में कलह:

ऊपर अधिकारी का भेद संक्षेप रूप से निरूपित किया गया है। अधिकारी-भेद से भी सत्य के प्रतिपादन में भेद होता है। सत्य मन्द बुद्धि जनों के लिए दुर्बोध होता है। अत: उनके लिए उपयोगी शास्त्रों में सरल रूप का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार का प्रतिपादन प्रथम दृष्टि में परस्पर विरोधी प्रतिभासित होता है। फिर भी वह उपासकों की सुकरता के लिए कल्पित है।

**शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते।**
**अनागमविकल्पा तु स्वयं विद्योपवर्तते॥ (वाक्यपदीय 2.233)**

**उपाय: शिक्षमाणानां बालानां चोपलालना:।**
**असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा तत: सत्यं समीहते॥ (वाक्यपदीय 2.238)**

**सरलार्थ**- विभिन्न शास्त्रों में विभिन्न प्रक्रियाएँ होती है। उनमें अविद्या ही वर्णित है। तथापि उन अविद्याओं के द्वारा विद्या स्वयं ही प्रकट होती है। अत: अविद्या ही विद्या का उपाय है।

वर्णित उपाय क्रीड़ा (उपलालन) एवं छल (प्रतारणा) के ही समान हैं। उपलालन का अर्थ है खेलना। शिशुओं के मनोरञ्जन के लिए कोई भी क्रीडनक दिया जाता है, उसी

टिप्पणी

प्रकार ये उपाय होते हैं। जिससे वहाँ असत्य रूप में शास्त्र की प्रक्रियामात्र के अर्थ में स्थित होकर उनके अवलम्बन से सत्य की प्राप्ति होती है। और अन्य-

**चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्फलस्याशरीरिणः।**
**उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना॥ ( श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद 1.7 )**

**सरलार्थ** - ब्रह्म चिन्मय, अद्वैत, निष्फल और शरीर रहित है। तथापि उपासकों के कार्यपूर्ति हेतु मत्स्य, कूर्म आदि रूप द्वारा विभिन्न रूप धारण कर अवतरित होता है।

अतः सिद्ध है कि अधिकारी-भेद से उपाय-भेद होते हैं। परन्तु यह व्यवस्था अल्प-बुद्धि वाले व्यक्तियों द्वारा नहीं समझी जाती है। अतः व्यवस्था में दोष देखकर परस्पर कलह में लिप्त रहते हैं तथा जगत् में अशान्ति फैलाते हैं।

यथा शिक्षण-व्यवस्था में प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तर कक्षा तक जिस प्रकार से विभाग होते हैं। उसमें भी अनेक विषय तथा अनेक शाखाएँ होती हैं। प्रथम कक्षा आदि रूप द्वारा विभाग बालकों के लिए होता है। विषयभेद और शाखा भेद रूचि के भेद तथा बालकों के विषय ग्रहण के सामर्थ्य के भेद से किए जाते हैं। परन्तु एक वर्ष के शिशु को जो भी द्वादश कक्षा में प्रवेश करायेगा वह मूर्ख हास्य का पात्र होगा। शिशु को उसके योग्य कक्षा में प्रवेश देना चाहिए। यहाँ निम्न कक्षाओं में विषय के प्रतिपादन के लिए अवलम्बित अनेक उपाय वस्तुत असत्य ही हैं। परन्तु अध्ययन में सुकरता उत्पन्न करते हैं। अतः उनकी उपयोगिता है। उसी प्रकार दर्शनों में भी होता है। परन्तु उसकी व्यवस्था को समझने में असमर्थ कलह करते हैं।

## 1.8 दर्शनों में साम्यता

दार्शनिकों में अनेक मतभेद हैं। तथापि साम्यता भी होती है। विरोध के जैसे कारण होते हैं उससे भी अधिक मेल के होते हैं। अतः कुछ समानताएँ भी द्रष्टव्य हैं।

1. **दुःख** - सभी दर्शनों के मत में दुःख है, ऐसा माना गया है। जन्म, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, जीवन में सभी दुःख ही है। उसके परिहार की इच्छा जीवों की होती है। परिहार के उपाय हैं। चार्वाक को छोड़कर अन्य सभी मानते हैं कि दुःख का समूल नाश सम्भव होता है। एवम् दुःख का मूल तृष्णा है। तृष्णा के नाश से दुःख का नाश होता है।

2. **सुख** - सभी जीव सुख चाहते हैं। सुख के उपाय का प्रतिपादन ही दर्शन का कर्तव्य है। सुख-लाभ के लिए सुख के उपाय जानने चाहिए। सुख-ज्ञान और सुख के उपााय का ज्ञान प्रमाण के अधीन होता है। अतः प्रमाण भी प्रतिपादित किये जाने चाहिए।

   जैसे- अनित्यम् असुखं लोकम् इमं प्राप्य भजस्व माम्॥ (गीता)

अर्थात् संसार अनित्य और सुखहीन है। अत: इस लोक में जन्म प्राप्त कर भगवान की उपासना करो। अत: सभी को सुख प्राप्त हो, यह परम उद्देश्य बनाकर सभी दर्शन प्रवर्तित होते हैं।

3. **जीव** - जीव होता है। जीव के स्वरूप के विषय में उन दर्शनों में मतभेद हैं। जीव शरीर के अतिरिक्त भी है, यह मत है। उस जीव का बन्ध है। बन्ध से मोक्ष (मुक्ति) हो सकती है और होती है। मोक्ष का साधन होता है। दर्शनों में जीव के स्वरूप के विषय में, बन्ध-मोक्ष के स्वरूप के विषय में और मोक्ष के साधन के विषय में मतभेद हैं। चार्वाक के मत में शरीर ही जीव है, उससे भिन्न नहीं, न तो बन्ध है और न मोक्ष है।

4. **ईश्वर** - चार्वाक और बौद्ध को छोड़कर अन्य सभी दर्शन स्वीकार करते हैं - जगत का सृष्टिकर्ता कोई ईश्वर है। वह ही नियन्ता भी है। वह ही संहारकर्ता भी है। दर्शनों में ईश्वर के स्वरूप के विषय में मतभेद हैं। सृष्टि प्रक्रिया के विषय में मतभेद हैं।

5. **ऋत** - संसार का प्रचलन नियमबद्ध है। वह नियम 'ऋत' कहलाता है। इस नियम का अतिक्रम किसी के द्वारा भी नहीं किया जा सकता। यद्यपि बौद्ध और जैन इस नियम का नाम ऋत नहीं मानते किन्तु उसके समान नियम को मानते हैं। चार्वाक ऋत को नहीं मानते।

6. **परमपुरूषार्थ** - मोक्ष के स्वरूप में मतभेद हैं। तथापि मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है, ऐसा सभी का मत है। अत: सभी दर्शन पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए हैं। पुरुषार्थ के विषय में उनमें मतभेद हैं।

7. **अविद्या** - अविद्या ही दु:ख का हेतु है। उस अज्ञान से आवृत ज्ञान से जीव मोहग्रस्त होते है, ऐसी गीता की उक्ति है। अर्थात् ज्ञान अज्ञान द्वारा आवृत होता है। अत: लोग मोहग्रस्त होते हैं। चार्वाक अविद्या का निराकरण करते हैं।

8. **कर्मवाद** - 'जैसा कर्म वैसा फल' ही कर्मवाद का मूलस्वरूप है। एक जन्म में किया गया कर्म अन्य जन्मों में फल उत्पन्न करता है। आसक्ति कर्म का मूल है। आसक्त जीव जो जो कर्म करता है, उसका कर्म-फल भोगने के लिए उपयुक्त देह धारण करता है। मुक्ति-लाभ से पूर्व यह देह से देहान्तरगमनरूप चक्र अनिरूद्ध होता है। कर्म द्वारा सुफल और कुफल होता है, यह माना गया है। अर्थात् कर्मसिद्धान्त को समझते हैं। जन्म-मरण रूप संसार-चक्र को स्वीकार करते हैं। स्थूल शरीर में जीव रहता है। और वह मृत्यु के पश्चात् भिन्न शरीर का आश्रय फल उत्पन्न करने हेतु लेता है, ऐसा अनुमान करते हैं। चार्वाक कर्मवाद को स्वीकार नहीं करता है।

9. **युक्ति** - दर्शन युक्ति पर प्रतिष्ठित होते हैं। साधक-बाधक युक्ति के प्रयोग से स्थापित किसी भी मत को स्वीकार करते हैं। एवम् किसी मत के अंगीकृत होने

टिप्पणी

से पूर्व दार्शनिक उसके खण्डन में प्रवृत्त होते हैं। अत: दार्शनिकों में खण्डन-मण्डन की विशिष्ट परम्परा है, यह सभी में समान है। विद्वान किसी के मत के खण्डन से पूर्व उसका सम्यक् रूप से उपस्थापन करते हैं।

10. **दर्शन की व्यावहारिकता** - दर्शन के द्वारा प्रतिपाद्य तत्वों की जीवन उपयोगिता है अथवा नहीं, यह भारतीय दर्शनों में साम्य है। यदि जीवन उपयोगी न हो तो उसके मत को स्वीकार नहीं करते हैं। चार्वाक भी अपने दर्शन की व्यावहारिकता को आवश्यक रूप से प्रतिपादित करते हैं। वेद कहते हैं कि संसार में चार्वाक का मत स्वत: प्रसारित हुआ है। अत: यह लोकायत मत है। भारतीय दर्शनों के दैनिक जीवन में व्यावहारिकता निश्चित ही होती है। कोई भी दर्शन वचनमात्र नहीं होता है।

11. चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी ओंकार को स्वीकार करते हैं। 'ओम मणिपद्मे द्रम्' ये बौद्धों का सुप्रसिद्ध मन्त्र है। जैन में - 'ओम् एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादि पदम्'। कहा गया है कि - 'अरिहन्ता असरीरा आयरिया तह उवज्झाया मुणियाम्'। ओंकार को परमेष्ठी के आदिपद के रूप में स्वीकार किया गया है। आस्तिकों में सभी दर्शन यह स्वीकार करते हैं।

12. चार्वाकों के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनों में पूजा, माला, मन्त्र-जप, तीर्थाटन, तीर्थों में स्नान और मन्दिरों को स्वीकार किया गया है। पाप, पुण्य, स्वर्ग और देवता ही है, यह स्वीकार करते हैं।

13. **प्रमाण**- चार्वाक के मत में सुख और सुखोपाया केवल प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्राप्य हैं। अन्य के मतों को आगे 'प्रमाण' के प्रसंग में स्पष्ट किया जाएगा।

14. सभी दर्शन प्रमाणों की सहायता से सत्यान्वेषण में प्रवृत्त होते हैं। उन प्रमाणों को आगे प्रतिपादन करेंगे।

15. **मत प्रवर्तक आचार्य** - चार्वाक मत के प्रवर्तक देवगुरु बृहस्पति स्वयम् आस्तिक ही माने गए है। गौतम बुद्ध वैदिक कुल के महाराज शुद्धोदन के पुत्र थे। गौतम ने गृह त्याग के पश्चात् बहुत समय तक अन्य अनेक सम्प्रदायों में जीवनयापन किया। अत: उनमें वैदिक संस्कार थे। बहुत से सम्प्रदाय से जो उचित था, उनके द्वारा संग्रहित किया गया। उनके द्वारा ध्यान का मार्ग जाना गया। उन सम्प्रदायों में तप का आचरण किया जाता था। उसके द्वारा उनका चित्त शुद्ध हुआ। अत: अन्त में अल्प प्रयास से उन्होंने सिद्धि को प्राप्त किया और उन्होंने प्रतिपादित किया - 'आत्मदीपो भव'। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में भगवान महावीर मगध राज्य के क्षत्रिय कुल के महाराज सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनकी माता का नाम त्रिशला तथा पत्नी का नाम यशोदा था। तपस्या के द्वारा कैवल्य प्राप्त कर धर्म का प्रवचन दिया। जैन धर्म के ऋषभ, अजितनाथ, अरिष्टनेमि, इन तीनों तीर्थंकरों के नाम यजुर्वेद में प्राप्त होते हैं।

## पाठगत प्रश्न 1.5

42. गौतम बुद्ध के पिता का नाम क्या था?

43. महावीर के पिता का नाम क्या था?

44. ये दार्शनिक ओंकार को स्वीकार नहीं करते हैं -

(क) चार्वाक (ख) जैन (ग) बौद्ध (घ) सांख्य

## 1.9 दर्शनशास्त्र के प्रकार

दर्शन कितने हैं, यह निर्णय कठिन (दुष्कर) है। गुणरत्न और मणिरत्न जैन पण्डित का मानना है कि दर्शन की संख्या और स्वरूप निर्धारित करना सम्भव नहीं है। अनेक मुनियों का मत प्रमाण है कि महाभारत में युधिष्ठिर का वचन (कथन) है। दर्शन की संख्या कुछ 363 है। विभिन्न मत के अनुसार दर्शन की संख्या प्रदर्शित करते है-

### सम्मतितर्क मत -

दर्शन 363 हैं। उनमें क्रियावादी 180, अक्रियावादी 84, आज्ञावादी 67, वैनयिक 32 हैं। यह मत बहुतों के द्वारा नहीं माना जाता है।

### सर्वसिद्धान्तसंग्रह मत

(1) अक्षपाद (गौतम), (2) कणाद, (3) कपिल, (4) जैमिनि, (5) व्यास, (6) पतञ्जलि, (7) बृहस्पति, (8) आर्हत, (9) बुद्ध इन आचार्यों के नाम उल्लिखित कर दर्शन नौ (9) कहे गए हैं। वहाँ भी भाट्ट, प्रभाकर और मुरारि मिश्र के भेद से जैमिनीय मीमांसक तीन प्रकार के हैं। और बौद्ध माध्यमिक-योगाचार- सौत्रान्तिक-वैभाषिक के भेद से चार प्रकार के हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में अवधूत मार्ग भी परिलक्षित होता है।

### अग्नि पुराण मत

1) तर्कशास्त्र, 2) क्षणभंगवाद, 3) भूतचैतन्यवाद, 4) स्वप्रकाश-ज्ञानवाद (प्रभाकर और वेदान्ती), 5) अनेकान्तवाद (जैन), 6) शैवसिद्धान्त, 7) वैष्णवमत, 8) शाक्तसिद्धान्त, 9) सौरसिद्धान्त, 100 ब्राह्मसिद्धान्त, 11) सांख्यसिद्धान्त

### महाकवि राजशेखर का मत

1) नैयायिक, 2) वैशेषिक, 3) जैन, 4) बौद्ध, 5) सांख्य, 6) मीमांसक, 7) चार्वाक, यह काव्यमीमांसा में राजशेखर मानते हैं।

टिप्पणी

**षड्दर्शनसमुच्चय-मत**

1) बौद्ध, 2) नैयायिक, 3) सांख्य, 4) जैन, 5) वैशेषिक और 6) जैमिनि

**सर्वदर्शनसंग्रह-मत**

1) चार्वाक, 2) बौद्ध, 3) जैन, 4) रामानुज, 5) पूर्णप्रज्ञ, 6) नाकुलीशपाशुपत, 7) शैवदर्शन, 8) प्रत्यभिज्ञादर्शन, 9) रसेश्वर, 10) वैशेषिक, 11) न्याय, 12) जैमिनि, 13) पाणिनि, 14) सांख्य, 15) योग, 16) शंकर-मत

वैदिक दर्शनों में भी तर्कप्रधानशाखा और शब्दप्रधानशाखा, यह विभाग सुगम है। जिस वेद की प्रामाणिकता तर्क के द्वारा सिद्ध होती है, वह तर्कप्रधान दर्शन हैं। यथा - न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य और योग तर्कप्रधान हैं। पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा शब्दप्रधान हैं।

इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में आचार्य भिन्न शैली को अवलम्बित कर दर्शन संख्या को प्रदर्शित करते हैं। अतिप्रचलित एवं बहुसम्मित दर्शन नीचे दिये गए हैं।

## 1.9.1 दर्शन विभाग

भारत में आस्तिक और नास्तिक के भेद से दर्शनों के दो भाग किये जाते हैं। आस्तिक क्या हैं और नास्तिक क्या हैं? वेद का प्रमाण्य जो दर्शन स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन हैं। और जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन हैं, ऐसा विभाजन सुबोध है। जो वेदप्रतिपाद्य को स्वीकार करते हैं, समर्थन करते तथा जानते है, वे आस्तिक दर्शन हैं। जो वेद के प्रतिपाद्य का विरोध करते हैं वे नास्तिक दर्शन हैं। नास्तिक वेदनिन्दक हैं, ऐसा मनु मुनि का मत है। तीन नास्तिक दर्शन हैं। छः आस्तिक दर्शन हैं।

**नास्तिक दर्शन हैं** - 1) चार्वाक दर्शन, 2) जैन दर्शन, 3) बौद्ध दर्शन। बौद्ध दर्शन के चार भेद हैं। वे हैं - 1) माध्यमिक दर्शन, 2) योगाचार दर्शन, 3) सौत्रन्तिक दर्शन, 4) वैभाषिक दर्शन। इस प्रकार नास्तिक दर्शन कुल छः होते हैं।

**छः आस्तिक दर्शन हैं** - 1) न्याय दर्शन, 2) वैशेषिक दर्शन, 3) सांख्य दर्शन, 4) योग दर्शन, 5) पूर्वमीमांसा दर्शन, 6) उत्तरमीमांसा दर्शन। यहाँ उत्तरमीमांसा पद द्वारा वेदान्त दर्शन का बोध होता है।

वहाँ गौतम द्वारा न्याय दर्शन, कणाद द्वारा वैशेषिक दर्शन, कपिल द्वारा सांख्य दर्शन, पतञ्जलि द्वारा योग दर्शन, जैमिनि द्वारा पूर्वमीमांसा और व्यास द्वारा वेदान्त दर्शन प्रणीत है। और एक व्यासप्रणीत वह वेदान्त दर्शन भी बहुत से विद्वानों द्वारा द्वैत-अद्वैत-विशिष्टद्वैत-शुद्धद्वैत के प्रभेद से नाना प्रकार का है - जैसे बुद्ध के एक उपदेश होने पर भी शिष्यों के

बुद्धि के वैचित्र्य से स्व-स्वबुद्धि के अनुसार पदार्थ की कल्पना द्वारा योगाचार-माध्यमिक-सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक भेद हुए। उसी प्रकार वेदान्त के भी भेद हैं।

**षड् दर्शनानि मेऽंगानि पादौ कुक्षिः करौ शिरः।**
**तेषु भेदन्तु यः कुर्यादंगच्छेदको हि सः॥**
**एतान्येव कुलस्यापि षडंगनि भवन्ति हि।**
**तस्मान्मदात्मकं कौलमहं कौलात्मकः प्रिये॥**

**भावार्थ**- शिव ने पार्वती को कहा- ये षड् दर्शन मेरे ही अंग हैं। यथा - शरीर में पाद (पैर), कुक्षि (उदर), कर (हाथ), सिर इत्यादि अंग होते है, उसी प्रकार। अर्थात् एक-दूसरे के पूरक हैं, न की विरोधी। और भी जैसे सभी अंगों की विशिष्ट उपयोगिता होती है वैसे ही दर्शनों की भी विशिष्टि उपयोगिता है। पैरों का कार्य सिर नहीं करता, ना ही सिर का कार्य पैर करते हैं। वैसे ही यहाँ जानना चाहिए। अत एव इन अंगों में भेद है ऐसा जो सोचता है वह तो अंगछेदक के समान है। अर्थात् कोई भी अंग अनुपयोगी है, ऐसा मानकर उसका छेदन करना जैसे मूर्खता करना है, वैसे ही दर्शन में भी है।

| प्रणेता | दर्शन |
|---|---|
| बृहस्पति | चार्वाक |
| महावीर | जैन |
| गौतम बुद्ध | बौद्ध |
| कपिल | सांख्य |
| पतञ्जलि | योग |
| कणाद | वैशेषिक |
| गौतम | न्याय |
| जैमिनि | पूर्वमीमांसा |
| बादरायण व्यास | उत्तर मीमांसा (वेदान्त) |

जगत में दर्शन के जो अल्प भी विचार उत्पन्न हुए उसके प्रथम आचार्य कपिल ही हैं। कपिल का उल्लेख वेदों में भी उपलब्ध होता है। यथा-ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत। वह जन्म से सिद्ध थे। अतः कपिल को श्रद्धापूर्वक स्मरण एवं नमन कर दर्शन के अध्ययन में प्रवृत्त होना चाहिए। सम्पूर्ण जगत कपिल का ऋणी है।

टिप्पणी

## पाठगत प्रश्न 1.6

45. अग्निपुराण में कितने दर्शन उल्लिखित हैं?

46. सर्वदर्शन संग्रहकार के मतानुसार कितने दर्शन है?

47. आर्हत दर्शन के प्रणेता कौन है?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) अक्षपाद

48. अक्षपाद का अपर नाम क्या है?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) गौतम

49. पूर्वमीमांसा के प्रणेता कौन हैं?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) जैमिनि

50. कपिल प्रणीत दर्शन कौन सा है?

(क) न्याय (ख) वैशेषिक (ग) पाशुपत (घ) सांख्य

51. बृहस्पति प्रणीत दर्शन कौन सा है?

(क) न्याय (ख) वैशेषिक (ग) पाशुपत (घ) चार्वाक

52. सभी दर्शनों के आद्य आचार्य कौन हैं?

(क) कणाद (ख) व्यास (ग) गौतम (घ) कपिल

## 1.10 प्रमाण

कौन सा दर्शन कितने प्रमाणों का उल्लेख करता है, संक्षेप में कहते हैं। इसलिए कारिकाएँ हैं–

**प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणाद-सुगतो पुनः।**
**(आर्हताः प्रत्यक्षमनुमानं चेति)**
**अनुमानं च तच्चापि सांख्याः शब्दं च ते उभे॥**
**न्यायैकदेशिनोऽप्येवमुपमानं च केचन।**
**अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याह प्रभाकरः॥**
**(मध्वाः प्रत्यक्षं शब्दश्चेति)**
**अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वदान्तिनस्तथा।**
**संभवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिकाजगुः॥**

**सरलार्थ**- चार्वाक प्रत्यक्ष ही केवल एक प्रमाण है ऐसा मानते हैं। कणाद - वैशेषिक, बौद्ध और आर्हत - जैन प्रत्यक्ष और अनुमान, ये दो प्रमाण मानते हैं। सांख्य और नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण मानते हैं। कुछ नैयायिक तो उपमान को भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार नैयायिक चार प्रमाण स्वीकार करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। प्रभाकर मीमांसक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, ये पाँच प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भाट्ट मीमांसक और वेदान्ती प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि , ये छः प्रमाण स्वीकार करते हैं। वेदान्तियों में भी विशिष्टाद्वैत-मत में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण ही माने गए हैं। पौराणिक तो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव और ऐतिह्य, ये आठ प्रमाण स्वीकार करते हैं।

## पाठगत प्रश्न 1.7

53. बौद्ध मत में यह प्रमाण नहीं है।

(क) अनुमान (ख) प्रत्यक्ष (ग) शब्द (घ) इनमें से कोई भी नही

54. शब्द प्रमाण को ये स्वीकार नहीं करते हैं।

(क) पौराणिक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) बौद्ध

55. अनुमान प्रमाण को ये स्वीाकर नहीं करते हैं।

(क) चार्वाक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) बौद्ध

56. अर्थापत्ति को ये स्वीकार नहीं करते हैं।

(क) पौराणिक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) नैयायिक

57. प्रत्यक्ष और अनुमान, ये दो ही प्रमाण है, ऐसा कौन नहीं कहते हैं?

(क) चार्वाक (ख) वैशेषिक (ग) आर्हत (घ) नैयायिक

58. स्तम्भों में स्थित परस्पर सम्बद्धों को मिलाएँ।

| क-स्तम्भ | ख-स्तम्भ |
|---|---|
| 1. प्रमाण | (क) दृश्-धातु के भाव में ल्युट् |
| 2. प्रमाता | (ख) दृश्-धातु के कर्म में ल्युट् |
| 3. प्रमेय | (ग) दृश्-धातु के करण में ल्युट् |
| 4. प्रमा | (घ) दृश्-धातु के कर्ता में ल्युट् |
| 5. आस्तिक दर्शन | (ड़) वेद का प्रामाण्य न मानने वाले |
| 6. नास्तिक दर्शन | (च) वेद का प्रामाण्य मानने वाले |

टिप्पणी

## 1.11 ईश्वर

विविध दर्शनों ने ईश्वर को माना है। यदि माना है तो उसका स्वरूप क्या है, कार्य क्या है, यह विषय अत्यन्त संक्षेप में यहाँ दिया गया है।

चार्वाक के मत में ईश्वर तो नहीं ही हैं। एवं बौद्ध भी सर्वज्ञ, बुद्ध के अतिरिक्त ईश्वर को नहीं मानते हैं। जैन मत में सर्वज्ञ अर्हत मुनि ही ईश्वर हैं, अन्य नहीं। सांख्य भी जीव के अतिरिक्त ईश्वर को नहीं मानते हैं। मीमांसकों के मत में कर्म ही फल देता है, उसके अतिरिक्त फल देने वाला ईश्वर कोई नहीं है। कुछ मीमांसक ईश्वर को स्वीकार करते हैं। शब्दोपासक वैयाकरण कहते हैं –

**परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।**
**ह्यदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥**

इस प्रकार शब्द चतुष्ट्य में मूलभूत पराख्य शब्द (परा वाक), वह ही ईश्वर है, ऐसा कहते हैं। रामानुज के मत में जीवों का नियन्ता, जीवान्तर्यामी जीवों से भिन्न ईश्वर है। जीव वर्ग और जड़वर्ग उसका शरीर है। वह ही जीवों द्वारा किए गए यथाकर्म का यथाश्रुत फल देता है। और वह ज्ञानस्वरूप है। चार प्रकार के दार्शनिक माहेश्वर, नैयायिक, वैशेषिक और माध्व, ऐसा मानते हैं। ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं है। किन्तु केवल निमित्त कारण ही है। वह ही कर्म-फलदाता है। माहेश्वरों में लकुलीश, पाशुपत और प्रत्यभिज्ञावादी मानते हैं कि कर्मफल देने हेतु ईश्वर कर्म की अपेक्षा नहीं करता। ईश्वर का फलदातृत्व कर्म की अनपेक्षा को कहता है। तो वहाँ युक्ति है – यदि ईश्वर कर्म की ही अपेक्षा करके फल देगा तो उसके स्वातन्त्र्यभंग का प्रसंग होगा। कर्म का तो फल स्वातन्त्र्यपूर्वक निमित्त कारण होता है।

माहेश्वरों से इतर वैशेषिक और माध्व कर्मसापेक्ष ईश्वर संसार का निर्माण करता है, ऐसा कहते हैं। पातञ्जल दर्शन के मत में ईश्वर जीव की अपेक्षा भिन्न है। किन्तु वह निर्विशेष, निर्लेप और निर्गुण है। और वह न तो जगत का उपादान कारण है और न निमित्तकारण।

और अद्वैतवादी शंकर के मत में परमात्मा निर्विशेष, निर्लेप, निर्गुण, एक एवं पारमार्थिक है। वह न जगत का उपादान कारण है, न निमित्त कारण। जगत की पारमार्थिक सत्ता ही नहीं है तो उसका कारण कहाँ से होगा। जगत् का कारण तो मायोपाधिक परमात्मा है। इसे ही ईश्वर मानते हैं। यह मायाविशिष्ट और स्वप्रधानता पूर्वक जगत का निमित्तकारण होता है। माया की प्रधानता से जगत का परिणामी उपादान कारण होता है। यह ईश्वर माया के आश्रय, मायाविशिष्ट एकदेशभूत केवल जगत का विवर्त उपादान कारण होता है। जीव द्वारा किये कर्मों और उन कर्मों के अनुसार फल यह ईश्वर ही देता है।

## 1.12 मोक्ष

सभी लोगों का चरम काम्य मोक्ष है। उस विषय में दर्शनों के मत यहाँ अति संक्षेप से दिये गए हैं। मृत्यु-देह का नाश ही मोक्ष है, ऐसा चार्वाक का मत है। आत्म का छेदन ही मोक्ष है, ऐसा शून्यवादी और माध्यमिक बौद्ध मानते हैं। निर्मल ज्ञान का उदय ही मोक्ष है, ऐसा अन्य (इतर) बौद्ध मानते हैं। कर्म करने वालों के देह स्वरूप के आवरण के अभाव में जीव का सतत् (निरन्तर) ऊर्ध्वगमन ही मोक्ष है, ऐसा जैन मानते हैं। सर्वज्ञ आदि के परमात्मगुणों की प्राप्ति और भगवत्स्वरूप का अनुभव मोक्ष है, ऐसा रामानुजीय मानते हैं। जगत् कर्त्तत्व-लक्ष्मी पतित्व-श्रीवत्सप्राप्तिरहित, दु:ख से अमिश्रित पूर्ण सुख को मोक्ष कहते हैं, ऐसा माध्व मानते हैं। परम ऐश्वर्य की प्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा नकुलीशपाशुपत मानते हैं। शिवत्व की प्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा शैव मानते हैं। पूर्णात्मता का लाभ ही मोक्ष है, ऐसा प्रत्यभिज्ञावादी मानते है। देहस्थैर्य में जीवनमुक्ति ही मोक्ष है, ऐसा रसेश्वरवादी मानते हैं। अशेष-विशेष गुणोच्छेद को मोक्ष कहते है, ऐसा वैशेषिक मानते हैं। आत्यन्तिक दु:खनिवृत्ति मोक्ष है, ऐसा नैयायिक मानते हैं। दु:ख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति मोक्ष है, ऐसा नैयायिक के एक सम्प्रदाय मानते हैं। स्वर्ग-आदि की प्राप्ति मोक्ष है, ऐसा मीमांसक मानते हैं। मूलचक्रस्थ, परानामिक और ब्रह्मरूप का वाचक दर्शन ही मोक्ष है, ऐसा पाणिनी का मानना है। प्रकृत में पुरूष का स्वरूप द्वारा अवस्थान ही मोक्ष है, ऐसा सांख्य दार्शनिकों का मानना है। कृतकर्त्वय पूर्वक पुरूषार्थशून्य सत्व-रज-तम का मूलप्रकृति में आत्यन्तिक लय प्रकृति कर मोक्ष है, चितिशक्ति का निरूपाधिक स्वरूप द्वारा अवस्थान मोक्ष है, ऐसा पातञजल मानते हैं। मूलज्ञान की निवृत्ति होने पर अपने स्वरूप का साक्षात्कार मोक्ष है, ऐसा अद्वैतवेदान्ति मानते हैं।

### पाठगत प्रश्न 1.8

59. ये ईश्वर के स्वीकारक (विस्तारक/स्वीकार करने वाले) है।

    (क) चार्वाक (ख) वेदान्ती (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

60. ये ईश्वर के स्वीकारक नहीं है।

    (क) विशिष्टाद्वैती (ख) वेदान्ती (ग) सांख्य (घ) माध्व

61. ये दर्शन प्रवर्तक से अन्य किसी ईश्वर को नहीं स्वीकार करते हैं।

    (क) आर्हत (ख) विशिष्टाद्वैती (ग) वैशेषिक (घ) माध्व

62. मृत्यु ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

    (क) चार्वाक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

टिप्पणी

63. स्वर्गप्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) चार्वाक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

64. अशेषविशेषगुणोच्छेद ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) वैशेषिक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

65. जीव का सतत् ऊर्ध्वगमन मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) वैशेषिक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

## पाठसार

भारतीय दर्शन का सामान्य परिचय इस पाठ में संक्षेप रूप में दिया गया है। दर्शन शब्द दृशिर् प्रेक्षणे इस धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। यहाँ यद्यपि ज्ञान-सामान्य यह अर्थ ग्रहण होता है तथापि प्रमा, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय, यह चार अर्थ भी दर्शन शब्द के विवक्षा भेद और प्रसंगभेद से होते है।

सुख चाहता हुआ जीव क्रमशः उन्नति करके अन्तिम गति द्वारा दर्शन का ही अन्वेषण करता है। लोग सुख के प्रकार एवं अलौकिक उपायों को जानने के लिए दर्शन का अवलम्बन करते हैं। दर्शन के बिना मानव पशु के समान है, ऐसा इस दर्शन का माहाम्य है। दर्शन का विषय अत्यन्त व्यापक होता है। जीव अपने अभीष्ट लाभ के लिए ही सभी शास्त्र और भवन आदि का सृजन करते हैं। अतः दर्शन स्व अभीष्ट लाभ का अलौकिक उपाय बताता है। उसकी ही सहायता से अन्य सभी विज्ञान आदि शास्त्र जाने जाते है। दर्शन ही जीवन के आचार-विचार का निर्धारक है। दर्शन की सर्वत्र व्याप्ति होती है।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, चार पुरूषार्थ हैं। जीव इससे भिन्न जीवन में कभी भी कुछ भी नहीं चाहता है। पुरूष द्वारा अर्थमान होने से ये ही पुरूषार्थ हैं। काम सोपाधिक, जन्य, अनित्य सुख है और मोक्ष निरूपाधिक, अजन्य, नित्य सुख है। अतः मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। काम का कारण धर्म है। धर्म का कारण वेदविहित कर्म है। वेदविहित कर्म के अनुष्ठान के लिए द्रव्य आदि सामग्री ही अर्थ है। इस जन्म में सुख की कामना करने वाले लोकायत हैं। जन्मजन्मान्तर तक सुखमय चक्र की कामना करने वाले मीमांसक हैं। जन्म को रोकने की इच्छा करते हैं, मुमुक्षु हैं, ऐसे सुखकर्मियों के तीन भेद स्पष्ट हैं।

दर्शन इन्द्रियातीत ज्ञान है। और वह प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण के द्वारा नहीं जाना जा सकता। अतः शब्द प्रमाण से ही उसका अवबोध होता है। अत एव दर्शन का मूल वेद ही है।

भारतीय दर्शन केवल पुस्तक मात्र में प्रतिपादित कुछ सिद्धान्त नहीं हैं। ये सभी भारतीय के जीवन को प्रभावित करते हैं। दर्शन के सिद्धान्तों के जीवन में उपयोग के लिए स्मृति-शास्त्र आए। जिनका जीवन दर्शन के अनुसार रहा, उनका जीवन-वर्णन पुराणों आदि में किया गया है।

वय, गुण, प्रवणता और वैराग्य, इनके तारतम्य से दर्शन के उपासकों के भेद हैं। अतः सभी के अनुकूल दर्शनों में अनेक उपाय उक्त हैं। अतः दर्शनों में भेद परिलक्षित होते हैं। और भी, दर्शन जिज्ञासुओं में ग्रहण, धारण आदि के सामर्थ्य भेद से विद्वानों द्वारा विभिन्न उपाय अवलम्बित होने से उनमें विरोध परिलक्षित होते हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं तो विरोध वस्तुतः नहीं होता। ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'' (सत् एक है, विद्वान उसे अनेक प्रकार से कहते हैं।)

यद्यपि दर्शनों में भेद के कारण हैं तथापि साम्यस्थल बहुत से हैं। और वे अधिकांश स्थल धर्म-द्वन्द्व के नाश के लिए जानने योग्य हैं। वे दर्शन अनेक भिन्न-भिन्न शाखाओं में हैं। बहुत से आचार्यों द्वारा उनके विभाग के विविध मार्ग प्रदर्शित किए गए हैं। दर्शनों में भेद के मुख्य कारण प्रमाण हैं। अतः कौन सा दर्शन किस प्रमाण को वर्णित करता है, यह विषय संक्षिप्त रूप से कहा गया है। उसी प्रकार ईश्वर और मोक्ष के विषय में दार्शनिकों में मतभेद है। उनके मतों का उल्लेख यहाँ किया गया है। जीव-सृष्टि-मोक्ष के साधन आदि विषयों में यद्यपि विविधता है तथापि विस्तार के भय को त्याग कर उनका वर्णन किया गया है।

## पाठान्त प्रश्न

1. दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति को दिखाएँ?
2. दर्शन शब्द का अर्थ प्रमा कैसे, वह दिखाएँ?
3. दर्शन शब्द का अर्थ प्रमाता कैसे, वह दिखाएँ?
4. शास्त्र क्या है? परिचय दें?
5. दर्शन की आवश्यकता को उपपादित करें?
6. दर्शन की व्यापकता को आविष्कृत करें?
7. पुरूषार्थों को प्रतिपादित करें?
8. सुख चाहने वालों में विभाग का वर्णन करें?
9. दर्शन के मूल का अन्वेषण करें?
10. दर्शन की व्यवहार योग्यता को सम्पादित करें?

टिप्पणी

11. अधिकार के भेद से दर्शन के भेद हैं, इस विषय को आलोकित करें।
12. धर्म से दर्शन कैसे उत्पन्न होता है, यह बताएँ?
13. दर्शनों में मतभेद के कारणों की आलोचना करें।
14. दर्शनों में साम्यता उपस्थापित करें।
15. अग्निपुराण में गृहीत दर्शनों के भेद को उपास्थापित करें।
16. सर्वदर्शन में गृहीत दर्शनों के भेद को उपस्थापित करें।
17. दर्शन के भेद द्वारा प्रमाण-भेद बताएँ।
18. दर्शन-भेद द्वारा ईश्वर विषयक मत उल्लिखित करें।
19. दर्शन-भेद द्वारा मोक्ष विषयक मत उल्लिखित करें।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-1.1**

1. दृशिर् प्रेक्षणे धातु में ल्यूट्-प्रत्यय के योग से दर्शन शब्द निष्पन्न होता है।
2. ज्ञान-सामान्य
3. प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमा ये चार हैं।
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. जो पुंस अर्थात् मर्त्य की नित्य इष्ट में प्रवृत्ति तथा अनित्य में निवृत्ति का उपदेश दे, वह शास्त्र है। इसकी कारिका है-

   प्रवृत्तिर्वा निवृतिर्वा नित्येन कृतकेन वा।

   पुंसां येनोपदिश्यते तच्छास्त्रमभिधीयते।।

**उत्तर-1.2**

9. धर्म

टिप्पणी



10. बुद्धि और युक्ति द्वारा

11. जामिता-परिहार के लिए मनोरञ्जन करने के लिए नाटक, काव्य, उपन्यास, उद्यान, क्रीड़ा आदि होते हैं।

12. दर्शन की महिमा सभी को ज्ञात है।

13. दर्शन सुखलाभ के अदृष्ट, अलौकिक उपायों को प्रतिपादित करता है।

14. दर्शन का

**उत्तर-1.3**

15. सुख

16. दु:ख

17. सुख दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य। नित्य सुख मोक्ष है। अनित्य सुख काम है।

18. नित्य सुख मोक्ष है।

19. अनित्य सुख काम है।

20. धर्म

21. अधर्म

22. वेदविहित कर्म

23. वेदनिषिद्ध कर्म

24. 'इदं मदिष्टसाधनम्' ऐसा ज्ञान प्रवृत्ति का कारण होता है।

25. अर्थ्यते अति अर्थ:। पुरूष का अर्थ पुरूषार्थ है। अथवा पुरूष द्वारा जो चाहा जाता है, वह पुरूषार्थ है। अर्थात् पुरूष, नर अथवा नारी जो इच्छा करते हैं, वह ही पुरूषार्थ है।

26. पुरूषार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार हैं।

27. धर्म और अर्थ गौण हैं। काम और मोक्ष मुख्य हैं।

28. मोक्ष परम पुरूषार्थ है, नित्य होने के कारण।

29. जो कृतक है वह अनित्य है, यह दृष्ट और अनुमान द्वारा सिद्ध नियम है।

30. चार्वाक, पूर्वमीमांसक और मुमुक्षु।

31. (घ)

32. (घ)

33. (क)

34. (ख)

### उत्तर-1.4

35. जीव, सृष्टि, ईश्वर, ब्रह्म, बन्ध, मोक्ष, मोक्ष साधन ये विषय हैं।

36. व्यवहार योग्य

37. दर्शनशास्त्र सिद्धान्तों को निश्चित करता है। स्मृति विधि और निषेध मुख द्वारा उन सिद्धान्तों का जीवन में व्यवहार हेतु प्रतिपादन करती है। और पुराण आदि में उनका जीवन-चरित्र वर्णित होता है जिनके द्वारा स्वजीवन दर्शन के सिद्धान्त के अनुकूल और स्मृतिशास्त्र सम्मत रूप में चलाया जाता है।

38. प्रभाव है।

39. (क)

40. (ग)

41. (ख)

### उत्तर-1.5

42. शुद्धोदन

43. सिद्धार्थ

44. (क)

### उत्तर-1.6

45. एकादश (ग्यारह)

46. 16

47. (ग)

48. (घ)

49. (घ)

50. (घ)

51. (घ)

52. (घ)

**उत्तर-1.7**

53. (ग)

54. (घ)

55. (क)

56. (घ)

57. (ख)

58. 1-(ग), 2-(घ), 3-(ख), 4-(क), 5-(च), 6-(ङ)

**उत्तर-1.8**

50. (ख)

60. (ग)

61. (क)

62. (क)

63. (घ)

64. (क)

65. (ख)

॥ प्रथम पाठ समाप्त॥

# 2

# भारतीय विधा के विभाग

## प्रस्तावना

भारतभूमि पर उद्‌भुत विद्याओं में जो विलुप्त हैं और जो विद्यमान हैं, वे सभी साक्षात् परम्परा से अथवा वेद से समुद्‌भुत हैं, यह भारतीय मूलदृष्टि है। वेद का कोई भी रचयिता अथवा कर्ता नहीं है। यथा फल भूमि पर गिरता है, आकाश की तरफ नहीं जाता है। यह गुरूत्वाकर्षण का नियम है। उस नियम का कोई द्रष्टा होता है, स्रष्टा नहीं। उसी प्रकार जगत के सृष्टि, प्रलय आदि विषयक अनेक प्रकार के ज्ञान ऋषियों ने प्राप्त किया। उसी ज्ञान को वेद कहते हैं। वह ज्ञान नित्य है। अतः वेद नित्य है। इस प्रकार व्यास का वचन है-

**युगान्तेऽर्हिमान् वेदान् सेतिहसान् महर्षयः।**
**लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥**

यथा वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है, उस वृक्ष से अन्य बीज उत्पन्न होता है। इस प्रकार क्रम प्रचलित है। जगत का प्रलय होता है। वह बीज रूप में स्थिति रहता है। वहाँ से उसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जगत् चक्रवत् चलता है। यह चक्रवाद है। जब जगत का प्रलय होता है, तब वेदों का भी अन्तर्धान होता है। जब जगत की सृष्टि होती है तब ऋषि तप द्वारा वेदों को प्राप्त करते हैं। वहाँ स्वयंभू भगवान् सृष्टिकर्ता के रूप में अनुग्रहीत होते हैं।

इस प्रकार भारतीय विद्याओं का विस्तार कैसे होता है? विद्याओं का विभाजन कैसे होता है? विद्याओं का क्या प्रयोजन है, यह समग्र विषय संस्कृत के छात्र द्वारार ज्ञेय है, अतः यह पाठ यहाँ अन्तर्भावित है। और भारतीय दर्शन इस विद्या के सागर में कहाँ हैं, यह ज्ञान भी छात्र को हो, ऐसी मनसा है।

अन्य कारण भी है कि विद्यासागर के चित्र को देखकर जिनको जो पसन्द है, वह

उसकी उपासना करता हैं। क्या सारभूत है, उसे शीघ्रता से समझता है, अतः सारहीन का त्याग करके सारभूत को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए सुभाषित है-

**अनन्तशास्त्रं बहु वेदितव्यं**
**स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।**
**यत् सारभूतं तदुपासितव्यं**
**हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥**

**सरलार्थ**- शास्त्र अनन्त हैं। जो जानने योग्य है, वह भी बहुत है। परन्तु समय अल्प है। उसमें भी विघ्न प्रतिबन्धक अनेक हैं। ऐसी स्थिति में मर्त्य क्या करे? जो सारभूत है, वह उपासितव्य, अवलम्बनीय और अनुष्ठेय है। कैसे? यथा हंस नीर और क्षीर के मिश्रण से नीर छोड़कर क्षीर को विचारपूर्वक ग्रहण करता है वैसे ही करना चाहिए।

## उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विद्याओं के तात्पर्य को जान पाने में;
- सभी विद्याओं के प्रयोजन को जान पाने में;
- विद्या के विभाजन के प्रकारों को जान पाने में;
- विद्या के विभाजन के कारणों को जान पाने में;
- अनेक विद्याओं के नाम ज्ञात कर पाने में;
- विभिन्न प्रस्थानों के प्रयोजन पर विचार कर पाने में;
- भारतीय संस्कृत वाङ्मय के प्रारूप को जान पाने में।

## 2.1 भूमिका

भारतवर्ष में आर्यों का धर्म वैदिक ही है। सभी वाङ्मय प्रपञ्च वेद से ही उद्भुत हुए, इसमें किसी की भी विमति नहीं है। वह यह आस्तिकों का वाङ्मय वृक्ष वेदमूलक कैसे है, यह जिज्ञासुओं की कौतूहलता दिखती है। कुछ विद्या साक्षात् वेद से ही समुद्भूत हुई, कोई कुछ वेद की प्रयोजन सिद्धि में ही प्रवृत हुई। कुछ वेद से सूत्र लेकर विस्तार को प्राप्त हुई। उनकी किस प्रकार से वेदोपयोगिता है, ऐसा कोई विमर्श करते हैं। यद्यपि साक्षात् यज्ञ आदि के निर्वहण में अथवा वेदार्थ के करण रूप में उसका उपयोग हो तथापि वेद के तात्पर्य (अर्थ) के प्रचार और पोषण के लिए उसकी अभिवृद्धि होती है, इसमें किसी का विरोध नहीं।

टिप्पणी

## 2.2 विद्याओं का तात्पर्य

'वेदेश्च सर्वैर्रहमेव वेद्यः' ऐसा भगवान् वासुदेव ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है। अर्थात् सभी वेद साक्षात् अथवा परम्परा से भगवान को ही प्रतिपादित करते है। जो भी वेद में उपदिष्ट है वह अन्त में जाकर भगवान् को ही बताता है, ऐसा गीता के वचन से स्पष्ट है। यथा वेद तथा अन्य वेदोद्भूत शास्त्रों का भी अर्थ सुबोध ही है। अत एव सभी शास्त्रों का साक्षात् अथवा परम्परा तात्पर्य भगवान ही है। इसीलिए शिवमहिम्न स्तोत्र में पुष्पदन्त की उक्ति है-

**त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,**
**प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।**
**रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,**
**नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसा मर्णव छव॥**

**सरलार्थ**- त्रयी (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) कपिल का सांख्य, पातञ्जल-योग, पाशुपत और वैष्णव तन्त्र इत्यादि विभिन्न प्रस्थान हैं। वहाँ कोई 'यह सर्वोत्तम मार्ग है, यह परम है' ऐसा रूचि के वैचित्र्य के कारण सेवन करने योग्य पथ सीधा-पथ, सरल-पथ, कुटिल-पथ अथवा टेढ़े-पथ का अवलम्बन करते हैं। वहाँ कोई आप शिव को साक्षात् प्राप्त करता है, कोई परम्परा से, यह भेद है। यथा कुछ नदियाँ साक्षात् समुद्र को जाती हैं। और कुछ टेढ़े मार्ग से बहुत घूमकर अन्य नदी के साथ मिलकर सागर को जाती हैं।

किससे क्या जानने योग्य है, किस क्रम से ज्ञातव्य है, किससे क्या प्राप्ति होने पर क्या करना चाहिए इत्यादि विवेक के लिए यहाँ उपनिषद् के वचन प्रमाण के रूप में दिए गए हैं-

**''द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।**
**शब्दब्रह्मणि निष्णातः वरं ब्रह्माधिगच्छति॥''**
**(मैत्रायणी उपनिषद् 6.22)**

यहाँ शब्दब्रह्म वेद ही है। जो शब्दब्रह्म को जानता है वह परम् ब्रह्म को जानता है। मोक्ष को जानकर परम पुरूषार्थ को प्राप्त करता है। अतः यहाँ भी स्पष्ट है कि शब्दब्रह्म के ज्ञान द्वारा ही परमब्रह्म का ज्ञान होता है, ऐसा अध्येतव्य है।

शब्दब्रह्म यहाँ वह ही है। और वह बहुविध है, और उससे उद्भुत शास्त्र भी अनेक प्रकार के हैं। उन प्रस्थानों को कहते हैं।

### विद्या प्रयोजन

जैसी जो विद्या होती है, वे परस्पर पोषिका होती हैं। अतः कौन सी विद्या किस प्रयोजन

टिप्पणी



को उद्देश्य से प्रवृत्त होती है, इस विषय में स्पष्टता आवश्यक है। अन्यथा विद्याओं का परस्पर विरोध है, उनमें भ्रम इत्यादि के आक्षेप सम्भव हैं, आस्तिकों पर भी। सभी विद्याएँ मानव को उद्देश्य करके प्रवर्तित होती हैं। मनुष्य सुख चाहता है। सुख सोपाधिक और निरूपाधिक दो प्रकार का होता है। सोपाधिक कर्मजन्य है। निरूपाधिक अजन्य तथा नित्य है। कोई कर्मजन्य सुख की इच्छा करते है। कोई नित्य सुख की इच्छा करते हैं। इस सुख के लाभ के लिए लौकिक और अलौकिक दो प्रकार के उपाय हैं। लौकिक उपाय प्रत्यक्ष एवं अनुमान द्वारा गम्य हैं। अलौकिक आगम द्वारा गम्य है। और आगम इन्द्रियातीत ज्ञान है जो ऋषियों द्वारा तप से प्राप्त है। कुछ भगवान् द्वारा स्वयं अवतीर्ण होकर कहे गए, गीता आदि। वह यह सकल ज्ञान प्रायः संस्कृत भाषा द्वारा निबद्ध है। संस्कृत भाषा लौकिक और वैदिक के भेद से दो प्रकार की है। आगम अर्थात् वेद भी वैदिक भाषा में निबद्ध है। महाभारत आदि तो लौकिक संस्कृत द्वारा निबद्ध है। वेद-मन्त्रों के स्वर जिस प्रकार उच्चरित होता हैं, उस प्रकार के इष्टफल प्राप्त होते हैं, अन्यथा अनिष्ट फल होता है। अत एव स्वर-ज्ञान के लिए शिक्षा शास्त्र का आविर्भाव हुआ।

संस्कृत भाषा व्याकरण-ज्ञान के बिना लघु उपाय से जानना सम्भव नहीं है। अत एव व्याकरण की आवश्यकता अनुभूत हुई। और व्याकरण का आविष्कार हुआ। और वह उपाय है तथा व्याकरण में प्रत्येक पद प्रकृति और प्रत्यय के विभाग रूप में कल्पित है। उनके योग से साधु पद व्युत्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार साधु पद क्या हैं, यह ज्ञान कराता है। रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असन्देह, ये व्याकरण-अध्ययन के मुख्य प्रयोजन हैं। अन्य गौण प्रयोजन भी हैं। वे विस्तार पूर्वक महाभाष्य में व्यक्त हैं।

शिक्षा द्वारा स्वर-ज्ञान तथा व्याकरण के द्वारा साधु शब्द-ज्ञान होता है। परन्तु किस शब्द के कितने अर्थ हैं, यह ज्ञान नहीं होता। इस कारण निरूक्त नामक शास्त्र आया। उस शास्त्र में वैदिक शब्दों का अर्थविषयक ज्ञान होता है।

वेद-मन्त्रों का छन्द होता है। छन्द विभिन्न प्रकार के होते हैं। वहाँ छन्द के भेद से प्रयोक्तभेद होता है। विशिष्ट छन्द के मन्त्र विशिष्ट जन द्वारा प्रयुक्त करने योग्य है, ऐसे विधान हैं। अतएव छन्द-ज्ञान के बिना मन्त्र-प्रयोग सम्भव नहीं होता है। इसीलिए छन्द-ज्ञान के लिए छन्द-शास्त्र का अवतरण हुआ। इस प्रकार ये चार वेद शब्द राशि के ज्ञान के लिए आवश्यक है।

विशिष्ट काल में कर्म अनुष्ठान किये जाते हैं की न्यूनाधिक फल प्राप्त हो। अतः काल ज्ञान का प्रयोजन जिससे समुचित काल में कर्म का अनुष्ठान हो। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र का उदय हुआ। यज्ञ आदि कर्मों का साक्षात् अनुष्ठान किस क्रम से करना चाहिए, कब कितने मन्त्र किस प्रकार से पढ़ने चाहिए, किस प्रकार से कौन सी क्रिया कैसे सम्पादित करनी चाहिए, यज्ञ आदि के स्थण्डिल-वेदमण्डप आदि का निर्माण कैसे करना चाहिए, ऋत्विज का आचार कैसा हो इत्यादि अनेक विषय हैं जिस विषय में स्पष्टता आवश्यक है। अत एव कल्प का आरम्भ हुआ।

टिप्पणी

इस प्रकार स्वर के ज्ञान के लिए शिक्षा है। साधु-पद के ज्ञान के लिए व्याकरण है। शब्दार्थ के ज्ञान के लिए निरूक्त है। छन्द के ज्ञान के लिए छन्द शास्त्र है। कर्म के अनुष्ठान के काल-ज्ञान हेतु ज्योतिष है। कर्म-प्रविधि के ज्ञान के लिए कल्प है, इस प्रकार वेद के छः अंग प्रसिद्ध हैं।

कर्म के प्रतिपादन के लिए वेद के प्रायः 95 प्रतिशत भाग संलग्न है। वहाँ कर्म का विषय सुकर नहीं है। उसका अंशतः समाधान वेद के ब्राह्मण भाग में होता है और कुछ कल्प सूत्रों में। परन्तु उस पर भी अधिक विवेचन अपेक्षित है। इसलिए ही पूर्वमीमांसा का उद्भव हुआ। वहाँ वेद में विद्यमान आपात-विरोध के परिहार हेतु अनेक युक्तियाँ प्रदर्शित हैं।

वेद कर्म द्वारा सोपाधिक सुख को ही प्रतिपादित करता है, सुखमय जीवनचक्र स्वर्गादि के गमन द्वारा हो, यह मीमांसकों का प्रधान प्रतिपाद्य है। परन्तु उपनिषदों में प्रतिपादित तत्व की उपेक्षा उनके द्वारा की गई है। उस वेदांश को ग्रहण कर उत्तर मीमांसा आया। यहाँ निरूपाधिक मोक्षात्मक सुख प्रधान रूप से प्रतिपादित है। अत एव कर्म-मीमांसा, ज्ञान-मीमांसा, धर्म-मीमांसा, ब्रह्म-मीमांसा, कर्मकाण्ड और ज्ञान-काण्ड, ये दो मीमांसा दिखाते हैं।

उत्तर-मीमांसा ही व्याख्यान के भेद से आज भी अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, इस रूप में विविध सम्प्रदाय समुत्पन्न होते हैं। इनमें किसी ने केवल वेद के अन्तिम भाग उपनिषद का ही शरण लिया। किसी ने पुराण, तन्त्र आदि भी कुछ विषय अपने सम्प्रदाय में संग्रहीत किये। वेद ऋषि द्वारा प्राप्त शब्दराशि और ज्ञानराशि है। वेद के प्रतिपादित विषय दर्शनों में अच्छी प्रकार से आलोचित हैं। वहाँ वर्ण-आश्रम के भेद द्वारा अनेक प्रकार से विभक्त समाज के लिए अधिकार-भेद को अवलम्बित करके धर्म के अनुष्ठान के विधि-निषेध आदि का यथा सम्भव विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होता है। अतः धर्मशास्त्र, स्मृतिशास्त्र प्रणीत हुए।

वेद में उक्त सिद्ध मीमांसाओं पर विचार करके स्मृतिशास्त्र में उक्त विधि द्वारा परिपालित इष्ट-फल की प्राप्ति जिसकी होती है, वह जन कृतकृत्य धन्य है। उनके समान आदर्श मानवों का जीवन-चरित्र लोगों के समक्ष उस प्रकार प्रकट करना चाहिए जिसके द्वारा लोग प्रेरित हों और जगत् की सृष्टि आदि के विषय में और भी सूक्ष्म विवेचन करना चाहिए। यह सभी पुराण करते हैं। भगवान् स्वयं अनेक बार पृथिवी पर अवतरित होते हैं। अतः उनका अवलम्बन करके पुराण प्रवर्तित होते हैं।

कुछ लोग युक्तिप्रियः होते हैं। केवल आगम में कहा गया। अतः वह उसे स्वीकार करने में समर्थ नहीं होते हैं। अतः युक्ति द्वारा प्रतिपादित गौतमीय-न्यायशास्त्र, कणाद-वैशेषिक शास्त्र और कापिल-सांख्य शास्त्र प्रवृत्त हुए।

मन का सूक्ष्म विवेचन करके विभिन्न अवस्थाओं में किसके द्वारा क्या साधन अवलम्बन करने योग्य है, ऐसा अति विस्तृत विवेचन योगशास्त्र में प्राप्त होता है। वैसी सूक्ष्मता

अन्यत्र नहीं है।

''पुरूषार्थलाभाय शरीरम् आद्यं खलु धर्मसाधनम्'', इस उक्ति द्वारा शरीर की निरोगता के लिए आयुर्वेद शास्त्र प्रवृत्त हुआ। समाज जनपदों और राष्ट्रों में विभक्त है। कुछ साधु हैं और कुछ चोर भी हैं। अत: शत्रु, चोर आदि से रक्षण के लिए धनुर्वेद का आविष्कार हुआ।

मनोरञ्जन महान विषय है। मानव सदा यन्त्र के समान नहीं हो सकता है। अत: मनोरञ्जन के गीत-वादादि नृत्य आदि द्वारा उपाय गान्धर्ववेद में कल्पित हैं।

समाज में जीविका के लिए कृषि, पशुपालन, द्रव्यविनिमय इत्यादि विषय स्वभाविक रूप से उद्भुत होते हैं। और राजा समाज के प्रतिनिधि के रूप में सेना-निर्माण द्वारा प्रजापालन करता है। अत: राज्य-पालन, ऐसा महान विषय भी आवश्यक होता है। यह सभी अथर्ववेद में संग्रहीत होता है। अथर्ववेद ही अर्थशास्त्र है।

भगवान् ने स्वयं अथवा ऋषियों ने भी मध्य-मध्य में विविध धर्ममार्गों को उपदिष्ट किया था जिसका साक्षात् उल्लेख वेद में नहीं है, अथवा वेद की ही व्याख्या रूप उपदेश होता है, और इसका वेद से विरोध भी नहीं है। उस प्रकार की अनेक विद्याएँ हैं जिसका प्रचार समाज में प्राचुर्य है। पञ्चरात्र, शैवागम इत्यादि तन्त्र, गीता इत्यादि का यहाँ अन्तर्भाव होता है।

जीवन के कृषि आदि कार्य को उपलक्ष्य करके, मनोरञ्जन आदि को उपलक्ष्य करके और विद्या प्रदान को उपलक्ष्य करके विविध विद्याएँ होती हैं। वे चौसठ (64) कलाएँ भी होती हैं।

यथा किसी एक गृह के निर्माण के लिए ईट, रेत, जल, लकड़ी, लौह, वास्तुविद्या इत्यादि बहुविध विद्याएँ और द्रव्य आवश्यक होते हैं। सभी का भवन के निर्माण में विशिष्ट अवदान हैं। वैसे ही मानव-जीवन रूपी सौध के अच्छे प्रकार से परिचालन के लिए ये विद्याएँ हैं। सभी की उपयोगिता होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र को मन में स्थापित करके विद्याओं की उपासना करते हैं जिससे लोग दिग्भ्रान्त नहीं होते हैं। जैसे विद्याओं की उपयोगिता को जानकर उसके अर्जन में रक्षण में प्रयोग में, प्रदान में और प्रयत्न में होता है।

दो ही वैदिक धर्म हैं- प्रवृत्ति लक्षण और निवृत्ति लक्षण। जो जन्म-जन्मान्तरों में सुखमय जीवन यापन करने की इच्छा करता है, वह प्रवृत्तिमार्ग की सेवा करता है। 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इत्यादि पथ पर चलें। और जो पुनर्जन्म आदि को ही नहीं चाहता है वह मुमुक्षु निवृत्तिमार्ग की सेवा करता है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यादि पथ पर चलें। इस प्रकार दो मार्गों को व्यवस्थापित किया गया है। प्रवृत्तिमार्ग, धर्ममार्ग और निवृत्त मार्ग, अध्यात्म मार्ग, ऐसा व्यवहार भी होता है। जो जैसी इच्छा करता है, उसका वह मार्ग है। प्रवृत्तिमार्ग अभ्युदय का साधक है। निवृत्तिमार्ग नि:श्रेयस का साधक है। प्रदान किये

टिप्पणी

गए सभी शास्त्रों में जो अनुकूल पथ है, वह उपासित करने योग्य है। और वह विवेक दर्शन के अध्ययन द्वारा होता है।

संस्कृत के छात्रों द्वारा अवश्य ही यह विद्याप्रपञ्च सप्रयोजन बोद्धव्य है, ऐसा हमारा अभिप्राय है। यह मनोरथ इस प्रयास से अंशत: भी सफल होंगे, ऐसी हम आशा करते हैं। निवृत्तिमार्ग के प्रधान रूप से प्रतिपादन के लिए छ: आस्तिक दर्शन और छ: नास्तिक दर्शन, ऐसे द्वादश दर्शन भारतभूमि पर उत्पन्न हुए हैं। वह भारतीय दर्शन हैं। वैदिक परम्परा में नास्तिक दर्शनों का अन्तर्भाव नहीं है। परन्तु आस्तिक दर्शनों का तो वेद से ही समुद्भव है। अत: सम्पूर्ण वेद और वेदमूलक वाङ्मय में भी किस दर्शन का क्या स्थान है, इस ज्ञान के लिए इस पाठ में अट्ठारह (18) विद्यास्थान प्रस्तुत किए गए हैं।

वाङ्मय के समग्र प्रारूप को जानकर ज्ञानसम्पन्न होकर पुरूषार्थ की सिद्धि के लिए, यह भ्रान्तिरहित है।

### प्रस्थान

प्रस्थान क्या है? स्व अभीष्ट लाभ के लिए मनुष्य जिस उपाय को अवलम्बित करता है, वह उपाय ही प्रस्थान कहलाता है। स्वाभीष्ट लाभ के लिए, आत्म-समाधान के लिए अथवा आत्म साक्षात्कार के लिए, 'प्रस्थीयते अनेन इति प्रस्थानम्' यह उसकी व्युत्पत्ति है। और वह प्रस्थान कितने हैं, ऐसी जिज्ञासा सभी को होती है। इष्ट सिद्धि का उपाय प्रस्थान है। इष्ट क्या है और अनिष्ट क्या है, इस ज्ञान, उसकी प्राप्ति और परिहार, इनके उपाय शास्त्रों में सूचीबद्ध हैं। किस शास्त्र का क्या प्रतिपाद्य है, और उसका इष्ट-साधन में किस प्रकार और कितना अवदान है, ऐसा ज्ञान इस पाठ के अध्ययन द्वारा हो। वहाँ यह विषय क्रमश: उपस्थापित होंगे। इस प्रकार विद्याओं का अपर नाम प्रस्थान भी होता है। बहुत से स्थानों पर प्रस्थान शब्द योगरूढ़ है। वहाँ अत्यन्त सीमित अर्थ को द्योतित करता है। और अन्य स्थानों पर उसका व्यापकता से प्रयोग भी दिखता है।

## 2.4 विद्या

विद्या कितनी और क्या है। विद्याओं के अनेक नाम हैं। सभी का उल्लेख नहीं किया जा सकता। और जिसका उल्लेख भी किया गया है, वहाँ भी संकर अनिवार्य है। इसीलिए यहाँ एक तालिका दी गई है। वहाँ उन परम विद्याओं के विभाजन के विविध पथों को प्रदर्शित करत हैं।

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
19. सांख्य
20. योग
21. मीमांसा

टिप्पणी



4. अथर्ववेद
5. शिक्षा
6. व्याकरण
7. निरूक्त
8. छन्द (पिंगल)
9. ज्योतिष
10. कल्प
11. आयुर्वेद
12. धनुर्वेद
13. गन्धर्ववेद
14. अथर्ववेद (अर्थशास्त्र)
15. पुराण
16. धर्मशास्त्र
17. न्याय
18. वैशेषिक
22. वेदान्त
23. इतिहास
24. स्मृति
25. नीतिशास्त्र
26. कामशास्त्र
27. शिल्पशास्त्र
28. अलंकारशास्त्र
29. काव्य
30. अवसरोक्ति (शास्त्रीयसंकेत आदि)
31. यावनमत
32. बौद्धदर्शन
33. जैनदर्शन
34. चार्वाकदर्शन
35. तन्त्र
36. चतुः षष्टि कला (चौसठ)

## 2.4.1 चौसठ कलाएँ

भारतीय समाज में चौसठ कलाएँ प्रवृत्त हुई। उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है। छात्रों के इस प्रकार से ज्ञान का कौतूहल हो कि प्राचीन भारत में इस प्रकार की कलाएँ और उनकी विद्याएँ अत्यन्त निपुणता से समाज के व्यवहार में थीं। चौसठ कलाएँ भिन्न ग्रन्थों में भिन्न नामों द्वारा कही गई है और विषय में भी भेद है। यहाँ न केवल चौसठ अपितु उससे अधिक कलाओं का उल्लेख किया गया है। अधिक विस्तार तो अन्य स्थान पर अनुसन्धेय है।

1. गीत
2. वाद्य
3. नृत्य
4. नाट्य
35. पृष्ठपदृिकावेत्रवाणविकल्प
36. तर्कूकर्म (काष्ठ आदि छेदन)
37. तक्षण (काष्ठ वस्तु-निर्माण)
38. वास्तुविद्या

टिप्पणी

5. आलेख्य
6. विशेषकच्छेद्य (तिलकाकार पत्रदिच्छेदन)
7. तण्डुलकुसुमयलिविकार
8. पुष्पास्तरण
9. दशनवसनांगराग
10. मणिभूमिका कर्म (भूमिशिलाओं में मणियोजन)
11. शयनरचना
12. उदकवाद्य
13. उदकाघात
14. चित्रयोग
15. माल्यग्रथनविकल्प
16. केशेश्खरापीडयोजन
17. नेपथ्ययोग
18. कर्णपत्रभंग
19. गन्धयुक्ति
20. भूषणयोजन
21. इन्द्रजाल
22. कौचुमारयोग (बलवीर्यवर्धन औषधि)
23. हस्तलाघाव (द्रुतहस्तप्रयोग)
24. चित्रशाकापूपभक्ष्य विकारक्रिया
25. पानक-रस-रागासवयोजन
26. सूचीवापकर्म
27. वीणांडमरूकवाद्य
28. सूत्रक्रीड़ा
39. रूप्यरत्नपरीक्षा
40. धातुवाद
41. मणिरागज्ञान
42. आकरज्ञान
43. वृक्षायुर्वेद योग
44. मेषकुक्कुटलावक-युद्धविधि
45. शुकसारिकाप्रलापन
46. उत्सादन (हस्तपदआदिपीडन)
47. केशमार्जन कौशल
48. अक्षरमुष्टिकाकथन (मुष्टिसंकेत द्वारा भाषा)
49. म्लेच्छित विकल्प (सांकेतिक भाषा)
50. देशभाषा-ज्ञान
51. पुष्पशकटिका
52. निमितज्ञान
53. यन्त्रमातृका (यन्त्रनिर्माण)
54. धारणमातृका (स्मरण कला)
55. सम्पाठ्य (काव्यकण्डपाठस्पर्धा)
56. मानसी काव्यक्रिया (श्लोक में पदपूरण)
57. क्रियाविकल्प (काव्यालंकार ज्ञान)
58. छलितकयोग (रूपवाणी गोपन)
59. अभिधानकोष
60. छन्द-ज्ञान
61. वस्त्रगोपन
62. द्यूतविशेष

29. प्रहेलिका/कूटजवाणी का ज्ञान
30. प्रतिमाला (श्लोकवाचन)
31. दुर्वचकयोग
32. पुस्तकवाचन
33. नाटिकाख्यायिका दर्शन
34. काव्यसमस्यापूरण
63. आकर्षण-क्रीडा (अक्षपाश क्रीडा)
64. बालक-क्रीडनक
65. वैनयिकी और वैजयिकी विद्याओं का ज्ञान (विनय और विजय)
66. वैतालिक विद्याओं का ज्ञान
67. व्यायाम विद्या

रामायण में चौसठ कलाओं में से कुछ कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। जब लव-कुश ने वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण को अयोध्या में गाया तब राम ने अनेक प्रकार के विद्वानों को गीत के श्रवण एवं परीक्षण के लिए बुलाया था। उससे यह ज्ञात होता है कि ये विद्याएँ और कलाएँ रामायणकाल में भी सुप्रतिष्ठित थीं। साहित्य समाज के जीवन का दर्पण होता है। अतः इस साहित्य से उस समाज की कलाओं में विविध नैपुण्य और रूचि इत्यादि विषयों को हम जान सकते हैं। वहाँ राम ने जिनको बुलाया उनका उल्लेख यहाँ एकवचन द्वारा किया गया है-

1) महामुनि, 2) पार्थिव, 3) पण्डित (परमहंस), 4) नैगम (वेदाभिज्ञ), 5) पौराणिक, 6) शब्दविद्, 7) स्वरलक्षणज्ञ (षड्ज आदि स्वरों के), 8) लक्षणज्ञ (सामुद्रिक), 9) गन्धर्व, 10) नैगम (पौरः पुखासी), 11) पादाक्षरसमाज्ञ, 12) छन्दोज्ञ (वृत्तज्ञ), 13) कलामात्रविशेषज्ञ (कला, स्वर, उनकी मात्राएँ, एक-दो-तीन लक्षण, उनके विभागज्ञ), 14) ज्योतिषज्ञ, 15) प्रस्तारविद्, 16) क्रियाकल्पविद् (कल्प क्रियाभिज्ञत्वहेतक-विचारकुशल), 17) कार्यविशारद, 18) हेतूपचारकुशल (केवल व्यवहार काल में युक्तिप्रयोगप्रतिपादनसमर्थ), 19) हैतुक (हेतु-प्रतिपादन में निपुण नैयायिक, तार्किक), 20) छन्दोविद् (वैदिक छन्दोविद् वैदिक पाद आदि के लक्षणज्ञ), 21) पुराणज्ञ (प्राचीनवस्तुविद्), 22) चित्रज्ञ (आलेख्यकरण में समर्थ अथवा चित्रकाव्यकरण में समर्थ), 23) वृत्तज्ञ (धर्मशास्त्रमुख से सदाचारज्ञ), 24) सूत्रज्ञ (अल्पोक्त-ज्ञानसमर्थ/पद्वाक्य आदि सूत्रों के ज्ञाता, 25) गीत-नृत्य विशारद।

**तां सं शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम्।**
**अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम्॥ 7.94.2॥**

**प्रमाणैर्बहुभिबद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम्।**
**बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत्॥ 7.94.3॥**

**अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन्।**
**पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नैगमांस्तथा॥ 7.94.4॥**

**पौराणिकाञ्छब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः।**
**स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान् द्विजसत्तमान्॥ 7.94.5॥**

टिप्पणी

लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः।
पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दः सु परिनिष्ठितान्॥ 7.94.6॥

कलामात्रविशेषज्ञाञ्ज्योतिषे च परं गतान्।
क्रियाकल्पविदश्चैव तथा कार्यविदो जनान्॥ 7.94.7॥

भाषाज्ञानिंगितज्ञांश्च नैगमाश्चाप्यशेषतः।
हेतूपचारकुशलान् वचने चापि हैतुकान्॥ 7.94.8॥

छन्दोविदः पुराणज्ञान् वैदिकान् द्विजसत्तमान्।
चित्रज्ञान् वृत्तसूत्रज्ञान् गीतनृत्यविशारदान्॥ 7.94.9॥

शास्त्रज्ञान् नीतिनिपुणान् वेदान्तार्थप्रबोधकान्।
एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत्॥ 7.94.10॥

## पाठगत प्रश्न 2.1

1. भारतीय परम्परा में ऋषि वेद के कर्ता हैं अथवा दृष्टा?
2. ऋषियों ने वेदों को कैसे प्राप्त किया?
3. आर्यों के धर्म का क्या मूल है?
4. प्रस्थान पद का क्या अर्थ है?
5. कलाएँ कितनी हैं?
6. वैदिक धर्म कितने प्रकार के हैं, भेदों को लिखें।
7. अभ्युदय किस मार्ग से होता है?

## 2.5 विद्याविभाजन

विद्याओं के विभाग के अनेक प्रकार हैं। शिवमहिमन्स्तोत्र के व्याख्यान में मधुसूदन सरस्वती महोदय द्वारा प्रस्थान भेद प्रदर्शित किये गए हैं और यह प्रकार वस्तुतः पुराणसम्मत एवं उससे गृहीत है। वहाँ वह अट्ठारह विद्याएँ प्रदर्शित करते हैं और उनका विभाजन करते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी चाणक्य स्वयं पूर्व आचार्यों के मतों को उद्धृत करते हैं। और स्वयं के अभिप्राय प्रकट करते हैं। इन आचार्यों में विद्या-विभाजन के विभिन्न प्रकार दिखते हैं। अतएव यथास्थान पर उल्लिखित करके विभाजन को प्रदर्शित किया जाएगा। वहाँ किस क्रम से उनमें किन विद्याओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा। सभी विद्याओं का परिचय दुष्कर है और परिचय में प्रधान रूप से विद्या का आरम्भ, आचार्य, ग्रन्थ, विभाग, विषय, प्रयोजन, इस प्रकार के बिन्दुओं की यथासम्भव आलोचना की जाएगी।

टिप्पणी



## 2.6 विद्या के विभाजन का प्रकार

### विद्या के स्थान

विद्या के स्थान अट्ठारह सुप्रसिद्ध ही है। वे वेदमूलक हैं। कहीं चौदह विद्यास्थान भी उल्लिखित हैं।

मधुसूदन सरस्वती के मत में विद्या का विभाग (वायुपुराण से अनुगृहीत)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इस प्रकार वेद चार हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष, इस प्रकार वेदांग : है। पुराण-न्याय- मीमांसा-धर्मशास्त्र, ये चार उप-अंग हैं। यहाँ उपपुराणों का अन्तर्भाव पुराण में हो गया है। वैशेषिक शास्त्र का न्याय में। वेदान्त शास्त्र का मीमांसा में। महाभारत और रामायण, सांख्य, पातञ्जल, पाशुपत, वैष्णव आदि का धर्मशास्त्र में। मिलकर चौदह विद्याएँ हैं। ये भी चार उपवेदों के साथ अट्ठारह विद्या होती हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, ये चार उपवेद हैं। सभी आस्तिकों के इस प्रकार के ही शास्त्र प्रस्थान हैं। अन्य एकदेशियों का भी इनमें ही अन्तर्भाव हो गया। वस्तुतः अट्ठारह विद्या-स्थान, ये मधुसूदन सरस्वती का नवीन मत नहीं है। तथा विद्यास्थानों का आयोजन पूर्णतः ही है। पुराण आदि में इस प्रकार सुना जाता है। यहाँ मधुसूदन सरस्वती का वैशिष्टय है कि उन-उन विद्या-स्थानों पर क्या-क्या अन्तर्भाव होता है, इस विषय में इस प्रकार ही निर्णय किया गया है।

इस प्रकार के विभाजन में अत्र पुराण प्रमाण है। यद्यपि सभी पुराण सम्मत है ऐसा नहीं है तथापि अनेक प्रकार से समानता (साम्यता) परिलक्षित होती है। इसलिए श्लोक हैं-

**अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।**
**पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥**

**आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात्।**
**अर्थशास्त्रं परं तस्माद् विद्यास्वष्टादश स्मृताः॥**

**अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम्।**
**आदिकर्ता कविः साक्षाच्छलपाणिरिति श्रुतिः॥**

**स हि सर्वजगन्ननाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।**
**ब्राह्मणं विदधे साक्षात् पुत्रमग्रे सनातनम्॥**

**तस्मै प्रथमपुत्रय ब्रह्मणे विश्वयोनये।**
**विद्यश्चेमा दर्दा पूर्व विश्वस्थित्यर्थमीश्वरः॥ (वायुपुराणम्)**

टिप्पणी

आदिकर्ता ईश्वर, शूलपाणि, सर्वजगन्नाथ इस जगत की सृष्टि की इच्छा करके सर्वप्रथम ब्राह्मण की सृष्टि की। उन ब्रह्म-देव के लिए ये अट्ठारह विद्याएँ दी। ये विद्याएँ विश्व की स्थिति के लिए हैं।

**याज्ञवल्क्य की भी सम्मति-**

याज्ञवल्क्य के द्वारा विद्या के विषय में उक्त है-

पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्रांगमिश्रिता।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (1/3)

**वेद चार हैं** -1) ऋग्वेद 2) यजुर्वेद 3) सामवेद 4) अथर्ववेद

वेदांग छः है - 1) शिक्षा 2) व्याकरण 3) निरूक्त 4) छन्द
5) ज्योतिष 6) कल्प

**उपांग चार हैं** - 1) पुराण 2) न्याय 3) मीमांसा 4) धर्मशास्त्र

उपवेद चार हैं - 1) आयुर्वेद 2) धनुर्वेद 3) गन्धर्ववेद 4) अर्थवेद (अर्थशास्त्र)

यहाँ लिखित विद्याओं के उपविभाग भी हैं। और वे विभाग उन विद्याओं के प्रतिपादनकाल में संक्षेप रूप में दिखते हैं।

## 2.7 विद्या के विभाजन का प्रकार

### कौटिल्य के मतानुसार विद्याविभाग

जिसमें धर्म, अर्थ आदि का करणत्व हो वह विद्या है, ऐसा चाणक्य सम्मत विद्या का लक्षण है। वह लक्षण इन विद्याओं में है। आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, यह चार विद्याएँ ही कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहीं। सांख्य, योग और लोकायत, आन्वीक्षिकी है। एक्, यजु और साम त्रयी है। कृषि, पशु-पालन और वाणिज्य वार्ता है। दण्डनीति तो राजनीति है। अर्थवत्व का हेतुओं द्वारा परीक्षण अन्वीक्षा है, इसका प्रयोजन आन्वीक्षिकी है। सांख्य कपिल मुनि द्वारा उक्त प्रकृति-पुरूष विवेचक शास्त्र है। योग महेश्वर द्वारा उक्त प्रत्याहार, ध्यान, धारणा आदि का प्रतिपादक है। लोकायत ब्रह्मगार्ग्य द्वारा उक्त न्याय-शास्त्र है। यह तीन आन्वीक्षिकी है। अथर्ववेद इतिहासवेद (महाभारत आदि रूप) है। अथर्ववेद अभिचारकर्म-ज्ञान आदि फल का प्रतिपादक है। अतः वह भिन्न प्रस्थान में ही गणित होता है, त्रयी में उसका स्थान नहीं है। कर्ता के कार्य का साधन त्र्याख्य समुदाय है। इसीलिए देवीपुराण में-

**ऋग्यजुः सामभेदेन सांगवेदगतापि वा।**
**त्रयीति पठय्ते लोके दृष्टादृष्टार्थसाधिनी।।**

टिप्पणी



वेदत्रयी में आए हुए तीन मन्त्र ही त्रयी शब्द के तात्पर्यार्थ हैं। वे ही मन्त्र ऋग्मंत्र, यजुर्मन्त्र और साममन्त्र यथाक्रम से पद्यात्मक, गद्यात्मक और गेयात्मक हैं।

वेद के अंग छः हैं और वे हैं- शिक्षा वर्णोच्चारण का उपदेशक शास्त्र है। कल्प क्रत्वनुष्ठान के उपदेश रूप आश्वलायन आदि प्रणीत सूत्र है। व्याकरण शब्दानुशासन, पाणिनीय आदि है। निरूक्त यास्क द्वारा रचित निर्वचन शास्त्र है। छन्दः शास्त्र पिंगल आदि प्रणीत है। ज्योतिष सूर्य आदि की गति आदि का प्रतिपादक शास्त्र है।

### विद्या प्रचार और संक्षेप

वे विद्यास्थान मरीचि ब्रह्मण मुख से इस लोक में प्रवर्तित आदि हुए जिसे युग में अल्प आयु, अल्प बुद्धित्व आदि दोष के कारण मनुष्यों द्वारा सम्पूर्ण रूप से धारण करने में समर्थ नहीं हुआ गया, ऐसा परमेश्वर ने स्वयं व्यास के रूप में होकर कहा। जैसे द्वितीय स्कन्द में कहा गया है-

**कालेन मीलितदृशामवमृश्य नृणां**
**स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।**

**आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां**
**वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥**

वेद के ऋक्, यजु और साम भेद वेद में भी उल्लिखित हैं। इस प्रकार नामकरण व्यास देव द्वारा नहीं किया गया परन्तु यह सभी मिश्रित रूप में था। लक्षण के अनुसार पृथक् यह सभी मिश्रित रूप में था। लक्षण के अनुसार पृथक् करके शाखाओं में विभाजन करने योग्य विभिन्न ब्राह्मण कुलों को रक्षा के लिए दिया। यथा पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु, ये चार व्यास के शिष्य हैं। उनमें पैल के लिए ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद समर्पित है।

## 2.8 विद्या के विभाजन का प्रकार

मुण्डकोपनिषद् में विद्या विभाजन के कुछ प्रकार दिखते हैं। इसीलिए मुण्डकोपनिषद में मन्त्र विहित है-

''तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ 1.4॥

तत्रपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमति।

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते''॥ 1.5॥

**सरलार्थ**- सभी विद्याएँ परा और अपरा है, ऐसा ब्रह्म को जानने वाले, वेदार्थ के ज्ञाता

टिप्पणी

एवं परमार्थदर्शी कहते हैं। परा का अर्थ है श्रेष्ठा, उत्कृष्टा, प्रशष्टा और प्रशस्ता। अत्यन्त श्रेष्ठ मंगलकारिणी विद्या का ही परा विद्या नामधेय है। इस प्रकार की परा विद्या क्या है? जिसके द्वारा वह अक्षर (ब्रह्म) जाना जाता है, वह परा विद्या कही जाती है। जिस विद्या से 'अक्षर' का स्वरूप जाना जाता है, प्राप्त होता है वह ही परा विद्या है। अक्षर नाम (जो नष्ट नहीं होता) नाशरहित ब्रह्म का है। जन्म से रहित होने के कारण, नाशरहित, देशकालातीत परं ब्रह्म 'अक्षर' कहलाता है। समस्त विश्व के जन्म, स्थिति, लय का कारण तत्व अक्षर है। जो विद्या इस अक्षर (ब्रह्म) को प्रतिपादित करती है, वह ही परा विद्या है। अतः ब्रह्मविद्या ही एक परा विद्या होती है। सभी प्राणियों के आत्मभूत निर्गुण सभी प्रमाणों से अगोचर जगदास्पदभूत अक्षर (ब्रह्म) को परा विद्या द्वारा ही जाना जाता है, अन्यथा नहीं।

वहाँ अपरा विद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष ही है।

यहाँ यद्यपि उपनिषद् ही ब्रह्म विद्या, परा विद्या है तथापि उपनिषद् शब्दराशि रूप होने से वह अपरा विद्या है। शब्दराशि द्वारा प्रतिपाद्य विज्ञान, जिसके ज्ञान से अधिकारी 'अक्षर' को जान लेता है, वह विज्ञान परा विद्या है, ऐसा विवेक है। अपरा विद्या अविद्या भी कही जाती है। अर्थात् जिसके द्वारा धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है, वह अपरा विद्या है। जिससे मोक्ष की सिद्धि होती है, वह परा विद्या है, ऐसा तात्पर्य है। वहाँ भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए यद्यपि आधुनिक, भौतिक आदि विज्ञान का उपयोग होता है तथापि उसका अन्तर्भाव अपरा विद्या में होता है। कहाँ से? कारण यह है कि प्रत्यक्ष अथवा अनुमान द्वारा उसकी उपलब्धि होती है। जो वेदों द्वारा गम्य पुरूषार्थ का उपाय है, वह ही विद्या में अन्तर्निहित है। अत एव नास्तिक मत यहाँ नहीं दिए गए हैं।

## 2.9 विद्या के विभाजन का प्रकार

समग्र वाङ्मय का विभाजन करते है, इस प्रकार के भेद दुर्लभ हैं। कुछ ऊपर ही प्रदर्शित है। यहाँ दर्शन के विभाजन के कुछ प्रकार हैं। यहाँ कुछ प्रस्तुत किये गए है।

### 2.9.1 दर्शन के विभाजन का प्रकार

दर्शन दो प्रकार का है- आस्तिक और नास्तिक। उसमें छः आस्तिक दर्शन, छः नास्तिक दर्शन, ऐसे बारह दर्शन कहे गए हैं।

आस्तिक दर्शन, जैसे- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

नास्तिक दर्शन, जैसे- चार्वाक, जैन, बौद्ध, ये तीन है।

टिप्पणी



उसमें बौद्धों के चार भेद है- माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक।

## 2.9.2 दर्शन के विभाजन का प्रकार

सर्वदर्शनसंग्रह नामक सायणमाधव द्वारा प्रणीत ग्रन्थ है। उसके उपोद्घात में वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर ने दर्शन का भिन्न प्रकार से विभाग प्रदर्शित किया है। इसमें केवल कुछ विद्वानों के मत प्रदर्शित हैं। उनके द्वारा किसी दर्शन की निन्दा अभिप्रेत नहीं है। अभ्यंकर महोदय के मत में दार्शनिक दो प्रकार के होते हैं- श्रोता और तार्किक। उसमें श्रोता दर्शनकार मीमांसासूत्रकार जैमिनि, व्याकरण सूत्रकार पाणिनि और ब्रह्मसूत्रकार बादरायण, ये तीन प्रकार हैं। और तार्किक आस्तिक तार्किक और नास्तिक तार्किक, इस भेद से दो प्रकार हैं। उसमें आस्तिक तार्किक जैसे - विशिष्टाद्वैती रामानुज, सांख्यसूत्रप्रणेता कपिल, योगसूत्र प्रणेता पतञ्जलि, न्याय सूत्रकार गौतम और वैशेषिक सूत्रकार कणाद, ये पाँच हैं। नास्तिक तार्किक जैसे- लोकायत, आर्हत, सौगत, कापालिक आदि शास्त्र हैं।

जो वेद के अपौरूषेयत्व को स्वीकार करते हैं, वे श्रोता हैं। जो वेद के पौरूषेयत्व को अंगीकृत करते हैं, वे आस्तिक तार्किक हैं। जो वेद के प्रामाण्य को ही स्वीकार नहीं करते है, वे नास्तिक तार्किक हैं। जिनके मत में प्रमाणों में श्रुति सर्वप्रबल होती है, वे श्रोता हैं। जिनके मत में प्रमाणों में अनुमान प्रबल है और श्रुति गौण है, वे आस्तिक तार्किक हैं। जिनके मत में श्रुति प्रमाण ही नहीं है। अनुमान ही प्रमाण है, वे नास्तिक तार्किक हैं। चार्वाक तो अनुमान को भी नहीं मानते हैं। केवल प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, ऐसा मानते हैं। अतः वस्तुतः उनका तो दार्शनिकत्व भी सिद्ध नहीं होता है। सर्वथा उपेक्षा होती है। 'निर्युक्तिकं ब्रुवाणस्तु नास्माभिर्विनिवार्यते', इस प्रकार न्याय द्वारा स्वयं स्वसिद्धान्त के विरूद्ध आचरण करके अनुमान का अवलम्बन किया जाता है और वे स्वयं खण्डित होता है, खण्डनीय कहाँ से? क्षेत्र में बीजवपन करते हैं। फल प्राप्ति के लिए। अनुमान के बिना इस कार्य में प्रवृत्ति सम्भव नहीं होती है। यथा कोई एक (जीव) जल में निमग्न होने से मर गया। द्वितीय भी जल में निमग्न होकर मर जाएगा, ऐसा मानकर वह अनुमान को स्वीकार करता है। अन्यथा स्वयं जल में निर्भय होकर निमग्न होता। लेकिन ऐसा नहीं करता है। जिनके मत में वेद अनायास, अबुद्धि द्वारा अग्रसर ईश्वर से आया, वे श्रोता हैं। जिनके मत में वेद अनायास बुद्धि द्वारा अग्रसर ईश्वर से आया, वे तार्किक आस्तिक हैं। श्रोता वेद के साक्षात् व्याख्यान में प्रवर्तित होते हैं अथवा वेद-व्याख्यान के लिए उपयोगी शास्त्र की रचना करते हैं। यथा-जैमिनीय, बादरायणीय।

## 2.9.3 नास्तिक प्रस्थान

नास्तिक प्रस्थान के अनन्तर हैं, उनका इनमें अन्तर्भाव से पृथक् गणना करना उचित है। जैसे- माध्यमिकों का शून्यवाद एक प्रस्थान है। क्षणिक-विज्ञान-मात्र-वाद से अन्य योगाचारों का है। ज्ञानाकार अनुमेय-क्षणिक-बाह्यार्थवाद से अपर वैभाषिकों का है। एवं

टिप्पणी

सौगतों के प्रस्थान-चतुष्टय है। सौगत (सुगत-बुद्ध) गौतम बुद्ध के अनुयायी हैं।

तथा चार्वाकों का एक प्रस्थान देहात्मवाद है। एवं दिगम्बरों का द्वितीय प्रस्थान देहातिरिक्त देहपरिणाम आत्मवाद है। एवम् मिलकर नास्तिकों के छः प्रस्थान हैं।

## 2.9.4 नास्तिकों का विद्याओं में अर्न्तभाव

वे नास्तिक अट्ठारह विद्याओं में किससे ग्रहण नहीं होते हैं। वेद बाह्यत्व के कारण उनका म्लेच्छ आदि प्रस्थानवत् परम्परा से भी पुरूषार्थ में अनुपयोगी होने के कारण उपेक्षणीय ही है। और यहाँ साक्षात् अथवा परम्परा द्वारा पुमर्थोपयोगियों का वेद के उपकरणों के प्रस्थानों का विद्याओं में अन्तर्भाव नहीं होता है। इसलिए परम्परा है-

**योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्रश्रयाद् द्विजः।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ मनुस्मृति 2.11॥**

**सरलार्थ** - हेतु शास्त्र तर्कशास्त्र का अवलम्बन करके जो द्विज संस्कृत होने पर भी (संस्कार से द्विज कहलाते हैं) वेद (श्रुति) का और धर्मशास्त्र (स्मृति) को अवमान करे, वह साधुओं द्वारा बहिष्कृत करने योग्य है। और वह वेदनिन्दक नास्तिक है। इस प्रकार जो वेदमूलक शास्त्रों का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है, ऐसी प्रसिद्धि है। इससे यह सिद्ध है कि जिसका जन्म वैदिकों के कुल में हुआ है, वह भी यदि वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता तो वह बहिष्कार करने योग्य है। अतः केवल बौद्ध और जैन नास्तिक हैं, ऐसा नहीं है। जो कोई भी वेद का प्रामाण्य नहीं मानता, वह नास्तिक है।

सुगत गौतम बुद्ध हैं। उनसे आये हुए सौगत प्रस्थान हैं।

बृहस्पति, गौतम बुद्ध, जिन, ये तीन जो शास्त्र प्रवृत्त हुए, वे वेद का प्रामाण्य नहीं स्वीकार करते हैं। अतः वे नास्तिक हैं। बृहस्पति का चार्वाक मत एक प्रस्थान है। जिन से उद्भुत जैन दर्शन अन्य प्रस्थान है। यद्यपि उनमें दिगम्बर और श्वेताम्बर के भेद से दो सम्प्रदाय हैं। तथापि एक ही प्रस्थान स्वीकृत है। बुद्ध से प्रसृत माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक के भेद से चार बौद्ध प्रस्थान हैं।

वे नास्तिक दर्शन हैं- 1) चार्वाक दर्शन 2) जैन दर्शन 3) माध्यमिक दर्शन 4) योगाचार दर्शन 5) सौत्रन्तिक दर्शन 6) वैभाषिक दर्शन, इस प्रकार छः नास्तिक दर्शन होते हैं।

इस संसार में नर पुरूषार्थ के बिना कुछ भी नहीं चाहता है। जो पुरूषार्थ के लिए उपयोगी है, वह ही आर्यों के अट्ठारह प्रस्थानों में अन्र्भावित होता है। नास्तिक प्रस्थान पुरूषार्थ के लिए उपयोगी नहीं हैं। अतः उनका आस्तिक प्रस्थानों में अन्तर्भाव नहीं करते हैं।

## पाठागत प्रश्न 2.2

1. विद्या-स्थान कितने हैं?
2. कौटिल्य के मतानुसार मुख्य विद्या-विभाग क्या है?
3. मुण्डकोपनिषद् में विद्या-विभाग किस प्रकार है?
4. त्रयी में क्या नहीं है?

   (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

5. यह वेदांग है।

   (क) कल्प (ख) न्याय (ग) आयुर्वेद (घ) ब्राह्मण

6. यह उपांग है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) उपनिषद्

7. यह उपवेद है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) उपनिषद्

8. यह वेद है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) ब्राह्मण

9. आन्वीक्षिकी में यह शास्त्र नहीं है।

   (क) योग (ख) सांख्य (ग) लोकायत (घ) मीमांसा

10. वार्ता में यह नहीं है।

    (क) कृषि (ख) पशु-पालन (ग) वाणिज्य (घ) राजनीति

11. यह आस्तिक दर्शन है।

    (क) माध्यमिक (ख) वैभाषिक (ग) दिगम्बर (घ) वैशेषिक

12. यह दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता।

    (क) योग (ख) सांख्य (ग) वैभाषिक (घ) मीमांसा

13. योग किस प्रकार का दर्शन है।

    (क) श्रौत (ख) तार्किक (ग) नास्तिक (घ) निरीश्वर

टिप्पणी

14. ये श्रौत नहीं है।

(क) पाणिनीय (ख) जैमिनीय (ग) बादरायणीय (घ) सौगत

15. नास्तिकों का विद्याओं में अन्तर्भाव नहीं होता। उसमें क्या कारण है।

(क) पुरूषार्थ के लिए अनुपयोगिता (ख) ईश्वर का निरस्कार

(ग) जीव का तिरस्कार (घ) उपमान का तिरस्कार

16. यह सौगत दर्शन नहीं है।

(क) माध्यमिक (ख) वैभाषिक (ग) सौन्त्रान्तिक (घ) वैशेषिक

17. यह पुरूषार्थ नहीं है।

(क) काम (ख) धर्म (ग) मोक्ष (घ) इच्छा

## पाठसार

इस पाठ में विद्याओं का परिचय, इस लक्ष्य को आंशिक रूप से साधा गया है। सकल विद्याओं का भगवान् (ईश्वर) में ही तात्पर्य है, ऐसा प्रमाण के साथ सिद्ध है। विविध विद्याओं का उल्लेख में आगे प्रतिपादित है कि विद्या प्रवृत्ति और निवृत्ति के मार्गो के साधन का विविष्ट प्रयोजन को प्रस्तुत करके उद्भुत हुई। विविध प्रयोजन हैं, अलौकिक उपाय द्वारा वे विद्याएँ कैसे साधी जाती है, यह महान् विषय संक्षिप्त रूप से प्रकट किया गया है।

और वहाँ पर बहुत सी विद्याओं के नाम उल्लिखित हैं। किन्तु उन विद्याओं का भी उपविभाग विपुल ग्रन्थों में है, ऐसा विस्मृतव्य नहीं है। चौसठ (64) कलाएँ हैं। और वे रामायण काल में भी प्रसिद्ध थी, ऐसा रामायण में प्रमाण दिया गया है।

विद्याओं के प्राचुर्य होने के कारण उनका विभाजन भी क्लिष्ट ही है। अतः विभाजन के श्रुति, स्मृति, कवि सम्मत अनेक प्रकार हैं। उनमें पुराणानुगृहीत अट्ठारह विद्यास्थान है, ऐसा विभाग सर्वमान्य एवं मुख्य हैं। उसका ही अनुवाद मधुसूदन सरस्वती द्वारा किया गया है। आचार्य चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ में विद्या के विभाजन का अपरम उपाय प्रदर्शित किया। उन्होंने कहा कि आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति चार ही विद्याएँ हैं। और उनका विस्तार यथास्थान पर उपलब्ध है।

मुण्डकोपनिषद में विभाजन के अपर प्रकार परिलक्षित होते हैं। और वह विभाग प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को अभिलक्षित करके सम्यक् रूप से प्रस्तुत हैं।

और वहाँ पर दर्शन के विभाग के अनेक प्रकार प्रदर्शित हैं। आस्तिक और नास्तिक के भेद से विभाग हैं। वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर ने अपर प्रकार को प्रदर्शित किया।

और वहाँ पर नास्तिक दर्शन का अट्ठारह विद्याओं में अन्तर्भाव कहाँ से नहीं होता, ऐसे विषय पर आलोचना की गई है।

## पाठान्त प्रश्न

1. क्या उपासितव्य है?
2. ऋषियों ने वेदों को कैसे प्राप्त किया?
3. विद्याओं का तात्पर्य बताएँ।
4. विद्या के प्रयोजन आविष्कृत करें।
5. वैदिक धर्म के विभाग का परिचय दें।
6. वायुपुराण से अनुगृहीत विद्या के विभाजन लिखिए।
7. चाणक्य के अनुसार विद्या का विभाजन लिखिए।
8. मुण्डकोपनिषद में उक्त प्रकार द्वारा विद्या का विभाजन कीजिए।
9. आस्तिक-नास्तिक भेद से दर्शनों का विभाजन कीजिए।
10. वासुदेव शास्त्री के मत के अनुसार दर्शनों को विभाजित कीजिए।
11. नास्तिकों का विद्याओं में अन्तर्भाव क्यों नहीं होता?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर - 2.1**

1. दुष्टार:
2. युगान्त में अन्तर्हित इतिहास सहित वेदों को स्वयंभू द्वारा अनुज्ञात करके महर्षियों ने तप से प्राप्त किया।
3. वेद
4. स्वाभीष्ट लाभ के लिए, आत्मसमाधान के लिए अथवा आत्मसाक्षात्कार के लिए जिसके द्वारा ले जाया जाता है, वह प्रस्थान है।
5. 64
6. दो प्रकार के ही वैदिक धर्म हैं- प्रवृत्ति लक्षण और निवृत्ति लक्षण।
7. प्रवृत्ति मार्ग से

टिप्पणी

**उत्तर-2.2**

(1) अट्ठारह (18)

(2) कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, ये चार ही विद्याएँ कहीं।

(3) परा, अपरा के भेद से विद्या दो प्रकार की है। परा वह जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। अन्य सभी अपरा विद्या हैं। और वेद हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष।

(4) (घ)

(5) (क)

(6) (क)

(7) (ख)

(8) (घ)

(9) (घ)

(10) (घ)

(11) (घ)

(12) (ग)

(13) (ख)

(14) (घ)

(15) (क)

(16) (घ)

(17) (घ)

**।।द्वितीय पाठ समाप्त।।**

# 3

# भारतीय विद्या का परिचय

**जयतु जगतां मूलं सत्यं सनातनमञ्जुसा**
**जयतु सरसा दिव्या वाणी तदीयमनोऽनुंगा।**

**जयतु विदुषां वर्गः तस्याः सदातन आश्रयः**
**जयतु च निधिस्तेषां पूर्णा चिरन्तनभारती॥**

## प्रस्तावना

दर्शन-परिचय के पाठ में दर्शन के विविध विषयों की आलोचना की गई है। और वहाँ विद्या-विभाग के विविध प्रकार प्रदर्शित हैं। वहाँ उल्लिखित कुछ विद्याओं का संक्षिप्त परिचय इस पाठ में होगा।

वेद के सर्वमूल होने के कारण उसका विविध रूप से परिचय आवश्यक है। और वेदोद्भूत कुछ विद्याओं की भी जीवन उपयोगिता की अधिकता का परिचय यहाँ प्रदान किया जाएगा।

आधुनिक विज्ञान के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया तो प्रयोगात्मक और भ्रामक है। उसे ही परीक्षण त्रुटि विधि कहते हैं। अत एव बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ विज्ञान द्वारा किसी भी जीवन-उपयोगी औषधि अथवा यन्त्र का आविष्कार हुआ। परन्तु महान कालान्तर से ज्ञात हुआ कि इस प्रकार मानव, पशुओं और पृथिवी की क्षति होती हैं। अतः उसके निवारण के लिए नवीन आविष्कार करोड़ों रूपयों के व्यय से किये जाते है। उसके भी दोष दीर्घकाल द्वारा ही ज्ञात होते हैं। कारण यह है कि वहाँ प्रयोग और प्रमाद, ये मार्ग अवलम्बित होते हैं। भारतीय आर्ष परम्परा में ऐसा नहीं है। सभी शास्त्र और दर्शन ऋषि प्रणीत हैं। और वे दिव्य चक्षुष द्वारा दृष्ट एवं प्रमाद रहित हैं। कभी भी भारतीय विद्याओं की प्रयोग और प्रमाद परम्परा नहीं रही है। प्रयोग-प्रमाद प्रक्रिया के अभाव से आधुनिक, उन विद्याओं के अंगीकार में श्रद्धा नहीं दिखती है। परन्तु वह

टिप्पणी

काल गया। कालचक्र परिवर्तित होता है। प्रेक्षक की सदैव युक्ति सारभूत सम्यक दृष्टि ही होती है। अतएव पाश्चात्य भारतीय परम्परा के ज्ञान के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। वेद-मन्त्रों के उच्चारण में उत्साह के साथ प्रवृत्त होते हैं। उस भारतीय ज्ञान परम्परा के अच्छी प्रकार से ज्ञान के लिए यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेदों के प्रकारों को जान पाने में;
- वेदों के अंगों को जान पाने में;
- वेदांगों के प्रवर्तक आचार्य और उनके ग्रन्थों को जान पाने में;
- वेदांगों के प्रयोग को जान पाने में;

## 3.1 वेद

'विद् ज्ञाने', इस धातु से धञ्-प्रत्यय के योग से वेद शब्द निष्पन्न है। अत: वेद अलौकिक ज्ञान राशि ही है। वेद शब्द के और भी विभिन्न अर्थ हैं।

वहाँ/उसमें धर्मब्रह्म का प्रतिपादक अपौरूषेय प्रमाण-वाक्य वेद है। धर्म यहाँ कर्म ही है। आपस्तम्ब द्वारा वेद का लक्षण किया गया है-

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदमधेयम्। अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण, इनका नाम वेद है।

वेद के मन्त्र और ब्राह्मण, दो विभाग हैं। सायणाचार्य द्वारा भी ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में वेद का लक्षण कहा गया- 'मन्त्रब्राह्मात्मकशब्दराशिर्वेद'।

वेद की महिमा अपार है। न केवल मनुष्यों के अपितु देव आदि के भी वेद चक्षु समान हैं। भगवान् स्वयं वेद का अवलम्बन करके विश्व की सृष्टि करता है। वह समग्र वेद भी मनुष्यों द्वारा दुष्प्राप्य है। मनु मुनि स्वयं ही वेद की महिमा को मानते हैं तथा-

**पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।**
**अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ (मनु. 12/94)**

वेद के वेदोद्भूत ज्ञान के बिना भारतीय संस्कृति का बोध सम्भव नहीं है। संस्कृति का मूल वेद में ही है। इसीलिए मनुमुनि ने कहा-

**चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्माश्रमाः पृथक्।**
**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्व वेदात् प्रसिध्यति।। (मनु. 11/97)**

अत एव वेदाध्ययन के विषय में लोगों द्वारा साग्रह एवं सोत्साह से प्रवर्तित होना चाहिए। इसीलिए विद्वानों की उक्ति है-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मषडंगो वेदोऽध्यो ज्ञेयश्च'।

संस्कृति नाम सपरिष्कृत जीवनपद्धति है, जिससे क्रमशः आत्मोद्धार सिद्ध होता है। भारतीय सनातन संस्कृति चार पुरूषार्थों द्वारा परिकल्पित है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरूषार्थ हैं। काम ही लौकिक जीवन की सन्तृप्ति अथवा सुख है। अर्थ ही उस सुख के लाभ के लिए अपेक्षित वस्त्र-आहार-धन-क्षेत्र आदि जीवन साधन हैं। धर्म ही अर्थों के अर्जन में तथा सुख-लाभ में शास्त्र में कह गए नियम विशेष है। मोक्ष अनन्त शाश्वत आनन्द है। इनके विवेक में वेद परम प्रमाण है। वेद किन्हीं पुरूषों द्वारा विरचित ग्रन्थ नहीं है। अतः उसे अपौरूषेय कहते हैं। वह तो ऋषियों द्वारा किसी योग की भूमिका में दृष्ट है अर्थात् साक्षात्कृत है। इष्ट के लाभ में और अनिष्ट के परिहार में जो अलौकिक उपाय को बताता है, वह वेद है। उससे-

**प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।**
**एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।। (ऋग्वेदभाष्य भूमिका)**

ऐसा सायणाचार्य ने वेद लक्षण कहा। उनका यह अर्थ है - पुरूष जब इष्ट के लाभ और अनिष्ट के परिहार निवारण में प्रत्यक्ष अथवा अनुमान आदि द्वारा आलोचन के बल से उपाय को प्राप्त नहीं करता है, तब वह उपाय जिससे प्राप्त होता है अर्थात् जाना जाता है, वह वेद है। अत एव वेद का ज्ञान रूप प्रतिष्ठित है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार वेद हैं। उसमें प्रत्येक वेद के मन्त्र और ब्राह्मण, दो विभाग होते हैं। ब्राह्मण के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् विषय भेद से तीन विभाग होते हैं।

## पाठागत प्रश्न 3.1

1. वेद शब्द कैसे निष्पन्न है? उसका क्या अर्थ है?
2. ब्राह्मण द्वारा वेदाध्ययन क्यों करना चाहिए?
3. पितृ, देव और मनुष्य का सनातन चक्षु क्या है?

   (क) न्याय (ख) सांख्य (ग) योग (घ) वेद
4. पुरूषार्थों के विवेक में परम प्रमाण क्या है?

   (क) न्याय (ख) सांख्य (ग) योग (घ) वेद

टिप्पणी

### 3.1.1 मन्त्र

मन्त्र वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान, अनुष्ठान के द्रव्य, देवता इत्यादि के प्रकाशक एवं प्रतिपादक हैं। मन्त्र भी ऋग्, यजु, साम, अथर्वा, इस भेद से चार हैं। (ऋच्, चकारान्त, स्त्रीलिंग, शब्द है। यजुस् सकारान्त नपुंसकलिंग शब्द है। सामन् नकारान्त नपुंसकलिंग शब्द है। अथर्वन् नकारान्त पुलिंग शब्द है) पद्य रूप में गायत्री आदि छन्दों अथवा वृत्तियों में विद्यमान मन्त्र ऋक् कहलाता है। यथा- 'अग्निमीले पुरोहितम्' उदाहरण है। वह ही ऋचाएँ जब गीति विशिष्ट होती हैं अर्थात् उनका गायन होता है तब वे ऋचाएँ ही साम कही जाती हैं। 'ऋचि अध्यूढं साम:', यह उक्ति है। अर्थात् कि आधारभूता ऋक् ही है। गीतियों में समाख्या (गीतिषु समाख्या) यहाँ जैमिनि का वचन स्मरण करने योग्य है। जो मन्त्र एक नहीं है, साम नहीं है परन्तु यज्ञ आदि कर्मों में प्रयुज्य होता है, वह मन्त्र ऋक् साम से विलक्षण यजु होता है। संबोधन रूप और सम्भाषण रूप मन्त्र का भी यजु में ही अन्तर्भाव होता है। निगद मन्त्र ही सम्भाषण मन्त्र हैं। इस प्रकार मन्त्र निरूपित हैं। यजुर्वेद शुक्ल, कृष्ण के भेद से दो प्रकार का है। सामवेद पूर्वाचिक, उत्तरर्चिक के भेद से दो प्रकार का है। अथर्ववेद की पैप्पलाद, दान्ता, प्रदान्ता, स्तौता, ओन्ता, ब्रह्मदायश, शौनिकी, वेददर्शी, चरणविद्या, ये नव शाखाएँ सुनी जाती है। परन्तु इस समय शौनकी और पैप्पलादी, दो शाखाएँ उपलब्ध है। अथर्ववेद के नक्षत्रकल्प, विधिविधानकल्प, विधिविधानकल्प, संहिताकल्प, शान्तिकल्प, ये पाँच कल्प हैं।

### 3.3.2 ब्राह्मण

अब यहाँ ब्राह्मण का निरूपण है।

मेदिनीकोश में 'ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्'।

अर्थात् वेद के विशिष्ट भाग ब्राह्मण कहलाते है। ब्राह्मण नामक कर्म के तन्त्र-मन्त्र का व्याख्यान ग्रन्थ है, ऐसा भट्ट-भास्कर का मत है। (तै. सं. भाष्य 1.5.1) जैमिनि द्वारा उदीरित ब्राह्मण का लक्षण है-

शेषे ब्राह्मणशब्द:। मन्त्रांश अंश को छोड़कर वेद के अवशिष्ट भाग ब्राह्मण है, ऐसा उनका मत है। ब्राह्मण के भी ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीन विभाग होते हैं। उसमें जो ब्राह्मण है उस विषय में आपस्तम्ब द्वारा सूत्रित है - कर्मचोदना ब्राह्मणानि। योग आदि क्रिया विधि जहाँ वर्णित है, वह ब्राह्मण है, ऐसा उसका तात्पर्य है। ब्राह्मणों में वर्णित विषय हैं - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प और पराकृति। ब्राह्मण में क्या विषय हैं, इस विषय में शबरस्वामी लिखते हैं-

**'हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधि:।**
**परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥**
**उपमानं दशैते तु विषया ब्राह्मणस्य॥ (शाबरभाष्य 2.1.8)**

ब्राह्मण विधि-निषेध-नामधेय-अर्थवाद के भेद से चार भागों में सामान्यतः विभाजित है। ब्राह्मण विभाग के अनेक प्रकार हैं। परन्तु यहाँ यह एक ही अवलम्बित है।

## विधि

आचार्यों द्वारा विधि शब्द के विभिन्न अर्थ किये गए हैं। यथा 'शब्दभावना विधिः, ऐसा कुमारिल भट्ट तथा 'नियोगः विधिः', ऐसा प्रभाकर कहते हैं। 'इष्टसाधनता विधिः', ऐसा तार्किक आदि सभी स्वीकार करते हैं। और वह विधि उत्पत्तिविधि, विनियोगविधि, अधिकारविधि, प्रयोगविधि के भेद से चार प्रकार की है। उसमें 'कर्मस्वरूपमात्रबोधक' विधि उत्पत्ति विधि है। यथा-अग्निहोत्रं जुहोति। और यहाँ विधि में कर्म के करणत्व से अन्वय है। अग्निहोत्र होम द्वारा इष्ट को प्राप्त करे, वह अर्थ है।

अंगों के प्रधान रूप से सम्बन्ध की बोधक विधि विनियोग विधि है। यथा, दध्ना जुहोति। वह ही तृतीया द्वारा प्रतिपन्न अंगभाव के दधि-होम के संबंध का विधान करता है। दधि द्वारा होम (यज्ञ) करे। व्रीति द्वारा यज्ञ करे इत्यादि में व्रीहि का यज्ञ से सम्बन्ध कहता है। विनियोग-विधि के सहकारी-भूत छः प्रमाण हैं। वे श्रति-लिंग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्या रूप हैं।

इतिकर्तव्यता जिसकी है, वह इतिकर्तव्यताक है। अर्थात् जो फल को प्राप्त करे, वह। जैसे फलस्वामी। 'कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधक विधि अधिकर विधि है।' कर्मजन्यफलस्वाम्य ही कर्मजन्यफलभोक्तृत्व है। और वह 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादि रूप है। स्वर्ग को उद्देश्य करके इस योग को लेकर स्वर्गकाम के यागजन्यफलभोक्तृत्व को प्रतिपादित करता है। 'स्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्' इत्यादि अग्निदाह आदि निमित्त में कर्म के लेकर निमित्तवत कर्मजन्यपापक्षयरूफलस्वाम्य को प्रतिपादित करते हैं। एवम् नित्य सन्ध्या उपासना आदि द्वारा शुचिविहितकालजीवन - सन्ध्योपासनजन्य - प्रत्यवाय - परिहाररूप - फलस्वाम्य को कहते हैं। प्रयोगप्रशुभाव बोधक विधि प्रयोग विधि है। जिस विधिवाक्य द्वारा प्रयोग के शीघ्रता सम्पादन का बोध होता है, वह प्रयोग विधि कही जाती है। अर्थात् कौन सी विधि किस क्रम से करनी चाहिए, किससे पूर्व कौन सी विधि है, किससे बाद कौन सी विधि है, ऐसा विवेक जिस वाक्य से होता है, वह प्रयोगविधि है। अंगसमूह का क्रम-बोधन प्रयोग विधि द्वारा किया जाता है।

## पाठागत प्रश्न 3.2

1. पद्यरूप में गायत्री आदि छन्दों (वृत्तों) में विद्यमान मन्त्र को क्या कहते हैं?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

2. ऋचा (ऋच्) जब गीति-विशिष्ट होती है तब वह क्या कहलाती है?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

टिप्पणी

3. जो मन्त्र पद्यरूप में नहीं है, गीति रूप में नहीं है परन्तु कर्म में प्रयुक्त होता है, वह क्या है?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

4. शुक्ल-कृष्ण के भेद से कौन सा वेद विभक्त है?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

5. शौनक शाखा किस वेद की है?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

6. मन्त्रांश को छोड़कर वेद का अवशिष्ट भाग क्या है?

   (क) ऋक्  (ख) यजुस्  (ग) साम  (घ) अथर्व

7. चार विधियों में यह अन्यतम है?

   (क) उत्पत्ति विधि (ख) गुणविधि  (ग) प्रधानविधि  (घ) अनुवाद

## 3.1.3 विनियोग विधि

विनियोग विधि के बोधित अंग सिद्ध रूप और क्रिया रूप, ये दो प्रकार के है। क्रिया रूप अंग गुणकर्म और प्रधानकर्म दो प्रकार के हैं। उसमें गुणकर्म सन्निपत्योपकारक है। प्रधानकर्म आरादुपकारक है। प्रकारान्तर द्वारा कर्मस्वरूप दो प्रकार का है-गुणकर्म और अर्थकर्म।

### गुणकर्म

उसमें कर्ता-कर्म कारक है आश्रित जो विहित कर्म है, वह गुणकर्म है। यज्ञ के साधनभूत जो द्रव्य आदि हैं उसके संस्कारजनक कर्म, गुणकर्म हैं। उस कर्म के चार भेद हैं- उत्पत्तिकर्म, आप्यकर्म, विकृतिकर्म और संस्कृतिकर्म।

### उत्पत्ति कर्म

जो साधन पूर्व में नहीं था परन्तु उसकी उत्पत्ति करनी चाहिए। वह कर्म उत्पत्ति कर्म कहा जाता है। यथा वसन्ते ब्राह्मण: अग्निम् आदधीत, यहाँ वसन्त में अग्नि संस्कार विशिष्ट उत्पादनीय है। यह कर्म उत्पत्तिकर्म है। 'यूपं तक्षति' अन्य उदाहरण है। यूप पूर्व में नहीं था। इस तक्षण कर्म से वह उत्पन्न होता है। अत: यह उत्पत्ति कर्म है।

### आप्यकर्म

साधन है परन्तु उसकी प्राप्ति करनी चाहिए। वह कर्म आप्यकर्म है। जैसे- 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य'। यहाँ विद्या है, वह प्राप्तव्य है। यथा पय: दोग्धि। यहाँ पय है, उसका दोहन करना चाहिए।

### विकृतिकर्म

द्रव्य आदि के पूर्वरूप में विकार किये जाते है, उसके बाद याद आदि में दिए जाते हैं। वह कर्म विकृतिकर्म है। यथा 'व्रीहिन् अवहन्ति', यहाँ व्रीहियों के अवहन द्वारा विकार होता है। अतः इस प्रकार का कर्म विकृतिकर्म है।

### संस्कृति कर्म -

द्रव्य आदि में कुछ संस्कार विशेष इस कर्म से होता है। यथा- 'व्रीहिन् प्रोक्षति', यहाँ प्रीहियों का प्रोक्षण अर्थात् विशिष्ट प्रक्षालन किया जाता है। यह संस्कार विशेष है। अतः इस प्रकार का कर्म संस्कृति कर्म है। ये चारों कर्म योग कर्म के अंग है।

### अर्थकर्म

'आत्मसमवेतापूर्वजनक कर्म अर्थकर्म है।' यथा- अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमास में प्रयाज और अनुयाज है। यह कर्म-कर्ता अपूर्व को प्राप्त करता है। अंग और प्रधान, उसके दो प्रकार हैं। जो कर्म अन्य के लिए किये जाते हैं वह अंगकर्म है। जो कर्म अपने लिए किये जाते हैं, वह प्रधान कर्म है। अंग कर्म दो प्रकार के हैं - संनिपत्योपकारक और आरादुपकारक।

### संनिपत्योपकारक

जो अंग साक्षात् अथवा परम्परा से विहित फलों के साधनरूप योग शरीर व्यूह को निष्पन्न कर शरीर द्वारा उससे उत्पन्न होकर पूर्वयोगी होते हैं, वे अंग सीधे, नीचे, नीचे सम्मिलित होकर, एक के साथ द्वितीय मिलकर, द्रव्य देवता को उद्देश्य करके, उद्देश्य करके विधीयमान उपयोगी होते हैं, वे सन्निपत्योपकारक कहलाते हैं। ये द्रव्यदेवतागत संस्कार द्वारा यागोत्पचयपूर्वोकारक होते हैं।

### आरादुपकारक

द्रव्य और याग को अनुद्देश्य करके, केवल द्रव्ययाग से उद्देश्यरहित, विधीयमान विधि द्वारा अनुष्ठान के लिए उपश्राव्यमान कर्म है। यथा प्रयाज, आज्यभाग, अनुयाज आदि स्वरूप कर्म आराह्य उपकारक, साक्षात् उपकारक एवं अंगी यागोपकारक होता है। प्रयाज, आज्य भाग, अनुयाज आदि आराह्य उपकारक अर्थात् परमापूर्वात्त ही उपकारी हैं। वे द्रव्यदेवतागत-संस्कारजनक नहीं है। विनियोग विधि निरूपित हैं।

## 3.1.4 निषेध

पुरूष का निवर्त वाक्य निषेध है। यदि पुरूष का कोई कार्य अनर्थजनक हो तब वेदवाक्य उस कार्य से पुरूष को निवर्त करता है। इसीलिए- 'न कलञ्जं भक्षयेत्' निषेधवाक्य अनर्थजनक होने से कलञ्जं भक्षण से पुरूष को निवर्त करता है।

टिप्पणी

## 3.1.5 नामधेय

विधेयार्थ परिच्छेदक वाक्य नामधेय कहलाता है। जिस वाक्य से विधेय की कर्तव्यता द्वारा उपदिष्ट याग का परिच्छेद होता है अर्थात् नाम जाना जाता है वह नामधेय वाक्य है। इसलिए- उद्भिदा यजेत पशुकामः यागविशेष का विधान है।

## 3.1.6 अर्थवाद- (प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः)

**प्राशस्य**- निन्दा अन्तरपरम् वाक्य अर्थवाद है। जिस वेदवाक्य के स्वार्थ प्रतिपादन में तात्पर्य नहीं है किन्तु जो वेदवाक्य प्रशंसा अथवा निन्दा द्वारा विधेय और निषेध के कर्तव्यत्व-अकर्तव्यत्व को सूचित करता है वह अर्थवाद वाक्य कहा जाता है। यथा - 'वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवता', इस वेदवाक्य द्वारा वायु के शीघ्रगामित्व को सूचित किया जा रहा है। वस्तुतः इसके द्वारा वायु की प्रशंसा की जा रही है। और उससे वायु शीघ्रफलदाता के रूप में सूचित होता है। अर्थवाद के गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद, तीन प्रकार हैं। कहा गया है-

**विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।**
**भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः॥**

**गुणवाद**- प्रमाणान्तर विरूद्ध अर्थबोधक गुणवाद है। पशुयाग में पशुनियोजन के लिए कुछ स्तम्भ किये जाते हैं। वह यूप कहलाता है। यूप की स्तुति को- 'आदित्यो यूपः' कहते है। यहाँ आदित्य और यूप में अभेद प्रकट है। वस्तुतः आदित्य का यूप से भेद ही सुप्रसिद्ध है। तो कैसे आदित्यो यूपः? प्रत्यक्ष आदि प्रमाणान्तर विरोध यहाँ स्पष्ट परिलक्षित होता है। यूप में आदित्य का अभेद है, इस वाक्य का मुख्यार्थ बाधित है। मुख्यार्थ बाधा में लक्षणा की जाती है। यहाँ आदित्य का उज्ज्वलनत्व उसके स्वयं का गुण यूप में है, ऐसा मानकर गुण सादृश्य के कारण लक्षणा की गई। गुण द्वारा लक्षणा की गई। अतः यह गुणवाद है।

**अनुवाद**- प्रमाणान्तर प्राप्त अर्थ का बोधक अनुवाद है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणेन से जो निर्धारित, ज्ञात तथ्य जिसके द्वारा प्रकट होता है, वह अनुवाद होता है। अग्नि हिम की अर्थात् शैत्य की औषधि है, यह सुविदित है। अग्नि शीत का नाश करती है, ऐसा किसी अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित है। उसके ही अर्थ का- 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्', इस वाक्य द्वारा प्रकटन किया गया है। इस वाक्य द्वारा अग्नि की स्तुति की गई है। यहाँ प्रमाणान्तरविरोध नहीं है। अतः यहाँ यह अर्थवाद अनुवाद कहलाता है।

**भूतार्थवाद** - प्रमाणान्तर विरोध और उसकी प्राप्ति से रहित अर्थ का बोधक भूतार्थवाद है। प्रमाणान्तर विरोध अथवा प्रमाणान्तर प्राप्ति जहाँ नहीं है वह भूतार्थवाद है। यहाँ इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्, इस वाक्य का जो अर्थ है उसका किसी अन्य प्रमाण से विरोध नहीं है। और वह अर्थ किसी प्रमाण द्वारा प्राप्त या ज्ञात भी नहीं है। अतः गुणवाद

में दृष्ट विरोध, अनुवाद में दृष्ट अवधारणा, यहाँ दोनों ही नहीं है, दोनों की हानि होती है, परित्याग होता है। यहाँ जो यह अर्थवाद है, उसे भूतार्थवाद कहते है। इस वाक्य में इन्द्र की स्तुति है।

तीन अर्थवाद की विधि में स्तुति करते हैं। विधिस्तुतिपरत्व उन तीनों में भी होता है। यह तीनों में समानता है। जिस ज्ञान का विज़य अबाधित है और अज्ञात है उस विषय के ज्ञान को प्रमा कहते है। उस ज्ञान में ही प्रामाण्य होता है। गुणवाद में तो बाधित विषय जाना जाता है, अनुवाद में तो पूर्वतः ज्ञात विषय ही जाना जाता है। अतः गुणवाद और अनुवाद का प्रमाण्य नहीं है। ब्राह्मण का विषय अवलम्बन करके आगे जैमिनि ने धर्ममीमांसा रचा। वहाँ ये विषय विस्तारपूर्वक प्रकट हैं। एवं उस में ही निरूपित अर्थवाद भाग है।

## पाठगत प्रश्न 3.3

1. यह गुणकर्म नहीं है।

   (क) उत्पत्तिकर्म (ख) आप्यकर्म (ग) विकृतिकर्म (घ) आरादुपकारककर्म

2. अनर्थजनक होने के कारण कर्म से पुरूष निवारण करता है वह वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

3. विधेयार्थ परिच्छेदक वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

4. प्राशस्त्य-निन्दान्यतरपरम् वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

5. यह अर्थवाद नहीं है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

6. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अर्थ के विरूद्ध अर्थ जो वेदवाक्य को बोधित करता है, वह क्या है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

7. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अर्थ जो वेदवाक्य बोधित करता है, वह क्या है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

टिप्पणी

8. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अथवा विरूद्ध अर्थ का बोध नहीं होता, वह वेदवाक्य क्या है?

(क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

## 3.1.7 आरण्यकों का परिचय

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदमागधेयम्, यह प्रसिद्ध वेदलक्षण है। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मणों के परिशिष्ट ग्रन्थ ही कहलाते है। अरण्य में पढ़ने के कारण आरयण्क, यह अन्वर्थ वेदभाष्यकार सायण ने प्रख्यात किया है। इसलिए कहा गया है-

**''अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।**
**अरण्ये तदधीयेतेत्येवं वाक्य प्रवक्ष्यते।।''**

महाभारत में कहते है तथा औषधियों से अमृत उद्धृत है वैसे ही श्रुति से आरण्यक प्रणीत है। ब्राह्मण-भाग के अंश यद्यपि आरण्यक है तथापि उसकी अपेक्षा आरण्यक कुछ वैशिष्ट्य से युक्त है। अत एव रहस्य ब्राह्मण भी इसका अन्य नाम है। गोपथ ब्राह्मण में रहस्य शब्द द्वारा आरण्यक अभिहित है। वस्तुत 'रहस्य' शब्द द्वारा ब्रह्मविद्या को कहते हैं। विषय विवेचन की दृष्टि से आरण्यक उपनिषद् में साम्यता है। अतः बृहदारण्यक आदि में उपनिषद् शब्द भी व्यवहृत है।

## 3.1.8 वेदान्त

जिस ब्राह्मण वाक्य में विधि उक्त नहीं है, निषेध, नामधेय अथवा अर्थवाद भी नहीं, वह ब्राह्मण वाक्य वेदान्त वाक्य कहलाता है। यह वेदान्त वाक्य अज्ञात और अबाधित के अर्थ का ज्ञापक है। तथापि कर्म-अनुष्ठान का प्रतिपादक नहीं होता है। अतः वह विधि नहीं है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप है। वेदान्त वाक्य का अर्थ यह ब्रह्म ही है। यह ब्रह्म लाभ ही मोक्ष रूपी पुरूषार्थ है।

**उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।**
**अर्थवादोपपत्ती च लिंग तात्पर्यनिर्णये।।**

उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति, ये छः लिंग वेदान्त-श्रवण के हैं। वेदान्त ग्रन्थ में ये छः लिंग प्रायः होते हैं। इस प्रकार वेदान्त वाक्य स्वतः ही प्रमाणभूत है। अन्तःकरण में विद्यमान पाप-पुण्यरूप अशुद्धि वेद में उक्त विधि द्वारा नष्ट होती है। इस प्रकार सभी विधियाँ यहाँ उपयोगिता को कहती हैं। परन्तु वेदान्त वाक्य विधियों में अनुपयोगी है। अतः वेदान्त वाक्य पूर्वविधि से शेष नहीं है। अतः वेदान्त न विधि, न अर्थवाद, न ही दोनों से शेष है। वेदान्त में कुछ पूर्व अज्ञात का ज्ञान होता है, इस हेतु से वेदान्त भी विधि रूप में व्यपदिष्ट होता है। कुछ वेदान्त में विधि

बोधक पद नहीं है, परन्तु अज्ञात का ज्ञापन उसमें होता है। अतः वह भूतार्थवाद को कहा जाता है, यह अन्य है। वेद के जिस भाग में यह प्रतिपादित है, वह भाग उपनिषद् कहलाता है।

## 3.1.9 उपनिषद्

आरण्यक की परिशिष्ट भूता उपनिषद् है। आरण्यक में विद्यमान अध्यात्म तत्व की आलोचना ही उपनिषदों में परम् स्फूर्ति को प्राप्त कर परिसमाप्त होती है। शब्द राशि वेद का अन्तिम भाग उपनिषद् है। अतः वह वेदान्त है। वेद का लक्ष्य ही उपनिषदों में आम्नात् (विहित) विद्या है। अतएव उपनिषद् वेदशिरोभूत है। अतएव उसे वेदान्त कहते हैं।

विशरण, गति और अवासदन अर्थपूर्वक, उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु में क्विप् प्रत्यय होने पर उपनिषद् शब्द व्युत्पन्न होता है। उपनिषद् शब्द का अर्थ है ब्रह्मम-विद्या। ब्रह्म-विद्या उपनिषद् के वचन द्वारा स्वसंशीलियों के संसारसारता के मत को खण्डित अथवा शिथिल करती है, प्रत्यागात्मा (व्यापक ब्रह्म) को अनुसरण करती है, तथा दुःख, जन्म आदि मूल-ज्ञान का उन्मूलन करती है। यद्यपि ब्रह्म विद्या ही उपनिषद् है तथापि गौण अर्थ में ब्रह्म-विद्या के प्रकाश ग्रन्थ में भी उपनिषद् शब्द का उपचार द्वारा प्रयोग होता है।

### वेदान्त का सार

अब संक्षिप्त रूप में समग्र वेदान्त का सार कहते हैं। ब्रह्म ही एक सत् है, अन्य सभी रज्जू में सर्प के समान ब्रह्म में अविद्या द्वारा अध्यस्त असत् ही है। जीव ही अविद्या के प्रभाव के कारण असत् वस्तु के रूप में उत्पन्न होकर सत्व के द्वारा विवेचन करता है तथा अपने स्वरूप से निष्काम ब्रह्मभूत भी अपने स्वरूप को भूलकर अभिन्न को भी भिन्न मानने अथवा द्वेष पूर्वक कामना करते हुए कर्मों में अनुतिष्ठित होता है, और उसके शुभ-अशुभ फलों के उपभोग रूप में जन्म और जन्मान्तर द्वारा संसार-सिन्धु में अवतरित होते हैं। जैसे स्वरूप आवरक माया की अपाकृति होती है वैसे ही संसारावृत्ति चलती अथवा रूकती है।

अतः निष्काम कर्म द्वारा चित्तशुद्धि होती है। उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता होती है। और 'इहामुत्रफलभोगविराग', 'शमदमादिषट्कसम्पत्ति' को अर्जित कर संसार-ताप-दाह में समान रहने वाला मुमुक्षु यदि ब्रह्मज्ञ गुरू के समीप जाता है। और वहाँ गुरूमुख से वेदान्त-वाक्य को सुनता है। और उससे मनन, निदध्यासन का आचरण करता है। उसके द्वारा समाधि में ब्रह्म में लीन उसकी माया विध्वस्त होती है। नित्यप्राप्त उसका ब्रह्म-स्वरूप आकाश में सूर्य के समान प्रकाशित होता है। सर्वत्र आत्मा को आत्मा में देखता है और उसका कोई भी द्वेष अथवा काम्य बाकी नहीं रहता। और उसके लिए कोई चेष्टा भी नहीं होती है। कर्म के अभाव के कारण फल भी फलित नहीं होता है। फल के अभाव से फल के उपभोग के लिए शरीर-परिग्रह भी आवश्यक नहीं होता। वह ब्रह्मविद्

टिप्पणी

पुनः उत्पन्न नहीं होता। जब तक प्रारब्ध का क्षय नहीं होता है तब तक वह शरीर धारण के लिए कर्तव्यमात्र बुद्धि द्वारा आवश्यक कर्ममात्र का अनुष्ठान करता है। यथा पुरूष अचेतन मूर्ति को देखकर उसकी अचेतनपिण्डमात्र स्वरूपता का भी अन्वेषण करता है, उसी प्रकार ब्रह्मविद् भी सभी जगत् को देखकर भी उसमें अनुस्यूत ब्रह्मस्वरूप का अन्वेषण भी करता है। क्षीण और प्रारब्ध शरीर को त्याग कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्नोति' यह वेदान्त का सार है।

इस प्रकार विधि, अर्थवाद, आरण्यक, उसके भेद, उपनिषद्, वेदान्त, इस प्रकार ब्राह्मण निरूपित है।

## 3.2 वेदों के प्रयोजन भेद द्वारा भेद

वेदों के द्वारा मानवों का जो प्रयोजन सिद्ध होता है उसके अनुसार वेद का विभाग भी किया जाता है। इसलिए कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड दो भेद हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थों में धर्म, अर्थ, काम का साधनभूत कर्मकाण्ड है। मोक्ष का साधनभूत ब्रह्मकाण्ड है।

वेद में जो कर्म प्रतिपादित है उसका विपुल विस्तार कालक्रम से हुआ। कौन-सा कर्म किस प्रकार से करना चाहिए। कौन-सा वेदमन्त्र किस प्रकार से पढ़ना चाहिए इत्यादि विषयों की अच्छी प्रकार से कार्य-विभाग की आवश्यकता अनुभूत हुई। अत एव वेद का जैसा प्रयोग होता है उसके अनुसार वेद का विभाजन किया गया है। उसके लिए उनके नाम स्थिरीकृत होते हैं। यह समाख्या (नाम) कही जाती है। होत्रप्रयोग, आध्वर्यवप्रयोग, औग्दात्रप्रयोग, ये तीन प्रयोग हैं। उसके अनुसार यज्ञ के निर्वाह के लिए वेद के ऋग्, यजु, साम तीन भेद हुए। ऋग्वेदीय कर्म जो करता है, वह 'होता' कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग हौत्रप्रयोग है। यजुर्वेदीय कर्म जो करता है वह 'अध्वर्यु' कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग आध्वर्यवप्रयोग है। सामवेदीय कर्म जो करता है, वह उद्गाता कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग औद्दात्रप्रयोग कहलाता है। अथर्ववेद का भी ऋत्विक् होता है। वह ब्रह्मा कहलाता है।

आहुति प्रदान करने के समय में याज्य पुरोनुवाक्य के ऋग्वेदीय मन्त्रों को 'होता' पढ़ता है। गो-दोहन, व्रीहि-निर्वाप इत्यादि कार्य यजुर्वेद में हैं। इस विषय का मन्त्र-पाठ अध्वर्यु करता है। आज्यस्तोत्र, पृठस्तोत्र आदिस्तोत्र सामवेद में हैं। उनको उद्गाता गाता है।

कर्मकाण्ड में नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध, ये चार कर्म प्रतिपादित है। इन कर्मों के भी प्रकृति कर्म और विकृति कर्म विभाग हैं। इस प्रकार चार वेदों के प्रयोजन भेद द्वारा कहे गए हैं।

## पाठगत प्रश्न 3.4

1. आरण्यक का परिशिष्ट भूत क्या है?

   (क) ऋक् मन्त्र का (ख) यजु मन्त्र का

   (ग) साम संहिता का (घ) उपनिषद्

2. रहस्य शब्द से क्या अर्थ होता है?

   (क) मन्त्र (ख) कल्प (ग) कर्मविद्या (घ) ब्रह्मविद्या

3. जिस ब्राह्मण वाक्य में विधि, निषेध, नामधेय, अर्थवाद नहीं कहे जाते, उस ब्राह्मण वाक्य को क्या कहते हैं?

   (क) वेदान्त (ख) ब्राह्मण (ग) आरण्यक (घ) मन्त्र

4. वेदान्त-श्रवण के कितने लिंग हैं?

   (क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) छः

5. यह ब्राह्मण भाग भी है, वेदान्त श्रवण का लिंग भी है?

   (क) विधि (ख) अभ्यास (ग) अर्थवाद (घ) अपूर्वता

6. उपनिषद् पद का मुख्यार्थ क्या है?

   (क) मुण्डक आदि ग्रन्थ (ख) ब्रह्मविद्या

   (ग) धर्मविद्या (घ) मन्त्रात्मक वेद

7. ऋग्वेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

8. यजुर्वेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

9. सामवेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

10. हौत्रप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

    (क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

11. आध्वर्यवप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

    (क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

टिप्पणी

12. औद्गात्रप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

(क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

## 3.3 वेदांग

अट्ठारह विद्यास्थान हैं। उसमें प्रथम चारों वेद निरूपित हैं। अब अंगों को निरूपित करते हैं। वेद के छः अंग हैं। शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प ये अंग हैं। वेदाध्ययन छः अंग सहित किया जाता है। उसमें यह श्लोक समुदाय सुप्रसिद्ध है-

**छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।**
**ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते॥**

**शिक्ष घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।**
**तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ (पा.श.)**

इन दो श्लोकों में वेद पुरूष के समान कल्पित है। उस पुरूष के दो पैर छन्दः शास्त्र, दो हाथ कल्प शास्त्र, चक्षु ज्योतिषशास्त्र, श्रोत्र निरूक्तशास्त्र, घ्राण शिक्षा शास्त्र एवम् मुख व्याकरण-शास्त्र है, ऐसा प्रतिपादित है। यहाँ जैसे पुरूष का मुख शरीर में मुख्य होता है, वैसा ही व्याकरणशास्त्र का स्थान है। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र का महत्व है। वेदों के रक्षण के लिए व्याकरणशास्त्र की अतीव उपयोगिता है। व्याकरण का ज्ञान वेद-ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। वेद के छः अंग हैं। उनमें व्याकरण ही प्रधान होता है। और प्रधान में किया गया यत्न फलवान् होता है। इस प्रकार सभी अंग गुरूत्वपूर्ण होते हैं।

### 3.3.1 शिक्षा

स्वरवर्णोच्चारण के प्रकार की जिसमें शिक्षा या उपदेश दी जाती है, वह शिक्षा है। शिक्षा का उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि विशिष्ट स्वर, व्यञजनात्मक वर्णोच्चारण एवं विशेष ज्ञान प्रयोजन है। उसके अभाव में मन्त्रों के अनर्थ होने के कारण। इसीलिए कहा गया है-

**मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्ततो न तमर्थमाह।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥ (शि-52)**

संस्कृत में स्वर और व्यञ्जन दो प्रकार के वर्ण हैं। ईश्वर ने कहा की शम्भु के मत में 63 वर्ण अथवा 64 वर्ण हैं। स्वरों में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुनासिक, अननुसासिक, भेद होते हैं। वर्णों के ऊर, कण्ठ, शिर, जिहामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु आठ उच्चारण स्थान हैं। आभ्यन्तर और ब्राह्य भेद से यत्न दो प्रकार

के होते हैं। आभ्यन्त चार अथवा पाँच प्रकार के होते हैं। बाह्य ग्यारह प्रकार के होते हैं। अनेक विषय शिक्षाग्रन्थों में अन्तर्निहित होते हैं। वैदिकों द्वारा वर्ण का शुद्ध उच्चारण करके शिक्षाशास्त्र अवलम्बित है। शुद्ध उच्चारण नहीं किया जाए तो मन्त्र अर्थहीन अथवा विपरीतार्थक सम्पन्न होता है। तब इष्टफल प्राप्त नहीं होता है। और भी मन्त्र द्वारा जो विपरीत अर्थ प्रकट होता है वैसा ही फल उत्पन्न होता है। अत: इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट हानि के लिए शुद्ध उच्चारण निश्चित रूप से करना चाहिए। उसमें इन्द्रवृत्रसुर की आख्यायिका सुप्रसिद्ध है। विस्तार के भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पाणिनि के मत को अवलम्बित करके पाणिनि शिक्षा प्रणीत हुई है। यह सर्ववेद साधारण है। उसमें पाँच खण्ड हैं। वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। शाखाओं रचनाओं में कुछ शिक्षा मुनियों द्वारा दी गई है। प्रतिशाख भिन्न वह शिक्षा प्रतिशाख्य कहलाती है।

## 3.3.2 व्याकरण

पाणिनिमुनि ने महेश्वर से आशीर्वाद रूप में चौदह सूत्र प्राप्त किए। उनका अवलम्बन करके अष्टाध्यायी नामक सूत्रात्मक ग्रन्थ उन्होंने प्रणीत किया। उसमें आठ अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। उसमें 3992 सूत्र हैं। उसमें प्रथम सूत्र है - वृद्धिरादैच्।

भगवान पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी में जो कहा गया है उसकी चिन्ता को, जो उक्त नहीं है किन्तु आवश्यक है उसका चिन्तन को, जो अवक्तव्य है किन्तु उक्त है उसके चिन्तन को वार्तिक में कात्यायन मुनि ने किया। वह चिन्ता उक्त, अनुक्त, दुरूक्त चिन्ता कही जाती है। काव्यायन द्वारा जो वार्तिक विरचित है उसमें भगवान पतञ्जलि ने महाभाष्य को रचा। महाभाष्य में मूल सूत्र का व्याख्यान है वार्तिक का व्याख्यान भी है। कात्यायन द्वारा कृत बहुत से वार्तिक पतञ्जलि द्वारा प्रत्याख्यात हैं। इस प्रकार पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि तीनों मुनियों द्वारा इस सम्पूर्ण व्याकरण की सर्वांग सम्पूर्णता सिद्ध की गई। अत: इस व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण कहते हैं। महेश्वर के आशीर्वाद/प्रसाद से इसका आरम्भ हुआ। अत: यह सम्प्रदाय माहेश्वर सम्प्रदाय कहलाता है। पाणिनि व्याकरण में ही वैदिक व्याकरण भी है। अत एव यह वेदांग को भजते हैं। अन्य बहुत से व्याकरण हैं। किन्तु उन वेदों का व्याकरण नहीं है, इस हेतु में वे वेदांग्त्व द्वारा गणित नहीं होते हैं। रक्षा, ऊह, आगम, लधु, असन्देह, ये व्याकरण के अध्ययन के मुख्य प्रयोजन हैं। अन्य गौण प्रयोजन भी हैं। वे विस्तारपूर्वक महाभाष्य में वर्णित हैं। व्याकरण में प्रत्येक पद प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा कल्पित है। उनके योग से साधुपद व्युत्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्याकरण साधुपद कौन हैं, यह ज्ञान करवाता है।

### पाठगत प्रश्न 3.4

1. वेद का हस्त स्थानीय कौन सा अंग होता है?

टिप्पणी

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग)छन्द (घ) कल्प

2. वेद का मुख्यस्थानीय कौन सा अंग होता है?

(क) शिक्षा (ख)व्याकरण (ग) छन्द (घ) कल्प

3. वेद का श्रोत्रस्थानीय कौन सा अंग होता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

4. शिक्षा वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पैर (ग) श्रोत्र (घ) घ्राण

5. व्याकरण वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पैर (ग) श्रोत्र (घ) मुख

6. ज्योतिष वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पाद (ग) श्रोत्र (घ) चक्षु

7. स्वरवर्णोच्चारण प्रकार जिसमें शिक्षा अथवा उपदिष्ट है वह अंग क्या कहलाता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

8. अष्टाध्यायी में कितने पाद है?

(क) 10 (ख) 16 (ग) 14 (घ) 32

9. त्रिमुनि व्याकरण में यह तीन मुनियों में नहीं है।

(क) पाणिनि (ख) पतञजलि (ग) कात्यायन (घ) कैयट

10. यह व्याकरण का सम्प्रदाय है।

(क) कणाद (ख) माहेश्वर (ग) पातञजल (घ) पाणिनीय

11. प्रकृति-प्रत्यय के विभाग से पदसाधुत्व का ज्ञान किस शास्त्र द्वारा होता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

## 3.3.3 निरूक्त

शिक्षा द्वारा शुद्ध उच्चारण एवं व्याकरण द्वारा साधु पद जाने जाते हैं। वहाँ से वेद के मन्त्रों में स्थित पदों का क्या अर्थ है, यह जिज्ञासा अच्छी प्रकार से उदित होती है। उसके लिए भगवान् यास्क ने निरूक्त नामक ग्रन्थ रचा। उसमें चौदह अध्याय हैं। कहीं बारह अध्याय, तेरह अध्याय भी पाठभेद में मिलते हैं। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में

कहा कि अर्थ के अवबोधन में निरपेक्षता पूर्वक पद की उत्पत्ति जहाँ उक्त है, वहाँ निरूक्त है। निरूक्त में कौन से विषय हैं, यह निम्न श्लोक में सुनिबद्ध है-

**वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकरनाशौ।**
**धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरूक्तम्॥**

वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश, अर्थ के अतिशय द्वारा धातु का योग, ऐसे ये विषय निरूक्त में हैं।

निरूक्त में नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात, ये चार पद हैं, ऐसा निरूपित है। और वहाँ वैदिक मन्त्रों का अर्थ भी प्रकाशित है। अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशन मन्त्र करते हैं। अतः वहाँ वे करणरूप में हैं। वाक्यार्थ का ज्ञान और वाक्यघटकीभूत पदों का अर्थ ज्ञान द्वारा सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। अतः वेदमन्त्र में स्थित पदों के अर्थपूर्ण ज्ञान के लिए निरूक्त अपेक्षित है।

**निश्चयेयन घटयति पठति शब्दान इति निघण्टुः।**

जिन पदों का प्रकृति-प्रत्यय विभाग सुलभ न हो उनका अन्तर्भाव निघण्टु में होता है। निरूक्त में अन्तर्भूत ही वैदिक द्रव्यों तथा वैदिक देवताओं के पर्याय शब्द निघण्टु में हैं। भगवान् यास्क ने पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु नामक ग्रन्थ उपनिबद्ध किया। और उसकी व्याख्या की। वह व्याख्या ही निरूक्त कहलाती है। यास्क द्वारा रचित निघण्टु की व्याख्या निरूक्त कहलाती है। नैघण्टुकाण्ड, नैगमकाण्ड, दैवतकाण्ड, ये निघुण्टु के तीन काण्ड हैं। कारिका-

**आद्यं नैघण्टुकाणं द्वितीयं नैगमन्तथा।**
**तृतीयं दैवतं चेति समाम्नायस्त्रिधा मतः॥ (अनुक्रमणिकाभाष्यम्)**

निघण्टु शब्द का अर्थ - एकार्थवाची पर्याय शब्दों का संघ जिसमें प्रायः उपदिष्ट है, उसमें निघण्टु शब्द प्रसिद्ध है। नैघण्टु काण्ड में पर्याय शब्द संघात का उपदेश है। उस काण्ड में तीन अध्याय हैं। निगम शब्द वेद वाची है। प्रायः वेद में ही वर्तमान शब्दों का चतुर्थ अध्याय में निरूपण है। वह यह नैगमकाण्ड है। तृतीय काण्ड दैवतकाण्ड है। पञ्चम् अध्याय उसमें अन्तर्निहित है।

निघण्टु में तीन काण्ड हैं। उनकी व्याख्या ही निरूक्त है। निघण्टु में नैघण्टु नामक प्रथम काण्ड की व्याख्या तीनों अध्यायों द्वारा की गई है। निघण्टु में नैगम नामक द्वितीय काण्ड की व्याख्या चतुर्थ अध्याय द्वारा की गई है। निघण्टु में दैवतकाण्ड की व्याख्या पञ्चम् अध्याय द्वारा की गई है। इस पञ्चम् अध्याय द्वारा की गई है। इस प्रकार निघण्टु के तीन काण्ड पाँच अध्यायों में विभक्त हैं।

निघण्टु के नैघण्टुकाण्ड की व्याख्या निरूक्त के तीन अध्यायों में समुपलब्ध है। निघण्टु के चतुर्थ अध्यायात्मक नैगमकाण्ड की व्याख्या निरूक्त में चतुर्थ, पञ्चम् और षष्ठ अध्यायों

टिप्पणी

में विराजमान है। निघण्टु के पञ्चम् अध्यायात्मक दैवतकाण्ड की व्याख्या निरूक्त में सप्तम अध्याय के आरम्भ से द्वादशाध्याय तक उपलब्ध है। इस प्रकार निरूक्त में द्वादश अध्याय हैं। उसमें भी दो अध्याय सर्वतः भिन्न परिशिष्ट रूप से विद्यमान है। संकल के द्वारा चतुर्दश अध्याय निरूक्त में विकसित है। निरूक्त के दो अध्यायों के अपूर्णतावश तेरह अध्याय हैं। उसमें इस प्रकार विभाग विभावनीय है-

- निघण्टु का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय = नैघण्टुकाण्ड = निरूक्त का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय
- निघण्टु का चतुर्थ अध्याय = नैगमकाण्ड = निरूक्त का चतुर्थ, पञ्चम्, षष्ठ अध्याय
- निघण्टु का पञ्चम् अध्याय = दैवत काण्ड = निरूक्त के सप्तम अध्याय से द्वादश अध्याय तक

व्याकरण और निरूक्त में कुछ वैलक्षण्य है। यथा-रासायनिक स्थान पर औषधि के दो प्रयोग होते हैं। प्रथम निर्माण स्थान। यहाँ नाना प्रकार के औषधियों के युक्त मिश्रण से वटी, चूर्ण आदि औषधि निर्मित होती है। द्वितीय विश्लेषण स्थान। प्रथम स्थान पर वटी, चूर्ण आदि रूप में निर्मित औषधि के अवयव पृथक् किये जाते हैं। वहाँ परीक्षण किया जाता है कि एक औषधि में किस औषधि की कितनी मात्रा है। इसी प्रकार शब्द विषय में दो शास्त्र हैं। प्रथम व्याकरण। इसमें शब्द के मूलभागों को लेकर शब्द निर्मित होता है। द्वितीय निरूक्त। पूर्व में निर्मित शब्द के निरूक्त में अवयव पृथक-पृथक किये जाते है, उसके अर्थज्ञान के लिए। एवम् पूर्व में वर्तमान पुरातन शब्द के विभाग करण शास्त्र को निरूक्त कहते हैं, ऐसा निरूक्त का शाब्दिक स्वरूप है।

### 3.3.4 छन्द

ऋग्वेद के मन्त्र में पाद हैं। मन्त्र में छन्द अर्थात् वृत्त है। जो मन्त्रों का छन्द नहीं जानता है तथापि पढ़ता है, उसकी निन्दा सुनी जाती है। उपाय सम्भव है। यज्ञ आदि में अनेक कर्म होते हैं। और वे कर्म अधिकार भेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्वारा किये जाते है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में निर्देश प्राप्त होता है कि ब्राह्मण गायत्री मन्त्र द्वारा अग्नि का अधिष्ठान करे। राजा रक्षा करे। वैश्य जगत् में व्यापार करे। इस प्रकार अनुष्ठान विशेष छन्द विशेष निमित्त द्वारा विधान होता है। अतः यहाँ भी वेद प्रयोग छन्द के ज्ञान के बिना नहीं कर सकते। अतः छन्द-ज्ञान प्रयोजन है। अतः छन्दों के प्रकाशन के लिए पिंगलमुनि द्वारा 'छन्दः सूत्र' की रचना की गई। उसमें तीन अध्यायों में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अलौकिक छन्द विवृत है, और उनके अवान्तर भेदः है। उसमें भी लौकिक छन्द पाँच अध्यायों में प्रकाशित हैं। ये छन्द पुराण, इतिहास आदि में हैं।

## 3.3.5 ज्योतिष

वैदिक कर्म कब करने चाहिए और किस काल द्वारा किये जाने चाहिए, ऐसा वेद में विहित है। अत एवं काल की समुचित गणना और ज्ञान आवश्यक है। वसन्ते ब्राह्मणेऽग्निमादधीत। ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत। (तै. ब्रा.) फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्। (तै. स. 7.4.8) कृत्तिकास्वग्निमादधीत। (वै.ब्रा. 1.1.2.1) इत्यादि वचनों द्वारा ज्ञात होता है कि विशिष्ट काल में कर्म अनुष्ठेय होते है। कालज्ञ ही यह करने में समर्थ हैं। अत: ज्योतिष शास्त्र प्रवृत्त हुआ। इस शास्त्र द्वारा काल का ज्ञान होता है। भगवान् आदित्य और गर्गादि ने काल ज्ञान के लिए विविध ग्रन्थों की रचना की। कहा गया है कि ज्योतिष कालबोधक शास्त्र होता है। वेद में विहित कर्म जिस विशिष्ट काल में करने होते हैं, वह काल विशिष्ट मास-पक्ष-तिथि-प्रभृति के अंशों को आश्रय बनाकर सिद्ध होता है। मास-पक्ष-तिथि आदि का विवेक ज्योतिष द्वारा होता है। अत: काल विशेष को आश्रय बनाकर विहित वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में कालबाधकता के द्वारा ज्योतिष महान उपकार करता है। वेद-भेद के द्वारा वेदांगभूत ज्योतिष भी भिन्न होता है। लगध कृत वेदांग ज्योतिष अत्यन्त प्रसिद्ध होता है

| अनुक्रम | वेदांग | प्रणेता | ग्रन्थ-नाम | अध्याय संख्या |
|---|---|---|---|---|
| 1 | शिक्षा | (अज्ञात) | पाणिनीय शिक्षा | 5 खण्ड |
| 2 | व्याकरण | पाणिनि | अष्टाध्यायी | 8 अध्याय |
| 3 | निरूक्त | यास्क | निरूक्त | 14 अध्याय |
| 4 | छन्द | पिंगल | छन्द: सूत्र | 8 अध्याय |
| 5 | ज्योतिष | आदित्यादि | - | - |
| 6 | कल्प | (अनेक) | - | - |

## 3.3.6 कल्प

यज्ञ, याग, इष्टि आदि रूप में विविध कर्म वेद द्वारा प्रतिपादित हैं। उन कर्मों में विविध मन्त्र प्रयुज्य हैं। इन मन्त्रों की संख्या विपुल है। एक-एक याग आदि अनुष्ठान में विविध कर्म होते हैं। उनकी भी संख्या विपुल है। और स्वरूप जटिल होता है। कब किस क्रम से क्या कर्म करने योग्य है? कब किससे किस मन्त्र का प्रयोग करने योग्य है, ऐसे विषय में स्पष्टता आवश्यक है। सभी लोग समग्र वेद को पढ़ने के ही निर्णय में असमर्थ हैं। अत: विभागश: ये विषय विद्वानों द्वारा सभी के हित के लिए प्रतिपादित हैं। ये विषय कल्प के ही हैं। उसमें आश्वलायन, शाङ्खायन इत्यादि आचार्यों द्वारा हौत्र प्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात् ऋग्वेदीय ऋत्विक होता, उसके द्वारा किये जाने वाले जो प्रयोग हौत्र प्रयोग हैं, उसको उद्देश्य करके प्रणीत हैं। बौधायन, आपस्तम्ब,

टिप्पणी

कात्यायन इत्यादि आचार्यों द्वारा आध्वर्यव प्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात्-यजुर्वेदीय ऋत्विक अध्वर्यु, उसके द्वारा किये जाने वाले जो प्रयोग आध्वर्यव प्रयोग है, उसको उद्देश्य करके कल्पसूत्र प्रणीत हैं। लाट्यायन, द्राह्यायण इत्यादि आचार्यों द्वारा औद्गात्रप्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात् सामवेदीय ऋत्विक उद्गाता, उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयोग औद्गात्रप्रयोग, उसको उद्देश्य करके कल्पसूत्र प्रणीत हैं। वैतानसूत्र अथर्ववेदीय कल्पसूत्र गोपथब्राह्मण को अवलम्बन करके प्रणीत हैं। कल्प यज्ञ प्रक्रिया के निर्वहण के लिए आवश्यक विषयों का बोधक शास्त्र सूत्ररूप में उपलब्ध है, ऐसा ही कहा गया है।

प्रधान रूप से कल्पसूत्र दो प्रकार के होते हैं। श्रौतसूत्र और स्मार्तसूत्र। वेदोक्त अर्थात् श्रुति-युक्त कर्मविधियों के बोधक श्रौतसूत्र हैं। स्मृत्युक्त कर्मविधियों के बोधक स्मार्तसूत्र हैं। स्मार्तसूत्र भी श्रुत्युक्तों के कर्मविधियों के ही बोधक होते हैं। उसमें पुनः दो विभाग है- धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र। वर्णाश्रम-भेद से धर्म का बोध धर्मसूत्र कराता है। गृहसूत्र तो सोलह संस्कारों का विधि-बोधक शास्त्र है। उसका उपयोग गृहस्थाश्रम में विशेष होता है। शुल्बसूत्र तो श्रौतसूत्र में अन्तर्निहित है। और वह यज्ञकुण्ड-यज्ञशाला आदि का मापन के लिए अपेक्षित होता है।

## पाठगत प्रश्न 3.5

1. अर्थ के अवबोध में निरपेक्षतया पद उत्पत्ति को जहाँ कहा गया है वह सायण के मत में क्या है?

   (क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

2. निघण्टु के तीन काण्डों में यह नहीं है।

   (क) नैघण्टु (ख) नैरूक्त (ग) नैगम (घ) दैवत

3. निरूक्त में कितने अध्याय हैं?

   (क) 10 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

4. ब्राह्मण किस प्रकार के मन्त्र द्वारा अग्नि का अनुष्ठान करे?

   (क) गायत्रीमन्त्र द्वारा (ख) त्रिष्टुप्मन्त्र द्वारा

   (ग) बृहतीमन्त्र द्वारा (घ) उष्णिक्मन्त्र द्वारा

5. पैंगल छन्द विवृति में अलौकिक छन्द कितने अध्यायों में हैं?

   (क) आदि के तीन में (ख) शेष के तीन में

   (ग) आदि के चार में (घ) शेष के चार में

## पाठसार

वेद भारतीय ज्ञान सागर का जलद है। और वह ज्ञानराशि है। उसके द्वारा पुरूषार्थ का अलौकिक उपाय जाना जाता है। अन्यथा मानव पुरूष को नहीं जान सकता अथवा उसके अलौकिक उपाय को नहीं जान सकता। अत एव देवताओं, पितरो और मानवों का दिव्य सनातन चक्षु वेद ही है, ऐसा कहते है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चार प्रकार के पुरूषार्थ ज्ञातव्य है और वेद ही परम प्रमाण है। और उसके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चार वेद हैं। प्रत्येक वेद का मन्त्र और ब्राह्मण विभाग होता है। कर्म का अनुष्ठान, अनुष्ठान का द्रव्य, देवता इत्यादि के प्रकाशक और प्रतिपादक मन्त्र हैं। मन्त्रांश को छोड़कर शेष भाग ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण में याग आदि क्रियाविधि प्रधान रूप से प्रतिपादित है। ब्राह्मणों में वर्ण्यमान विषय जो छः हैं - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प और पराकृति।

ब्राह्मण के परिशिष्टभूत आरण्यक और उपनिषद्, ये दो हैं। गोपथ ब्राह्मण में आरण्य को रहस्य भी कहते हैं। आरण्यक की परिशिष्टभूता उपनिषद् है। उपनिषद् ब्रह्म-विद्या होती है। अधिकारी उस विद्या को प्राप्त करते हैं जिससे वह विद्या उसके संसार बन्ध को नष्ट करती है, उस परम ब्रह्म को प्राप्त करता है, जन्म-जरा आदि का क्षय करता है।

मर्त्य काम्य और निषिद्ध कर्मो को परित्यक्त नित्य, नैमित्तिक और प्रायश्चित द्वारा चित्तशुद्धि को सम्पादित करता है। उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता को बढ़ाता है। विवेक आदि साधनचतुष्टसम्पन्न होता है। तब संसार-ज्वाला के असहनीय होने पर गुरू के शरण में जाता है। और गुरू अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा उसको उपदेश देता है। और उससे वह श्रवण, मनन, निदिध्यासन समाधियों द्वारा जीव-ब्रह्म के ऐक्य को जानता है। तब उसकी हृदय-ग्रन्थि को भेदन होता है, सर्वसंशय छिन्न होते हैं, कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं। अतः मुक्त होता है। ब्रह्मविद् ब्रह्म ही हो जाता है, ऐसा वेदान्त का सार है। प्रयोजन के भेद से भी वेद के कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दो विभाग होते हैं।

वेद के छः अंग हैं। शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प, ये वेद के षड्ग हैं। स्वरवर्णोच्चारण के प्रकार जिसमें बताए या उपदेश किये जाते है, वह शिक्षा है। व्याकरण में प्रत्येक पद के प्रकृति और प्रत्यय विभाग कल्पित हैं। उन दोनों के योग से साधु पद व्युत्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्याकरण साधुपद कौन से हैं, यह ज्ञान कराता है। वैदिक पदों का अर्थज्ञान निरूक्त द्वारा होता है। मन्त्रों में विद्यमान छन्दों का ज्ञान छन्दःशास्त्र द्वारा होता है। कर्म-अनुष्ठान की काल गणना ज्योतिष द्वारा होती हे। मन्त्रप्रयोग, स्थण्डिल, मण्डप आदि के निर्माण, किस ऋत्विज का क्या कार्य है इत्यादि ज्ञान कल्प शास्त्र द्वारा होता है। इस प्रकार वेदांग निरूपित हैं।

## पाठान्त प्रश्न

टिप्पणी

1. वेद शब्द का अर्थ प्रतिपादित कीजिए।
2. वेद की महिमा लिखिए।
3. वेद का क्या लक्षण हैं?
4. मन्त्रों का परिचय दीजिए।
5. ऋक् मन्त्रों से यजु मन्त्रों का क्या भेद है?
6. वेद भाग ब्राह्मण का परिचय दीजिए।
7. ब्राह्मण के भेदों को लिखिए।
8. विधि के भेदों का परिचय दीजिए।
9. गुण कर्म का वर्णन कीजिए।
10. अर्थ कर्म का वर्णन कीजिए।
11. ब्राह्मण में क्या निषेध है?
12. ब्राह्मण में नामधेय क्या है?
13. अर्थवाद का परिचय दीजिए।
14. गुणवाद का परिचय दीजिए।
15. भूतार्थवाद का गुणवाद में क्या वैलक्षण्य है?
16. आरण्यकों का परिचय दीजिए।
17. वेदान्त का परिचय दीजिए।
18. उपनिषद् का परिचय दीजिए।
19. प्रयोजन भेद से वेद के भेदों को बताइये।
20. वेदपुरूष के कौन से अंग क्या स्थानीय है?
21. शिक्षा को संक्षिप्त में समझाइए।
22. व्याकरण की व्याख्या कीजिए।
23. निरूक्त का निवर्चन कीजिए।
24. छन्द को गायें।

25. ज्योतिष का दिग्दर्शन कीजिए।

26. कल्प की कल्पना कीजिए।

## पाठान्त प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-3.1

1. विद्-ज्ञाने, इस धातु से धाञ् प्रत्यय के योग द्वारा वेद शब्द निष्पन्न है। अतः वेद अलौकिक ज्ञानराशि ही होता है।
2. ब्राह्मण के द्वारा निष्कारण धर्म, षड्ंग और वेद को जानना चाहिए।
3. (घ)
4. (घ)

### उत्तर-3.2

(1) (क) (2) (ग) (3) (ख) (4) (ख) (5) (घ) (6) (घ) (7) (क)

### उत्तर-3.3

(1) (घ) (2) (ख) (3) (ग) (4) (घ) (5) (घ) (6) (क) (7) (ख) (8) (ग)

### उत्तर-3.4

(1) (घ) (2) (घ) (3) (क) (4) (घ) (5) (ग) (6) (ख) (7) (क) (8) (ख) (9) (ग) (10) (क) (11) (ख) (12) (ग)

### उत्तर-3.5

(1) (घ) (2) (ख) (3) (घ) (4) (घ) (5) (घ) (6) (घ) (7) (क) (8) (घ) (9) (घ) (10) (ख) (11) (ख)

टिप्पणी

**उत्तर-3.6**

(1) (घ) (3) (ख) (5) (क)

(2) (घ) (4) (क)

# 4

# भारतीय विद्या का परिचय-2

## प्रस्तावना

भारत भूमि पर प्राय: दस हजार वर्षों में जो आविष्कार हुआ, जो चिन्तन हुआ, जो शास्त्र द्वारा निश्चित है, वह सभी प्राय: संस्कृत भाषा द्वारा निबद्ध है। भारत में विद्यालयों की भाषा, राज व्यवहार की भाषा, शास्त्र-लेखन की भाषा और काव्य, नाटक आदि लेखन की भाषा संस्कृत ही थी। उस भाषा द्वारा इहलोक-परलोक के साधन के लिए भी विद्याएँ सुनिबद्ध हैं। उन विद्याओं का संक्षेप रूप से परिचय छात्राओं को हो, इसी उद्देश्य से यहाँ पूर्वपाठों में विद्या का विभाग प्रदर्शित है। और उसमें वेद और उसके अंगों का परिचय कराया गया है। उस भारतीय विद्या के परिचय में वेद के उपांग, उपवेद, यह अवशिष्ट है। उसका परिचय प्रस्तुत करेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदों के उपांगों को जान पाने में;
- वेदों के उपवेदों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेद, उसके अंग, उपांग, वेदों के विभागों को जान पाने में;
- विभिन्न प्रस्थानों के प्रयोजन का अवधारण कर पाने में;
- भारतीय संस्कृत वाङ्मय का प्रारूप जान पाने में;

टिप्पणी

## 4.1 उपांग

अट्ठारह विद्यास्थान है। उसमें प्रथम चार वेद, और उसके छः अंग निरूपित हैं। अब उपांग निरूपित करते हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ये चार उपांग हैं। वे क्रमशः निरूपित हैं।

## 4.2 पुराण

वेदों को ग्रहण करके जीवन के कृत्य-अकृत्य के विवेक को प्राप्त करने में समर्थ उस विवेक के लिए तत्वदर्शी मुनियों ने पुराणों को रचा। और उन पुराणकताओं में भगवान वेदव्यास हैं। पुराणों में वेदोक्त तत्व का दृष्टान्त-रूपों के द्वारा पुरातन-देव-मुनि-राजा-प्रभृतियों के वृतान्तों द्वारा बोध कराते हैं। अतः ''इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपंबृहयेत्'' ऐसा सम्प्रदायिक कहते हैं। इतिहास और पुराण के द्वारा वेद के तात्पर्य का विस्तारपूर्वक निरूपण और परिवर्धन होता है। अर्थात् विस्तारपूर्वक दृष्टान्त आदि द्वारा अर्थ को खोलकर प्रकाशित किया गया है। पुराणों में वर्णित विषय वेद में कहे गए निगूढ़ तत्व के सरलतापूर्ण निरूपण के लिए अत्यन्त सहायक होते हैं। पुरातन वृतान्त धर्म आदि तत्व के निरूपण के लिए निदर्शन रूप में जब वर्णित होते हैं तब तत्व अभिव्यञ्जक वे सर्वदा नवीन के समान ही होते हैं। अतः पुरातन होने पर भी पुराण को नवीन ही कहते हैं। पुरा का अर्थ प्राचीन है। पुराण ग्रन्थों का सामान्य स्वरूप होता है, यथा

**सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।**
**वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥**

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित, इन पाँच अंशों से युक्त पुराण होता है। सर्ग सृष्टि है। प्रतिसर्ग ही सृष्टि का लय और पुनः सृष्टि है। वंश सृष्टि आदि में कब-कब कौन-कौन सा वंश हुआ यही वर्णन है। वंशानुचरित सूर्य-चन्द्र वंशीय राजाओं का वर्णन है। ये पाँच अंश पुराण में अन्तर्निहित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विषय पुराणों में होते हैं।

भक्ति मार्ग का प्रतिपादन और उसका प्रसार पुराणों का प्रधान प्रयोजन है। दुष्टों का विनाश करके भगवान् कैसे भक्तों की रक्षा करते हैं, इस विषय का ललिता पूर्वक प्रतिपादन से इन पुराणों को मानने वाले भक्तिमार्ग में प्रेरित होते हैं। भक्ति द्वारा दुःख का क्षय होता है और पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि होती है, ऐसी भक्तों में भावना उत्पन्न होती है। बहुत से पुराण शिवभक्ति प्रधान हैं। कुछ विष्णुभक्ति प्रधान हैं। और एक देवीप्रधान हैं।

पहले पुराणश्लोक संख्या एक करोड़ थी। भगवान् बादरायण व्यास देव ने संक्षिप्त करके उनको 14 लाख किया। अट्ठारह महापुराण हैं। उपपुराण भी बहुत हैं। यह नीचे तालिका

में पुराण का नाम और उसकी श्लोक संख्या प्रदान की गई है-

| अनुक्रम | पुराण-नाम | श्लोक संख्या |
|---|---|---|
| 1 | ब्रह्म | 30000 |
| 2 | पद्म | 55000 |
| 3 | वैष्णव | 23000 |
| 4 | शैव | 24000 |
| 5 | भागवत (देवी) | 18000 |
| 6 | नारदीय | 25000 |
| 7 | मार्कण्डेय | 9000 |
| 8 | आग्नेय | 16000 |
| 9 | भविष्य | 14500 |
| 10 | ब्रह्मवैवर्त | 18000 |
| 11 | लैंगम (लिंग) | 11000 |
| 12 | वाराह | 24000 |
| 13 | स्कन्द | 81100 |
| 14 | वामन | 10000 |
| 15 | कौर्मम् (कूर्म) | 18000 |
| 16 | मत्स्य | 14000 |
| 17 | गरूड | 19000 |
| 18 | ब्रह्माण्ड | 12000 |

## पुराणों की कर्तृ संख्या और नाम

पुराणों के रचयिता भगवान् वेद व्यास हैं। उनका पुराणमुनि नाम प्रसिद्ध ही है। पुराणों की संख्या अट्ठारह है। उन नाम को ग्रहण करके कुछ प्राचीन श्लोक सर्वत्र उद्धृत हैं। और वह हैं-

**मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।**
**अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥**

यहाँ पुराणों के प्रथम अक्षर ग्रहण करके उनके नाम स्मरण करते हैं।

टिप्पणी

**मद्वयम्** – मकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण होते हैं और वह मत्स्य पुराण और मार्कण्डेय पुराण हैं।

**भद्वयम्** – भकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण के नाम भविष्यपुराण और भागवतपुराण हैं।

**ब्रत्रयमफ** – ब्रकार प्रथम अक्षर से युक्त तीन पुराणों के नाम ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्म पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण हैं।

**वचतुष्टयम्** – वकार प्रथम अक्षर से युक्त चार पुराणों के नाम वराहपुराण, वामन पुराण, वायुपुराण और विष्णु पुराण है।

अ – अग्नि पुराण

ना – नारद पुराण

प – पद्म पुराण

लि – लिंग पुराण

ग – गरूड पुराण

कू – कूर्म पुराण

स्क – स्कन्द पुराण

## पुराण के प्रवचनकर्ता

किसके द्वारा कौन सा पुराण कहा गया, यह नीचे दिया जा रहा है-

**आद्यं सनत्कुमारेण प्रोक्तं वेदविदां वराः।**
**द्वितीयं नारसिंहाख्यं तृतीयं नान्दमेव च॥**

**चतर्थं शिवधर्माख्यं दौर्वासं पञ्चमं विदुः।**
**षष्ठं तु नारदीयाख्यं कपिलं सप्तमं विदुः॥**

**अष्टमं मानवं प्रोक्तं ततश्चोशनसेरितम्।**
**ततो ब्रह्माण्डसंज्ञं तु वारूणाख्यं ततः परम्॥**

**ततः कालीपुराणाख्यं वाशिष्ठं मुनिपुंगवाः।**
**ततो वाशिष्ठं लैंगाख्यं प्रोक्तं माहेश्वरं परम्॥**

**ततः साम्बपुराणाख्यं ततः सौरं महाद्भुतम।**
**पाराशरं ततः प्रोक्तं मारीचाख्यं ततः परम्॥**

**भार्गवाख्यं ततः प्रोक्तं सर्वधर्मार्थसाधकम्।**
**एवमुपपुराणानि अनेक प्रकराणि द्रष्टव्यानि॥**

एवम् अट्ठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। ये अन्य गणेश-नारसिंह-सौर आदि अट्ठारह उपपुराण हैं। सभी पुराणों का विस्तार अनन्त आकाश के समान गोचर होता है। पुराण वेदोक्त जीवन-विवेक का बोध कराते हैं। परन्तु वेद में सूक्ष्म रूप से कहे गए सृष्टि-प्रलय के विचार, युग, मन्वन्तर आदि के काल परिमाण, भगवान् के अवतार इत्यादि विलक्षण विषय पुराणों में अच्छी प्रकार से निरूपित हैं। धर्म-अधर्म निर्णय के प्रसंग में पुराणों के श्लोक प्रमाण रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

पुराणों में प्रतिपादन शैली वेद शैली से भिन्न दिखती है। मन्द मति वालों को भी गंभीर तत्व का ग्रहण जैसे सम्भव हो वैसे यहाँ विषय का निरूपण होता है। प्राचीन वृतान्त के निरूपण 'पुर:सर' में सभी प्रकाशित होता है। परन्तु यहाँ वैदिक परिभाषा नहीं होती है। लोक जीवन के निदर्शन द्वारा किया गया निरूपण लोगों को सरलता से हृदयग्राह्य होता है। पुराणों में वेद और काव्य-शैली के मध्य की कोई शैली होती है। उनमें कृत्य-अकृत्य का उपदेश मित्र के उपदेश के समान न अति कठिन और न ही सहसा परिहार के योग्य होता है। उससे पुराण को मित्र सम्मित आलंगारिका कहते हैं।

## पाठागत प्रश्न 4.1

1. पुराण में जो विषय प्रधान है उसका प्रतिपादक श्लोक लिखिए।
2. महापुराण कितने हैं?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18
3. पुराणों का रचयिता कौन है?

   (क) वेद व्यास (ख) शुक (ग) सनत्कुमार (घ) नारद
4. पुराण किस प्रकार का होता है?

   (क) प्रभुसम्मित (ख) कान्तासम्मित (ग) मित्रसम्मित (घ) मातृसम्मित
5. सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तर किस शास्त्र में प्रतिपादित हैं?

   (क) पुराण (ख) महाभारत (ग) रामायण (घ) धर्मशास्त्र

## 4.3 न्याय

भारतीय शास्त्रों के सम्पूर्ण उपकारक न्याय है। न्याय को आन्वीक्षिकी भी कहते हैं। चाणक्य के मत में सांख्य, योग और लोकायत, यह तीन आन्वीक्षिकी होती है। लोकायत न्याय शास्त्र ब्रह्मगार्ग्य द्वारा उक्त शास्त्र है। तर्कविद्या आन्वीक्षिकी में कैसे अन्तर्निहित है? 'तर्कविद्या' पद में तर्क अनुमान है। अत: जिस विद्या से अनुमान अच्छी प्रकार से प्रतिपादित होता

टिप्पणी

है, वह तर्क विद्या है। अनुमान सांख्य, मीमांसा, गौतमीय-न्याय और काणाद वैशेषिक में अच्छी प्रकार से प्रतिपादित है। अतः तर्कविद्या कणाद और गौतम का भी है। अतः नैयायिकों द्वारा कहा जाता है कि वे दोनों न्याय हैं। ब्रह्मसूत्र आदि में जब तार्किक ऐसा उल्लेख करते है तब 'तार्किक' पद से सांख्य ही जाने जाते हैं, नैयायिक नहीं। चाणक्य के मत में जो आन्वीक्षिकी है, उस आन्वीक्षिकी की महिमा को चाणक्य ने कहा-

**प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।**
**आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥**

सरलार्थ- सभी विद्याओं का प्रदीप आन्वीक्षिकी विद्या है। अर्थात् उन विद्याओं में निहित निगूढ़ तत्वों का ज्ञान आन्वीक्षिकी विद्या द्वारा होता है। यथा-अन्धकार में स्थित द्रव्य प्रदीप के प्रकाश द्वारा दिखते हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा शब्द प्रमाण द्वारा जो ज्ञात होता है, उसके गूढ़ अर्थ का ज्ञान तथा प्रामाण्य ज्ञान आन्वीक्षिकी विद्या द्वारा होता है। सभी कर्म आन्वीक्षिकी के अनुसार किये जाते हैं। अर्थात् कर्म के स्वरूप आदि को वेद आदि द्वारा जानकर आन्वीक्षिकी द्वारा सम्परीक्षण करते हैं। सभी धर्मों वैदिक कर्मों के आश्रम प्रवर्तिक देहान्तर प्राप्त स्वर्ग आदि के साधनभूत कर्मों में तर्क के द्वारा शरीर के अतिरिक्त नित्य आत्मा की निश्चित प्रवृत्ति समीप होने के कारण कहा गया है-

''यस्तर्केण अनुसन्धते स धर्म वेद नेतरः।'' कर्म के सम्यक् ज्ञान के कारण कर्म में प्रवृत्त होता है। अतः यह विद्या उपाय अर्थात् साधनभूता है। सभी धर्मों की आश्रयभूता यह आन्वीक्षिकी विद्या है।

आन्वीक्षिकी की उपकारिता भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से ज्ञात है। अत एव सर्वत्र युक्ति युक्त प्रतिपादन शास्त्रों में उपलब्ध होता है। तर्क की उपकारिता निम्न श्लोक में सुनिबद्ध है-

**मोहं रूणद्धि विमलीकुरूते च बुद्धिं**
**सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।**

**शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यता युनक्ति**
**तर्कश्रमो न कुरूते कमिहोपकारम्॥**

कणाद् और गौतम के सम्प्रदाय में भी आन्वीक्षिकी न्याय कहलाती है। न्याय भाष्यकार ने कहा-

**''कः पुनरयं न्यायः। प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः।**
**प्रत्यक्षागमाश्रितम् अनुमानं सा आन्वीक्षिकी।**

प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणम् अन्वीक्षा, तया प्रवर्तते इति आन्वीक्षिकी।'' न्याय क्या करता है? जिसके द्वारा विवक्षित अर्थ की सिद्धि होती है, वह न्याय है। न्याय पद का अन्य भी अर्थ प्रसिद्ध है। यथा- प्रतिज्ञाद्यवयवसमूहो न्यायः। स्यादेतत्।

पाणिनीय पदशास्त्र, कणादप्रणीत पदार्थशास्त्र की सर्वशास्त्र उपकारिता यहाँ भी इस प्रकार प्रतिपादित है- काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोकारकम्।

अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाऽप्रिये स्पृशत् इत्यादि वेद वाक्यों द्वारा आत्मा शरीर से अतिरिक्त है, यह ज्ञात होता है। अर्थात् जड़ से भिन्न आत्मा। तथापि मिथ्या ज्ञान के कारण शरीर आदि एक ही आत्मा है, इस भ्रान्ति से जीव निरन्तर दु:ख को प्राप्त करता है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि मोक्ष साधन होते हैं। आत्मा उस देह आदि जड़ से भिन्न हैं, श्रुति द्वारा वैसा प्रतिपादन करने के कारण, यह अनुमान किया जाता है। और वहाँ योग समाधि द्वारा आत्म-साक्षात्कार होता है। उसमें आत्म स्वरूप यथावत् प्रकट होता है। तब वासना सहित मिथ्याज्ञान का नाश होता है। राग द्वेष के कारण ही विहित और निषेध में कर्म प्रवर्तित होते हैं। दोषाभाव में प्रवर्तित नहीं होते हैं। विहित कर्म द्वारा पुण्य धर्म उत्पन्न होता है। निषिद्ध कर्म के आचरण से पाप अधर्म उत्पन्न होता है। कर्म नहीं करने पर धर्म-अधर्म भी उत्पन्न नहीं होते। पूर्वजन्म में किये गए कर्म द्वारा उत्पन्न धर्म-अधर्म संचित किए जाते हैं। आत्म साक्षात्कार से धर्म-अधर्मात्मक संचित का नाश होता है। प्रारब्ध का तो अनुभव द्वारा नाश होता है। अत: धर्म-अधर्म के पूर्णत: विलय होने पर दु:ख के उत्पत्ति का कारण भी नहीं बचता। तब चरम दु:ख भी ध्वंस हो जाता है। यह ही गौतमीय न्याय के मत में मोक्ष है। इसीलिए सूत्र है-

'दु:ख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग:'।।

सरलार्थ- दु:ख का कारण जन्म है। जन्म का कारण प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति का कारण दोष है। दोष का कारण मिथ्या ज्ञान है। अत: देह आदि आत्मा है, इस मिथ्या ज्ञान के नाश होने पर राग, द्वेष आदि दोष नष्ट होते हैं। उससे कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती है। कर्म के अभाव में धर्म-अधर्म का अभाव होता है। उसके द्वारा पुनर्जन्म नहीं होता। जन्म के अभाव में दु:ख नहीं होता है।

इसमें ही पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के बिना उनके साधर्म्य-वैधर्म्य का ज्ञान सम्भव नहीं होता है। यथार्थ ज्ञान होने पर ही सम्भव होता है। वही 'आत्मा देह आदि जड़ से भिन्न है', यह अनुमान कर सकते है। यह युक्ति-अनुसन्धान रूप अनुमान मनन में उपयोगी होता है। इस प्रकार मनन में उपयोगी न्याय शास्त्र है। अत: मोक्ष में भी उपयोगी है। इस प्रकार मोक्ष पदार्थ ज्ञान का परम प्रयोजन है। वही पदार्थ ज्ञान न्यायशास्त्र में अच्छी प्रकार से होता है।

## गौतमीय न्याय

उसमें महर्षि गौतम ने सूत्र रूप में ग्रन्थ को रचा। (गौतम का अपर नाम अक्षपाद है) उसमें पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आहनिक हैं। मधुसूदन सरस्वती के मत में गौतम प्रणीत शास्त्र आन्वीक्षिकी है। वही अब न्याय शास्त्र के रूप में प्रचलित है। उसमें सोलह पदार्थ हैं। वे हैं- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव,

टिप्पणी

तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। इन पदार्थों की उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा करनी चाहिए। उसके द्वारा तत्व ज्ञान होता है। तथा तत्व ज्ञान होने पर मिथ्या ज्ञान नष्ट होता है। एवम् क्रमशः मोक्ष सिद्ध होता है।

**''न्यायमते मोक्षलाभप्रक्रिया किञ्चिदुपन्यस्यते।''**

शरीर, छः इन्द्रियाँ, छः विषय, छः बुद्धि, सुख और दुःख ये इक्कीस (21) गौण और मुख्य के भेद के भिन्न दुःख हैं और उनकी आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति अपवर्ग है।

'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः'- न्यायसूत्र। और आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, ये नौ आत्मा के विशेष गुणों का उच्छेद ही है।

**यावदात्मगुणाः सर्वे नेच्छिन्ना वासनादयः।**
**तावदात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्नावकल्प्यते॥**

**धर्माधर्मनिमित्तो हि सम्भवः सुखदुःखयोः।**
**मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मनः॥**

**तदुच्छेदे तु तत्काकर्यशरीरनुपलम्भनात्।**
**नात्मनः सुखदुःखे स्त इत्यासौ मुक्त उच्यते॥ (न्यायमञ्जरी)**

वह उपाय जन्म, दोष अपाय में तदनन्तर अपाय ''अपवर्ग दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायदपतवर्ग, इस सूत्र से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति, और मिथ्याज्ञान का अस्तित्व न होने पर आत्मा नहीं है, अनात्म शरीर में आत्मा नहीं है इत्यादि रूप है। इसके निवृत्ति के लिए ही 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' श्रुति द्वारा स्वात्म साक्षात्कार विधित है। यह ही, उससे अन्य नहीं, प्रतियोगी और अनुपयोगी द्वारा आत्मा ही तत्वतः ज्ञेय है, इस प्रकार से आत्मतत्व-विवेक में उक्त है। एवम् शरीरभिन्नत्व द्वारा आत्मज्ञान का और आत्मभिन्नत्व द्वारा शरीर ज्ञान का भी मोक्ष हेतुत्व सिद्ध है।

## काणाद वैशेषिक-

महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्र प्रणीत किया। (इस दर्शन का औलुक्य दर्शन, यह अपर अभिधान है।) उनके ग्रन्थ में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आहनिक हैं। उसमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, ये छः भाव पदार्थ और अभाव रूपी सप्त पदार्थ है। इस प्रकार संकलन द्वार वैशेषिक दर्शन में सप्त पदार्थ प्रतिपादित हैं। इन पदार्थों का साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान होता है फिर तत्वज्ञान होता है, ऐसा कणाद का अभिप्राय है। इस दर्शन में विशेष नामक कोई पदार्थ स्वीकार किया गया। अत एव इस दर्शन का नाम वैशेषिक दर्शन है। वैशेषिक के मत में जो सात ही पदार्थ हैं। वे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव है। उसमें द्रव्य नौ हैं। वे हैं- पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुण चौबीस हैं। और वे हैं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व,

स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार। कर्म पाँच होते हैं। और वे हैं- उत्क्षेपण, अपक्षेपण, अकुञ्चन, प्रसारण, गमन। सामान्य दो प्रकार को होता है। और वह पर और अपर है। विशेष अनन्त हैं। समवाय एक ही होता है। अभाव के चार भेद हैं। और वे हैं- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव।

## पाठगत प्रश्न 4.2

1. सभी शास्त्रों का उपकारक क्या है?

   (क) व्याकरण (ख) मीमांसा (ग) योग (घ) सांख्य

2. अक्षपाद कौन है?

   (क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) गौतम (घ) व्यास

3. न्याय मत में कितने पदार्थ है?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

4. कणाद के कितने पदार्थ हैं?

   (क) 5 (ख) 6 (ग) 7 (घ) 8

5. कणाद के मत में भाव पदार्थ कितने हैं?

   (क) 5 (ख) 6 (ग) 7 (घ) 8

6. विशेष नामक कोई पदार्थ है, ऐसा कौन स्वीकार करता है?

   (क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) गौतम (घ) व्यास

## 4.4 मीमांसा

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'। सम्पूर्ण वेद भी धर्म का मूल है। और वे वेद शब्दस्वरूप ही हैं। उन वेद-वाक्यों के तात्पर्य बोध के लिए मीमांसा दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। मीमांसा दर्शन ही वेदवाक्यों का तात्पर्य कहाँ और किस अर्थ में होता है, इसका प्रतिपादन करता है। अतएव मीमांसा दर्शन में भी वाक्यार्थ विचार प्रक्रिया वर्णित है। व्याकरण दर्शन का भी प्रादुर्भाव वेदों के रक्षण के लिए ही हुआ। अत एव व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन प्रसंग में कहा भी गया- रक्षोहागमलघ्वसन्देहा: प्रयोजनमिति। उन वेदों का तात्पर्यभूत अर्थ सप्रमाण एवं युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करने के लिए न्यायदर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। छ: भारतीय दर्शनों में साक्षात् वेद का आश्रय लेकर दो प्रकार के दर्शन प्रवृत्त हुए। वे हैं पूर्व मीमांसा और उत्तरमीमांसा। मीमांसा शब्द का अर्थ है पूजित विचार, विचारपूर्व तत्वनिर्णय। उत्तर

टिप्पणी

मीमांसा दर्शन वेदान्त नाम से और पूर्व मीमांसा दर्शन मीमांसा दर्शन नाम से पृथक है। इनके मध्य में मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डात्मक वेदभाग के विचार के लिए प्रवृत्त है। अर्थात् वेद के कर्मकाण्ड में विहित विषयों का जहाँ युक्ति द्वारा निर्णय होता है, और जहाँ वेदविहित विषयों में संशय होने पर समाधान प्राप्त होता है वही पूर्वमीमांसा दर्शन है। धर्म-जिज्ञासा ही उसमें मुख्य विषय है। उत्तरमीमांसा दर्शन ही वेदान्त दर्शन के रूप में प्रसिद्ध है। उसमें ज्ञानकाण्डीय विषयों का अर्थात् उपनिषद् में प्रतिपादित विषयों का विस्तारपूर्वक विचार प्राप्त होता है। ब्रह्म-जिज्ञासा ही उसमें मुख्य विषय है।

## 4.4.1 कर्म मीमांसा

मीमांसा पद से कर्ममीमांसा, शारीरिक मीमांसा, इन दो मीमांसाओं का बोध होता है। कर्ममीमांसा ही धर्म मीमांसा भी कहलाता है। कर्ममीमांसा को महर्षि जैमिनि ने रचा। उसका प्रथम सूत्र है- 'अथातो धर्मजिज्ञासा'। व्यास प्रणीत शारीरक मीमांसा में प्रथम सूत्र है- अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। इस प्रकार धर्ममीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, यह व्यवहार दोनों मीमांसाओं का होता है। कालक्रम द्वारा साम्प्रतिक मीमांसा का अर्थ कर्ममीमांसा, पूर्व मीमांसा ही ग्रहण करते हैं। ब्रह्म मीमांसा तो वेदान्त, ब्रह्मसूत्र इत्यादि कहे जाते हैं। जैमिनि मुनि द्वारा प्रणीत सोलह अध्याय हैं। उनमें प्रारम्भ के बारह अध्याय कर्म प्रतिपादित करते हैं। कर्म का ही कर्ममीमांसा में प्राधान्य होता है। अत: 'द्वादशाध्यायी' नाम प्रसिद्धि को प्राप्त हुई। अवशिष्ट चार अध्यायों में उपासना प्रतिपादित है। वह उपासना काण्ड कहलाता है। वह संकर्षण काण्ड, देवताकाण्ड भी कहा जाता है। उपासना भी कर्म ही है। अत: कर्म मीमांसा में ही देवताकाण्ड का भी अन्तर्भाव करते हैं।

जैमिनि के मत में यज्ञ आदि द्वारा स्वर्गलाभ ही परमपुरूषार्थ है। स्वर्ग कर्म द्वारा साधेय है। अत: कर्म प्रतिपादित है।

## 4.4.2 शारीरिक मीमांसा

यह शारीरिक मीमांसा, ब्रह्म मीमांसा, ब्रह्मसूत्र, उत्तर मीमांसा इत्यादि कहा जाता है। यह चतुरध्यायी शारीरिक-मीमांसा 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा', आदि, 'अनावृत्ति: शब्दाद्', अन्त जीवब्रह्मैकत्व के साक्षात्कार का हेतु श्रवणाख्यविचार के प्रतिपादक न्यायों का आवेदन कर भगवान बादरायण द्वारा किया गया। यहाँ यह अवधेय है कि वेदान्त के तीन प्रस्थान है। उन तीनों प्रस्थानों में शारीरक मीमांसा, अन्यतम है। और यह न्याय प्रस्थान अथवा युक्ति प्रस्थान कहा जाता है। श्रुतिप्रस्थान और स्मृतिप्रस्थान, ये दो प्रस्थान इससे भिन्न ही है।

जीव-ब्रह्म के ऐक्य के ज्ञान द्वारा मर्त्य का परम पुरूषार्थ मोक्ष सिद्ध होता है, इस मीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है। अत एव ब्रह्म, उसका लाभ, जीव, सृष्टि, ईश्वर, माया, बन्ध, मोक्ष, उसके साधन, समाधि इत्यादि विषय का यहाँ अन्तर्भाव होता है। शारीरक

मीमांसा में 555 सूत्र हैं। अद्वैत मत में 191 अधिकरण हैं। अध्यायों के नाम हैं। इसलिए कारिका-

**शास्त्रं ब्रह्मविचाराख्यमध्यायाः स्युश्चतुर्विधाः।**
**समन्वयाविरोधौ द्वौ साधनं फलं तथा॥**

| अध्याय | सूत्र संख्या | अधिकरण संख्या | अध्याय नाम |
|---|---|---|---|
| प्रथम | 134 | 39 | समन्वय |
| द्वितीय | 157 | 47 | अविरोध |
| तृतीय | 186 | 67 | साधन |
| चतुर्थ | 77 | 38 | फल |

इस मीमांसा का किस अध्याय में, किस पाद में, कौन-से विषय की आलोचना की गई है, यहाँ संक्षिप्त में प्रस्तुत है।

### प्रथम अध्याय-समन्वय

उत्तरमीमांसा में सभी वेदान्त वाक्यों का साक्षात् अथवा परम्परा का प्रत्यगभिन्न अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य, यह समन्वय प्रथम अध्याय द्वारा प्रदर्शित है। और वहाँ प्रथम पाद में स्पष्टब्रह्मलिंग युक्त वाक्य विचार किये जाते हैं। द्वितीय में तो अस्पष्टलिंग उपास्य ब्रह्म विज़य हैं। तृतीय पाद में अस्पष्ट ब्रह्मलिंग प्रायशः जानने योग्य ब्रह्मविषय हैं। एवं तीनों पादों में वाक्य विचार समाहित है। चतुर्थ पाद में तो प्रधान विषयत्व द्वारा संदिह्यमान अव्यक्ताज आदि पद चिन्तनीय हैं।

### द्वितीय अध्याय - अविरोध

एवम् वेदान्तों के अद्वय ब्रह्म के सिद्ध समन्वय में वहाँ संभावित स्मृति, तर्क आदि प्रयुक्त तर्कों द्वारा विरोध की आशंका और उसका परिहार किया, ऐसा अविरोध नामक द्वितीय अध्याय द्वारा दर्शित है। उसमें प्रथम पाद में सांख्य, योग, कणाद आदि स्मृतियों द्वारा सांख्य आदि के प्रयुक्त तर्कों द्वारा विरोध वेदान्त समन्वय का परिहार किया गया।

द्वितीय पाद में सांख्य आदि मतों का दुष्टत्व प्रतिपादित है। स्वपक्ष-स्थापन-परपक्ष-निवारण-रूप-द्वयात्मक पर्व का विचार। तृतीय पाद में महाभूत-सृष्टि आदि श्रुतियों का परस्पर विरोध और पूर्वभाग द्वारा परिहार। उत्तरभाग द्वारा जीव के विषयों का। चतुर्थ पाद में इन्द्रियविषय श्रुतियों के विरोध का परिहार।

### तृतीय अध्याय-साधन

तृतीय अध्याय में साधन का निरूपण है। उसमें प्रथम पाद में जीव का परलोक गमानागमन निरूपण द्वारा वैराग्य निरूपित है। द्वितीय पाद में पूर्वभाग द्वारा पदार्थ शोधित है। उत्तर

टिप्पणी

भाग द्वारा वह पदार्थ। तृतीय पाद में निर्गुण ब्रह्म में नाना शाखाओं में पठित पुनरूक्त पदों का उपसंहार किया गया है। और प्रसंग से सगुण-निर्गुण विद्याओं में शाखान्तरीय गुणों का उपसंहार और अनुपसंहार निरूपित है। चतुर्थ पाद में निर्गुण ब्रह्म विद्या के बहिरंग साधन आश्रम, यज्ञ आदि और अन्तरंग साधन शम, दम, निदिध्यासन आदि निरूपित है।

### चतुर्थ अध्याय - फल

चतुर्थ अध्याय में सगुण-निर्गुण विद्याओं के फल विशेष का निर्णय किया गया है। उसमें प्रथम पाद में श्रवण आदि वृत्ति द्वारा निर्गुण ब्रह्म साक्षात्कार करके जीव से पाप-पुण्यालेप लक्षणा जीवन्मुक्ति होती है। द्वितीय पाद में क्रियमाण (मनुष्य) के उत्क्रान्ति के प्रकार चिन्तित हैं। तृतीय पाद में सगुण ब्रह्मविद मृत्यु का उत्तरमार्ग अभिहित है। चतुर्थ पाद में पूर्वभाग द्वारा निर्गुण ब्रह्मविद ने विदेहकैवल्यप्राप्ति को कहा। उत्तर भाग द्वारा सगुण ब्रह्मविद ब्रह्मलोक की स्थिति को कहा गया है। यही सभी शास्त्रों का मूर्धन्य है। शास्त्र के अनन्तर सभी शेषभूत, यही मुमुक्षुओं द्वारा चरमत्व के द्वारा आदरणीय श्रीशंकर भगवान द्वारा पादोदित प्रकार से रहस्य को प्राप्त किया।

### वेदान्त दर्शन-

वेदान्त दर्शन जब कहते है तब ब्रह्मसूत्र, ब्रह्म मीमांसा, शारीरिक मीमांसा इत्यादि से एक ही प्रतिपादित है। तथापि वेदान्त दर्शन पद से आगे कहे गए सीमित अर्थ ही नहीं है। वेदान्त में द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, इत्यादि विविध दर्शन, ये सम्प्रदाय अन्तर्निहित हैं। उपनिषद् ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता, ये ग्रन्थ सामग्री भी वेदान्त कहलाता है। वही प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। उपनिषद् श्रुति प्रस्थान है। ब्रह्मसूत्र न्याय प्रस्थान (युक्ति प्रस्थान)। और गीता स्मृति प्रस्थान है। इन सभी ग्रन्थों के विपुल भाष्य और उनकी व्याख्यापरक-टीकाएं ये अनेक प्रकार से अनेक भाषाओं में ग्रन्थ रूप में हुए। प्रकरण ग्रन्थ भी विधि है। इस प्रकार ये समग्र विस्तृत वेदान्त पद व्याख्यात है, ऐसा अवधेय है। इनका परिचय यथा स्थान होगा। अतः यहाँ विस्तार के अधिकता से विराम किया गया।

## 4.5 धर्मशास्त्र

धर्मशास्त्र के चौदह (14) उपांग है। स्मृति, शास्त्र, इतिहास, सांख्या, योग इनका धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव है। वाल्मीकि मुनि द्वारा प्रणीत रामायण, भगवान व्यास द्वारा प्रणीत महाभारत इतिहास में अन्तर्निहित हैं। स्मृतिकार अनेक हुए। उनमें मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, सवर्त, शाल्तप, पराशर, गौतम, शंख लिखित हारीत, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, देवल, नारद्, पैठिनसि, ये 22 मुनि हैं जिनके स्मृति शास्त्र प्रसिद्ध हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं। वर्ण की सृष्टि स्वयं भगवान करते हैं। इसलिये गीता की उक्ति है – चातुर्वण्यं मया सृष्ट्य् गुण कर्म-विभागशः। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यास, ये चार आश्रम वयोविभाग द्वारा होते हैं। वर्णों और आश्रमों के आचार के नियम हैं। उन नियमों का अनुसरण करके वैदिक संस्कृति प्रवर्तित होती है। कुछ तत्व काल द्वारा परिवर्तित होते है। अतः उन-उन कालों में कौन सा आचार साधना चाहिए, इसका बोध करने के लिए तब तब स्मृतिकारों ने स्मृति लिखी। कुछ तत्व काल द्वारा परिवर्तित नहीं होते हैं। उस विषय में मतभेद अथवा परिवर्तन का प्रयोजन ही नहीं है।

## पाठगत प्रश्न 4.3

1. मनु ने किसे धर्ममूल कहा?

   (क) वेद (ख) न्याय (ग) काव्य (घ) युक्ति

2. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन सा दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

3. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) पूर्व मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

4. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) उत्तर मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

5. जैमिनि द्वारा कितने अध्याय प्रणीत है?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

6. कर्ममीमांसा में कितने अध्याय हैं?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

7. जैमिनिप्रणीत द्वितीय काण्ड का नाम क्या है?

   (क) कर्मकाण्ड (ख) ज्ञानकाण्ड (ग) देवताकाण्ड (घ) न्यायकाण्ड

8. जैमिनिप्रणीत द्वितीयकाण्ड का यह नाम नहीं है।

   (क) कर्मकाण्ड (ख) उपासनाकाण्ड (ग) देवताकाण्ड (घ) संघर्षकाण्ड

9. जैमिनि के मत में परम पुरूषार्थ क्या है?

   (क) मोक्ष (ख) धर्म (ग) मृत्यु (घ) स्वर्ग

टिप्पणी

10. शारीरिक मीमांसा को किसने प्रणीत किया?

(क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) बादरायण (घ) कपिल

11. शारीरिक मीमांसा का अपर नाम क्या है?

(क) उत्तरमीमांसा (ख) पूर्वमीमांसा (ग) कर्ममीमांसा (घ) धर्ममीमांसा

12. शारीरिक मीमांसा का अपर नाम क्या है?

(क) ब्रह्मसूत्र (ख) पूर्वमीमांसा (ग) कर्ममीमांसा (घ) धर्ममीमांसा

13. शारीरिक मीमांसा में कितने अध्याय है?

(क) 1 (ख) 2 (ग) 3 (घ) 4

14. शारीरिक मीमांसा में कितने सूत्र हैं?

(क) 3992 (ख) 400 (ग) 550 (घ) 555

15. शारीरिक मीमांसा में प्रथम अध्याय का नाम क्या है?

(क) समन्वय (ख) अविरोध (ग) साधन (घ) फल

16. रामायण के चौदह विद्याओं में कौन अन्तर्भाव है?

(क) ब्राह्मण में (ख) कल्प में (ग) अर्थशास्त्र में (घ) धर्मशास्त्र में

17. महाभारत के चौदह विद्याओं में कौन अन्तर्भाव है?

(क) ब्राह्मण में (ख) कल्प में (ग) अर्थशास्त्र में (घ) धर्मशास्त्र में

**उपवेद-**

अट्ठारह विद्या स्थान है। उसमें प्रथम चार वेद है, वहाँ से छः अंग निरूपित है। उसके पश्चात् पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, ये चार उपांग निरूपित हैं। अब उपवेद निरूपित करते हैं। और वे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र, ये चार उपवेद निरूपित करते हैं।

ऋग्वेद का उपवेद ही आयुर्वेद है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद ही है। इसका अन्य नाम राजविद्या भी है। सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद ही है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थशास्त्र ही है। अर्थशास्त्र को अर्थवेद भी कहते हैं।

## 4.6.1 आयुर्वेद

ब्रह्म प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, धन्वन्तरी, भारद्वाज, आत्रेय, अग्निवेश्य, इत्यादि द्वारा

आयुर्वेद का उपदेश किया गया। उसका ही संक्षेप चरक द्वारा किया गया। चरक के मत में आयुर्वेद के सूत्र, शरीर, ऐन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विज्ञान, विकल्प और सिद्धि, ये आठ स्थान होते हैं। सुश्रत-वाग्भट्ट के मत में सूत्र, शरीर, निदान, चिकित्सा और कल्प, ये पाँच अंग प्रतिपादित हैं।

आयुर्वेद के आठ अंग होते हैं। वे हैं- 1) काय चिकित्सा, 2) कौमारभृत्य/बालचिकित्सा, 3) ग्रहचिकित्सा/भूतिवद्या, 4) ऊर्ध्वांग चिकित्सा/ शलाक्य चिकित्सा, 5) शल्यचिकित्सा, 6) दंष्ट्र चिकित्सा, 7) वृष चिकित्सा/ वाष्पीकरण, 8) जरा चिकित्सा/सुश्रुत के द्वारा कामशास्त्र का वाजीकरण, यह नाम किया गया। और कामशास्त्र भी प्रतिपादित किया गया। अतः कामशास्त्र का अन्तर्भाव आयुर्वेद में होता है। वात्स्यायन मुनि ने कामशास्त्र को विस्तारपूर्वक लिखा। उसमें पाँच अध्याय हैं। शास्त्रोक्त प्रकार से विषय भोग में करने वाले कार्य भी दुःख उत्पन्न करते ही है, ऐसा कामशास्त्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। अतः जिस किसी मार्ग द्वारा विषम-वैराग्य ही उत्पन्न होता ही है, ऐसा कामशास्त्र का अभिमत है। अत एव विषय वैराग्य ही इसका प्रयोजन है। रोग, उसके कारण, रोग निवृत्ति, आरोग्य-साधन, इनका ज्ञान चिकित्सा शास्त्र का प्रयोजन है।

## 4.6.2 धनुर्वेद

धनुर्वेद विश्वामित्र द्वारा प्रणीत पाद चतुष्टयात्मक है। उसमें प्रथम दीक्षा पाद है। द्वितीय संग्रहपाद है। तृतीय सिद्धिपाद है, चतुर्थ प्रयोगपाद हैं। उसमें प्रथम पाद में धनुर्लक्षण और अधिकारी-निरूपण किया गया है। यहाँ धनु शब्द रूढ होकर धनु-विधायुध में प्रवर्तित होता है। और वह आयुध चार प्रकार का है- मुक्तममुक्त, मुक्तामुक्त, यन्त्रमुक्त, मुक्तचक्र आदि। अमुक्त खड्ग आदि। मुक्तामुक्त शल्य अवान्तर भेद आदि। यन्त्रमुक्त शर आदि। वह मुक्त अस्त्र को कहते हैं। अमुक्त शस्त्र को कहते है। वह भी ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य, अग्नेय आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। एवं साधिदैवत, समन्त्रक चार प्रकार के आयुधों में जिनका अधिकार क्षत्रिय कुमारों तथा उनके अनुयायियों का है, वे सभी चार प्रकार के हैं, पदाति-रथ-तुरग पर आरूढ़ होते हैं। दीक्षा, अभिषेक, शकुन, मंगल, करण आदि सभी प्रथम पाद में निरूपित हैं। द्वितीय पाद में सभी शस्त्र विशेष के आचार्य का और लक्षण पूर्वक संग्रहण के प्रकारों को दिखाया गया है। तृतीय पाद में गुरू सम्प्रदाय में सिद्धों के शस्त्र विशेष का पुनः-पुनः अभ्यास, मन्त्र-देवता, सिद्धिकरण भी निरूपित है। एवं देवतार्चन के अभ्यास द्वारा सिद्धों के अस्त्र विशेषों का प्रयोग चतुर्थपाद में निरूपण है। क्षत्रियों के स्वधर्म आचरण, युद्ध, दुष्ट और चोर आदि को दण्ड, और प्रजा पालन धनुर्वेद का प्रयोजन है। इस प्रकार ब्रह्म प्रजापति आदि के क्रम से विश्वमित्र प्रणीत धनुर्वेद शास्त्र है।

टिप्पणी

## 4.6.3 गान्धर्ववेद

गीत, वाद्य, नृत्य इत्यादि मनोरञ्जन के अनेक उपाय हैं। इनका उपयोग देवता की आराधना में और निविर्कल्प समाधि में हो, इस बुद्धि से ये शास्त्र आचार्य/मुनि भरत द्वारा प्रणीत है। वह ही इसका मुख्य प्रयोजन है। इसलिए मधुसूदन सरस्वती ने कहा-देवताराध ननिर्विकल्प समाध्यादिसिद्धिश्च गान्धर्ववेदस्य प्रयोजनम्। इसमें संगीतशास्त्र के तत्व व्याख्यात हैं।

## 4.6.4 अर्थशास्त्र

इस प्रकार के अर्थशास्त्र बहुत हैं। नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्र और चौसठ कलाशास्त्र नाना मुनियों द्वारा प्रणीत और उन सभी के लौकिकवत् प्रयोजन भेद द्रष्टव्य हैं। एवम् अट्ठारह विद्याएँ त्रयी शब्द द्वारा कही गई। अन्यथा न्यूनता के प्रसंग के कारण। नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्र (पाकशास्त्र) और चौसठ कलाशास्त्र अर्थशास्त्र के विविध प्रकार हैं।

### पाठगत प्रश्न 4.4

1. ऋग्वेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

2. यजुर्वेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

3. सामवेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

4. आयुर्वेद किसका उपवेद है?

   (क) ऋग्वेद का (ख) यजुर्वेद का (ग) सामवेद का (घ) अथर्ववेद का

5. यह आयुर्वेद के आचार्य है?

   (क) चरक (ख) विश्वमित्र (ग) भरतमुनि (घ) वशिष्ठ

6. यह धनुर्वेद के प्रणेता हैं?

   (क) चरक (ख) विश्वमित्र (ग) भरतमुनि (घ) वशिष्ठ

7. चरक मत के द्वारा आयुर्वेद के कितने स्थान हैं?

(क) 3 (ख) 4 (ग) 7 (घ) 8

8. आयुर्वेद के कितने अंग हैं?

(क) 3 (ख) 4 (ग) 7 (घ) 8

9. कामशास्त्र का अन्तर्भाव कहाँ होता है?

(क) आयुर्वेद में (ख) गान्धर्ववेद में(ग) कल्प में (घ) तन्त्रशास्त्र में

10. कामशास्त्र के प्रणेता कौन हैं?

(क) वात्स्यायन (ख) वाग्भट्ट (ग) सुश्रुत (घ) चरक

11. कामशास्त्र का प्रयोजन क्या है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) वैराग्य

12. विश्वामित्र प्रणीत धनुर्वेद के तृतीय अध्याय का नाम क्या है?

(क) दीक्षापाद (ख) संग्रहपाद (ग) सिद्धिपाद (घ) प्रयोगपाद

13. शर आदि किस प्रकार के आयुध है?

(क) मुक्त (ख) अमुक्त (ग) मुक्तामुक्त (घ) यन्त्रमुक्त

14. गान्धर्ववेद का मुख्य प्रयोजन क्या है?

(क) मनोरञ्जन (ख) गीत (ग) नृत्य (घ) निविकल्पक समाधि-सिद्धि

## 4.7 सांख्य और योग

### 4.7.1 सांख्य

सांख्य और योग की पृथक दर्शन के रूप में गणना होती है। महर्षि कपिल सांख्यशास्त्र के प्रणेता हैं। उन्होंने 527 सांख्यसूत्रों की रचना की। उसमें 6 अध्याय हैं। उसमें प्रथम अध्याय में विषय निरूपित हैं। द्वितीय अध्याय में प्रधान कार्य। तृतीय अध्याय में विषयों से वैराग्य। चतुर्थ अध्याय में विरक्त पिंगलाकुरवादियों की आख्यायिकाएँ। पञ्चम अध्याय में परपक्षनिर्णय है। षष्ठ में सभी का अर्थ संक्षेप है।

त्रिविध दु:खों की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक निवृत्ति ही मोक्ष रूपी पुरूषार्थ है, ऐसा सांख्य का अभ्युपगम है। प्रकृति-पुरूष के विवेकज्ञान के द्वारा पुरूषार्थ सिद्धि होती है,

टिप्पणी

उसी प्रकृति-पुरूष का विवेकज्ञान सांख्यशास्त्र का प्रयोजन है।

दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति का अर्थ है कि जिस दु:ख के नाश होने के पश्चात् पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, वह आत्यन्तिक निवृत्ति है। दु:ख का नाश निश्चय ही होता है, वह ऐकान्तिक निवृत्ति है। दु:ख आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इस भेद से तीन प्रकार का है।

सांख्यदर्शन में पच्चीस तत्व प्रपञ्चित हैं। एवं पच्चीस संख्या के साथ सम्बन्ध होने के कारण इस शास्त्र का नाम सांख्य है, ऐसा कुछ मानते हैं। और महाभारत में उक्त है-

**संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।**
**तत्वनि च चतुर्विंशत् तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥**

और वे पच्चीस (25) तत्व हैं- पुरूष, प्रकृति, महत, अहंकार, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, ये पाँच तन्मात्राएँ, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी, ये पाँच महाभूत, श्रोत-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन।

## 4.7.2 योग

महर्षि पतञ्जलि द्वारा सूत्र रूप में प्रणीत योगशास्त्र है। उसमें समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद, ये चार पाद हैं। और 195 सूत्र हैं।

सांख्य में जो तत्व हैं, वे ही योगशास्त्र में भी हैं। सांख्य ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं। योग स्वीकार करते हैं। एवं 26 तत्व हैं। अत: योग सेश्वर सांख्य है, यह भी प्रचलित है। योगाभ्यास द्वारा कैवल्य लाभ, यह योग का मुख्य प्रयोजन है। विजातीय प्रत्यय निरोध द्वार से निदिध्यासन की सिद्धि और उससे कैवल्यलाभ होता है।

योगशास्त्र में 'अथ योगानुशासनम्' प्रथम सूत्र है। वहाँ प्रथम पाद में चित्तवृत्तिनिरोधात्मक समाधि अभ्यास-वैराग्य रूप और उसके साधन निरूपित हैं। द्वितीय पाद में विक्षिप्तचित्त की भी समाधि सिद्धि के लिए चित्तवृत्तिनिरोधात्मक यम-नियम-आसन-प्राणायम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि, ये आठ अंग निरूपित हैं। तृतीय पाद में योग विभूति और चतुर्थ पाद में कैवल्य है।

### पाठगत प्रश्न 4.4

1. सांख्य सूत्र कितने हैं?
   (क) 555 (ख) 605 (ग) 3000 (घ) 527
2. सांख्य शास्त्र में कितने अध्याय हैं?
   (क) 4 (ख) 5 (ग) 6 (घ) 7

3. सांख्य के कितने तत्व हैं?

(क) 16 (ख) 24 (ग) 25 (घ) 26

4. योगशास्त्र में कितने अध्याय हैं?

(क) 4 (ख) 5 (ग) 6 (घ) 7

5. योगसूत्र कितने हैं?

(क) 155 (ख) 195 (ग) 300 (घ) 527

6. योगशास्त्र के कितने तत्व हैं?

(क) 16 (ख) 24 (ग) 25 (घ) 26

7. योगशास्त्र में है परन्तु सांख्य शास्त्र में नहीं है, वह यह तत्व है।

(क) पुरूष (ख) ईश्वर (ग) प्रकृति (घ) महत्

8. योगशास्त्र के चतुर्थ अध्याय का नाम क्या है?

(क) समाधि (ख) साधन (ग) विभूति (घ) कैवल्य

## 4.8 निगम-आगम तन्त्र

'तनु विस्तारे', 'त्रैङ् पालने', इन दो धातुओं के योग से तन्त्र शब्द की निष्पति हुई ऐसा कामिकागम तन्त्र का मत है। 'तनु विस्तारे' धातु ष्ट्रन् प्रत्यय के योग द्वारा तन्त्र शब्द की निष्पत्ति को भी अनेक द्वारा स्वीकार किया जाता है। तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्। अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा ज्ञान का विस्तार होता है, वह शास्त्र तन्त्र है। तन्त्र शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ भी होता है।

**तनोति विपुलान् अर्थान् तन्त्रमन्त्रसमन्वितान्।**
**त्रणं च कुरूते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥**

सरलार्थ- तन्त्र समन्वित, मन्त्र समन्वित विपुल अर्थ-विषयों को चुनता है, विस्तार देता है और रक्षण भी करता है। अतः तन्त्र, ऐसा कहते हैं। 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदयनिः श्रेयोपायाः स आगमः' ऐसा वाचस्पति मिश्र द्वारा योगभाष्य में आगम पद का अर्थ प्रकट किया गया है।

### तन्त्र का विभाजन

तन्त्र के वैपुल्य और वैविध्य के कारण विभाजन के अनेक प्रकार हैं। अतः विविध प्रकारों को यहाँ संक्षेप से कहा गया है।

टिप्पणी

## मुख्य विभाग

ब्राह्मण तन्त्र, बौद्धतन्त्र, जैनतन्त्र, ये तन्त्र के तीन प्रकार हैं। यह भारतीय तन्त्रों का समावेशात्मक विभाग है। उसमें बौद्धों का तन्त्र वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान, इस भेद से तीन प्रकार का है।

## ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-1

ब्राह्मण तन्त्र में उपास्य देवता के भेद से तीन भेद हैं। वे हैं- 1) वैष्णवागम (पाञ्चरात्र) 2) शैवागम और 3) शाक्तागम।

वैष्णव आगम में विष्णु, शैव आगम में शिव और शाक्त आगम में शक्ति, ये परा देवता उपासित हैं।

## ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-2

प्रकारान्तर से तन्त्रशास्त्र प्रधान रूप से तीन प्रकार का है- 1) आगम 2) यामल 3) तन्त्र।

### 1) आगम

उसमें निगम-आगम का विभाजन किया जाता है। जहाँ पार्वती प्रश्नों को पूछती है, भगवान् शिव उत्तर देते हैं वह तन्त्र आगम कहा जाता है। जहाँ शिव प्रश्न पूछते और पार्वती उत्तर देती हैं, वह तन्त्र निगम कहलाता है। इसलिए कारिका है-

**आगतं च शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजाश्रुतौ।**
**मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते॥**

आगम लक्षण उसी प्रकार-

**सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनम्।**
**साधनञ्चैव सर्वेषां पुरश्चरणेव च॥**

**षट्कर्मसाधनञ्चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।**
**सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः॥**

सरलार्थ- वाराही तन्त्र में आगम के सात लक्षण उक्त हैं। वे हैं- 1) सृष्टि, 2) प्रलय, 3) देर्वाचन, 4) सर्वसाधन, 5) पुरश्चरण, 6) षट्कर्मसाधन, 7) ध्यानयोग। और यह ध्यानयोग चार प्रकार का होता है।

### 2) यामल-

**सृष्टिश्च ज्यौतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम्।**
**क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च।**
**युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम्॥**

सरलार्थ- यामल के आठ लक्षण है- 1) सृष्टि, 2) ज्योतिषाख्यान, 3) नित्यकृत्प्रदीपन, 4) क्रमसूत्र, 5) वर्णभेद, 6) जातिभेद, 7) युगधर्म, 8) यमला नामक कामसिद्धाम्वा, उसके प्रतिपादित तन्त्र यामल-अष्ट हैं। उनके गण यामलाष्टक है। यामल छः हैं - 1) आदित्ययामल, 2) ब्रह्मयामल, 3) विष्णुयामल, 4) रूद्रयामल, 5) गणेशयामल, 6) आदित्ययामल।

### ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-3

तन्त्र को ही आगम भी कहते है। कुछ वैष्णव, शैव वाङ्मय आगम पद से व्यपदिष्ट है, शाक्त, बौद्ध और जैन का वाङ्मय तन्त्र पद से व्यपदिष्ट है। कुछ निगम पद से वेद को जानते है। निगम में सिद्धान्त पक्ष और आगम में व्यवहार पक्ष प्रमुख होते हैं। अर्थात् जो तत्व निगम में प्रतिपादित है उसके लाभ के लिए साधना आगम में उपदिष्ट है। वेद विशेषतः वेदान्त ज्ञानात्मक, आगम क्रियात्मक वेद के ज्ञानुकूल होता है।

### ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-4

भूक्षेत्र के भेद से भी तन्त्र का विभाग परिलक्षित होता है। यथा विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता, अश्वक्रान्ता और गजक्रान्ता। प्रत्येक क्षेत्र में 64 तन्त्र हैं।

### ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-5

दार्शनिक सिद्धान्त के भेद से तन्त्र का भिन्न प्रकार से भी विभाग हो सकता है। यथा-अद्वैत प्रधान, द्वैत प्रधान और द्वैताद्वैत प्रधान ये तीन प्रकार। रामानुज के मत द्वारा पाञ्चरात्र विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक है। शैवागम में तीन मत मिले हुए हैं। शाक्त आगम में अद्वैत ही प्रतिपादित है।

### ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-6

प्रकारान्तर से तन्त्र के दो विभाग किये जाते हैं- 1) वेदानुकूल तन्त्र 2) वेदबाह्यय तन्त्र पाञ्चरात्र और शैवागम के अनेक सिद्धान्त वेद से उद्भूत एवं वेद के अनुकूल हैं। शाक्तों के सात आचार हैं। उन सात आचारों में वामाचार वेदबाह्य होता है। अन्य आचार वेद सम्मत ही है। वेदबाह्य तन्त्रों में आचार, पूजापद्धति इत्यादि वेद से भिन्न होती है।

### शाक्तों का आचार

शाक्त मत में पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव, से तीन भाव होते हैं। और आचार सात है। वे हैं- वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। भावः यहाँ मनस से विशिष्ट स्थिति है और आचार भावप्रभावित बाह्य आचरण है।

### ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-7

श्रीकण्ठ पाशुपत मत के आदि प्रवर्तक है। वहाँ 28 योगाचार्य हुए। उनमें अन्तिम योगाचार्य

टिप्पणी

लकुलीश हैं। श्रीकण्ठ और लकुलीश, इन दोनों के द्वारा पाशुपत मत प्रवर्तित हुआ, ऐसा प्रायः प्रचार है। उसमें श्रीकण्ठ के चार भेद से भिन्न विशिष्टाद्वैत है - 1) शुद्धाद्वैत, 2) सेश्वराद्वैत, 3) शिवाद्वैत (विशेषाद्वैत/वीरशैव मत), 4) रसेश्वरमत। उसका अन्तर्भाव कहे गए द्वैताद्वैत रौद्रागम में होता है। द्वैत के दो दर्शन, द्वैताद्वैत के चार, अद्वैत के चार, इस प्रकार शैवागम के दश दर्शन हैं।

अद्वैतवादियों के चार दर्शन हैं - नन्दिकेश्वर द्वारा प्रतिपादित दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, क्रमदर्शन और कुलदर्शन।

## ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-8

### माहेश्वर सम्प्रदाय

महेश्वर द्वारा प्रणीत सिद्धान्तों के अनुयायी होने से - शैव, पाशुपत, कारूणिक सिद्धान्ती (कालामुख) और कापालिक है, ऐसा वाचस्पति मिश्र ने भामती में कहा। शैव का सम्बन्ध ब्राह्मण के साथ, पाशुपत का सम्बन्ध क्षत्रिय के साथ, कालमुख का सम्बन्ध वैश्य के साथ और कापालिक का सम्बन्ध शूद्र के साथ, इस प्रकार चारों भेदों का वर्ण के साथ सम्बन्ध है, ऐसा वामनपुराण में है। (6.86.91) यहाँ शैव पद से द्वैतवादियों के शैवों का ग्रहण करते हैं। आगम शास्त्रों में शैवागम के तीन भेद कहे गए हैं। वे है- 1) द्वैतवादी शैवागम, 2) द्वैताद्वैतवादी शैद्रागम, 3) अद्वैतवादी भैरवामन। द्वैतवादियों की आगम संख्या दस, रौद्रागम की संख्या अट्ठारह, भैरवागम की संख्या अट्ठाईस प्रमाण्य को स्वीकार करते हैं।

## पञ्चरात्र

### पञ्चरात्र शब्द का अर्थ

पञ्च रात्रियों का समाहार पञ्चरात्र है। उसका यह मत पाञ्चरात्र है। शाण्डिल, औपगायन, मौञ्जायन, कौशिक, भारद्वाज, ऐसे पाँच योगियों द्वारा तोत-आद्र दुष्कर तप किया गया। उन पर प्रसन्न भगवान् वासुदेव ने पाँच रात्रियों तक उन्हें उपदेशित किया। अतः उनका मत पाञ्चरात्र कहलाता है। इसका आविर्भाव महाभारत के समय में हुआ।

**सार्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना।**
**रात्रिभिः पञ्चभि सर्वं पाञ्चरात्रमिति स्मृतम्॥ (मार्कण्डेयसंहिता)**

महाभारत में पाञ्चरात्र का अतिविस्तृत रूप प्रतिपादित है। इसका ही श्लोक-

**एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च।**
**परस्परांगान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते॥**
**(महाभारत, शान्ति. 349.81.82)**

इसके अनुसार सांख्य, योग, वेद, आरण्यक, पञ्चरात्र, ये परस्पर अंग हैं।

पाञ्चरात्र में ब्रह्म सात प्रकार के जन्म लेते हैं। इसीलिए-

**ब्रह्मणो मानं जन्म प्रथमं चाक्षुषं स्मृतम्।**
**द्वितीय वाचिकं चान्यच्चतुर्थं श्रोत्रसम्भवम्॥**
**नासिक्यमपरं चान्यदण्डजं पंकजं तथा। (पारमेश्वर संहिता 1.39-39)**

यहाँ कहे गये पंकज का जन्म होता है। तब नारायण, ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, आदित्य, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, ये पाञ्चरात्र के सम्प्रदाय का क्रम है। इसका उल्लेख गीता में भी प्राप्त होता है।

**इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानमहव्ययम्।**
**विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गीता 4.1)**

**सरलार्थ**- यह अव्यय योग मेरे द्वारा पूर्व में विवस्वत में कहा गया। विवस्वान् मनु को कहा गया। मनु ने इक्ष्वाकु को कहा। अत एव गीता पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, ऐसा कह सकते हैं। इसके लिए ही पाञ्चरात्र का विस्तार यहाँ अधिक किया गया है।

### चातूरूप्यम्

भगवान् वासुदेव के चार रूप हैं। वे हैं- 1) पर, 2) व्यूह, 3) विभव, 4) अर्चा। कुछ अन्तर्यामी, यह पञ्चम् रूप भी ग्रहण करते है। इन रूपों के नाम हैं। यथा- पर वासुदेव, व्यूह संकर्षण, विभव प्रद्युम्न, अर्चा अनिरूद्ध। जो वैष्णव नारद आदि द्वारा किया गया पाञ्चरात्र है उसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध चार पदार्थ निरूपित हैं। भगवान् वासुदेव सर्व कारण परमेश्वर है। उनसे संकर्षण आदि जीव उत्पन्न होते हैं। उनसे मन रूप प्रद्युम्न। उनसे अनिरूद्ध रूप अहंकार। और सभी भगवान् वासुदेव के ही अंशभूत हैं। उससे भिन्न यह भगवान वासुदेव की मन-वाक्-शरीर वृत्तियों द्वारा आराधना करके कृत्याकृत्य होता है, ऐसा निरूपित है।

### विशिष्टाद्वैत

पाञ्चरात्र के कुछ सिद्धान्तों को लेकर प्रवर्तित शास्त्र विशिष्टाद्वैत है।

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा (श्वे. उ. 1.12), इस श्रुति प्रमाण से विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तीन तत्व स्वीकार किये जाते हैं। जीव चित्त, जगत् अचित, और चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर, ये तीन तत्व हैं। उसमें शेष द्वारा चित्-अचित् तत्वों का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा चित् अचित् तत्वों का अपृथग्भाव सम्बन्ध (अंग अंगिभाव) होता है। यह तत्व-त्रय भी सत्य रूप है। चित् अचित् विशिष्ट ईश्वर एक ही है, ऐसा विशिष्टाद्वैत मत कहता है।

### पाशुपत-

मधुसूदन सरस्वती महोदय ने प्रस्तानभेद हैं, ऐसा अपने द्वारा रचित ग्रन्थ में पाशुपत मत

टिप्पणी

के विषय में इस प्रकार लिखा – 'पशुपतिमतं पाशुपतं शास्त्रं पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणाय-अथातः पाशुपतं योगविधिं व्याख्यास्यामः' इत्यादि पाँच अध्यायों की रचना की। उन पाँच अध्यायों द्वारा कार्यरूप जीव को पशु और कारण पति को ईश्वर माना है। योग पशु और पति में चित्त का समाधान रूप है। विधि भस्म द्वारा त्रिषवण, स्नान आदि निरूपण है तथा प्रयोजन दुःखान्त संज्ञा मोक्ष है। इसीलिए कार्यकारण योगविधि-दुःखान्ता ऐसी व्याख्या करते हैं।

## 4.9 सृष्टि-विचार के भेद से दर्शन भेद

सभी दर्शनों के संक्षिप्त रूप में तीन ही भेद है, ऐसा प्रकारान्तर द्वारा कहा जा सकता है। उसमें आरम्भवाद एक है। परिणाम वाद द्वितीय है। विवर्तवाद तृतीय है। पृथिवी, आप (जल), तेज, वायु के चार प्रकार के परमाणु द्वयणुक के क्रम से ब्रह्माण्ड पर्यन्त संसार का आरम्भ होता है। असत् ही कार्यकारक व्यापार से उत्पन्न हुआ, ऐसा प्रथम तार्किकों का मत है। मीमांसकों का मत है कि सत्व, रजस्, तमो गुणात्मक प्रधान ही महत्, अहंकार आदि के क्रम से जगद् के रूप में परिणत होता है। सांख्य, योग-पातञ्जल और पाशुपत का द्वितीय पक्ष यह है कि पूर्व में ही सदैव विद्यमान सूक्ष्म रूप में कार्य कारण रूप में व्यापार द्वारा अभिव्यक्त हुआ। ब्रह्म का परिणाम जगत् है, ऐसा वैष्णवों का मत है। स्वप्रकाशित, परमानन्द, अद्वितीय ब्रह्म अपनी माया के कारण मिथ्या रूप में ही जगत् के आकार से कल्पित है, ऐसा ब्रह्मवादियों का तृतीय पक्ष है। सभी प्रस्थानकर्ता मुनियों का तात्पर्य है कि विवर्तवाद के पर्यवसान द्वारा ही अद्वितीय परमेश्वर का प्रतिपादन होता है। उनके सर्वज्ञ होने के कारण वे मुनि भ्रान्त अथवा भ्रमित नहीं होते। किन्तु बाह्य विषयों से लिप्त मनुष्यों का पुरूषार्थों में प्रवेश संभव नहीं होता। अतः नास्तिकों के वारण के लिए उनके द्वारा प्रकार भेद प्रदर्शित किये गए हैं। वहाँ उनका तात्पर्य न जानकर वेद विरोधी तात्पर्य की उपेक्षा करने वाले अनेक पथों को ग्रहण करके एक लक्ष्य को प्राप्त करने वाले होते हैं, ऐसा सभी का मत है।

### पाठगत प्रश्न 4.5

1. तन्त्र के मुख्य विभागों को लिखिए।
2. बौद्ध तन्त्र के मुख्य विभागों को लिखिए।
3. उपास्य देवता के भेद से तन्त्र भेदों को लिखिए।
4. भूक्षेत्र के भेद से तन्त्र विभागों को लिखिए।
5. शाक्तों के कितने और कौन से भाव हैं?
6. शाक्तों के कितने और कौन से आचार हैं?

7. पाञ्चरात्र के मत द्वारा वासुदेव के चार रूपों को लिखिए।

8. सृष्टि-विषय में कितने और कौन से वाद हैं?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-4.1

1. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
   वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

2. (घ) 3. (ग)

4. (क) 5. (क)

### उत्तर-4.2

1. (क) 2. (ग)

3. (ग) 4. (ग)

5. (ख) 6. (ख)

### उत्तर-4.3

1. (क) 2. (क)

3. (क) 4. (क)

5. (ग) 6. (क)

7. (ग) 8. (क)

9. (घ) 10. (ग)

11. (क) 12. (क)

13. (घ) 14. (घ)

15. (क) 16. (घ)

17. (घ)

### उत्तर-4.4

1. (क) 2. (ख)

टिप्पणी

3. (ग) 4. (क)

5. (क) 6. (ख)

7. (घ) 8. (घ)

9. (क) 10. (क)

11. (घ) 12. (ग)

13. (घ) 14. (घ)

**उत्तर-4.5**

1. (घ) 2. (ग)

3. (ग) 4. (क)

5. (ख) 6. (घ)

7. (ख) 8. (घ)

**उत्तर-4.5**

1. ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र, जैनतन्त्र, ये तन्त्र के मुख्य तीन प्रकार हैं।
2. बौद्धों का तन्त्र वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान, इस भेद द्वारा तीन प्रकार का है।
3. उपास्य देवता के भेद से तन्त्र के तीन भेद हैं। वे हैं- 1) वैष्णवागम (पाञ्चरात्र), 2) शैवागम, 3) शाक्तागम। वैष्णवागम में विष्णु, शैवागम में शिव, शाक्तागम में शक्ति, ये परा देवता उपासित हैं।
4. भूक्षेत्र के भेद से तन्त्र विभाग है, यथा- विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता, और अश्वक्रान्ता (गजक्रान्ता)। प्रत्येक क्षेत्र में 64 तन्त्र हैं।
5. शाक्त मत में पशुभाव, वीरभाव और दिव्य भाव, ये तीन भाव हैं।
6. शाक्तमत में आचार सात हैं। वे हैं- वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार।
7. पाञ्चरात्र मत में भगवान् वासुदेव के चार रूप हैं। वे हैं- 1) पर 2) व्यूह 3) विभव 4) अर्चा। कोई अन्तर्यामी को पञ्चम रूप ग्रहण करता है। इन रूपों के नाम है। यथा पर-वासुदेव, व्यूह-संकर्षण, विभव-प्रद्युम्न, अर्चा-अनिरूद्ध है।
8. सृष्टि के विषय में तीन वाद हैं। वे हैं- आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद।

**।।चतुर्थ पाठ समाप्त।।**

टिप्पणी

# 5

# प्रस्थानत्रयी में श्रुतिप्रस्थान

## प्रस्तावना

जिसके द्वारा ले जाया जाता है, वह प्रस्थान है। प्रत्येक दर्शन किसी पर अथवा किसी की प्रतिष्ठा होती है। वेदान्त दर्शन में जिनकी भी प्रतिष्ठा होती है वे प्रत्येक प्रस्थान शब्द द्वारा जाने जाते हैं। और वे हैं श्रुति, स्मृति, और न्याय। तथा सभी की 'प्रस्थानत्रय' यह संज्ञा है। ये ही वेदान्त दर्शन की भित्तिभूत हैं।

श्रुति निश्चिय ही वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा का आरम्भ है। किन्तु उपनिषद् में उक्त विषयों का बोध सरलता से नहीं होता है। उससे उत्पन्न अर्थों को ज्ञान में भ्रान्ति होगी, इसका निश्चय करके उनके सार के उन्मोचन के लिए, और शास्त्र के रक्षण के लिए अन्य ग्रन्थ रचे गए। उनमें महाभारत में भीष्मपर्व में उद्धृत श्रीमद्भगवद्गीता तथा महर्षि बादरायण प्रणीत वेदान्तसूत्र प्रमुख रूप से प्रमाणभूत हैं। एवं श्रुति प्रस्थान के द्वारा ईश आदि उपनिषद्, स्मृति प्रस्थान से श्रीमद्भगवद्गीता और न्याय प्रस्थान के द्वारा वेदान्तसूत्र अथवा शारीरक सूत्र विद्वानों द्वारा स्वीकृत हैं।

ये सभी वेदान्तशास्त्र में प्रमाण हैं। किन्तु उसमें परम प्रमाण भूति श्रुति, और तत्पश्चात् प्रमाणभूत न्याय है। यदि इनका परस्पर कोई विरोध होता है तब श्रुति ही प्रमाण है।

यहाँ यह जानने योग्य है कि केवल गीता ही स्मृति नहीं है। किन्तु वेदान्त प्रतिपादित तत्व पुराण आदि में जहाँ जहाँ उपलब्ध होते है, वे सभी ही स्मृति रूप प्रमाण हैं। इसी प्रकार उपनिषद् को ही केवल श्रुति रूप में ग्रहण नहीं किया गया। समग्र वेद में जहाँ जहाँ वेदान्त प्रतिपादक वाक्य हैं वे सभी श्रुतिप्रमाण के रूप में स्वीकृत है, ऐसी वेदान्त परम्परा है। किन्तु न्याय प्रस्थान के रूप में शारीरिक सूत्र ही स्वीकार किया जाता है।

टिप्पणी

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- प्रस्थान के विषय में जान पाने में;
- श्रुति क्या है, यह जान पाने में;
- उपनिषद् शब्द का अर्थ जान पाने में;
- उपनिषद्-प्राप्ति कहाँ होती है, यह जान पाने में;
- उपनिषद् और वेदान्त शब्द का क्या सम्बन्ध है, जान पाने में;
- उपनिषद् का संक्षिप्त रूप में परिचय कर पाने में।

**श्रुतिप्रस्थान**

## 5.1 श्रुति

श्रुति ही वेद है। वेद के पर्याय शब्दों में श्रुति ही अन्यतम है। 'श्रूयते अनया' यह व्युत्पत्ति है। तेन श्रवणार्थक श्रु धातु के क्तिन् प्रत्यय में 'श्रुति', यह पद उपलब्ध होता है। वेद दो प्रकार से विभाजित है- कर्मकाण्डात्मक और ज्ञानकाण्डात्मक। ज्ञानकाण्ड ही उत्तर मीमांसा का विषय है। भाट्ट आदि के मत में पूर्व मीमांसा का विषय तो कर्म है। ईश आदि उपनिषद् का ज्ञानकाण्ड में अन्तर्भाव होता है।

## 5.2 उपनिषद्

उपनिषद् का नाम ब्रह्मविद्या है। उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु का क्विप् प्रत्यय में उपनिषद् यह स्त्रीलिंन्न रूप प्राप्त होता है। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु यह पाणिनीय धातु पाठ की उक्ति है। उसके द्वारा सद् के तीन अर्थ प्राप्त होते हैं। उससे इस प्रकार 'उपनिषद्' इस शब्द के धातु के तीन अर्थ होते हैं-

1) **विशरण** - विशरण का अर्थ विनाश अथवा हिंसा है। उसके अनुसार मुमुक्षु जिस विद्या को उप अर्थात् समीप जाकर उसमें निष्ठा से परायण होकर, नि अर्थात् निश्चयपूर्वक उसका परिशीलन करता है, उसके द्वारा जो विद्या उसके अविद्या आदि संसार रूपी बीज को नष्ट करती है, यह अर्थ है।

2) **गति** - मुमुक्षु जिस विद्या को 'उप' अर्थात् उसके समीप जाकर उसमें निष्ठा से परायण होकर 'नि' अर्थात् निश्चयपूर्वक उसका परिशीलन करता है, उसके द्वारा जो विद्या उस परं ब्रह्म तक जाती है, 'ब्रह्म विद्या तक जाती है', ऐसा अर्थ है।

3) **अवसादन**- समीप गया हुआ मुमुक्षु निश्चय पूर्वक जो विद्या गर्भवास, जन्म, जरा, मरण आदि उपद्रव रूप संसार चक्र को शिथिल करता है, यह अर्थ है।

यहाँ जो अर्थ स्वीकार किये गए हैं वे निश्चय ही श्रीभगवत्पाद शंकराचार्य के द्वारा कठोपनिषद् की भाष्य भूमिका में आलोचित हैं। इसीलिए भाष्य- 'ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविष्यवितृष्णाः सन्तः उपनिषच्छब्दवाच्यां वक्ष्यमाणलक्षणां विद्यामुपसद्य उपगम्य त्तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणात् हिंसनात् विनाशमादित्यनेनार्थयोगेन विद्योपनिषदित्युच्यते'।

## 5.3 उपनिषद् का वेदान्तत्व

उपनिषद् वेदान्त शब्द द्वारा भी अभिहित है। किसी भी प्रकार के प्रश्न में वेदान्त शब्द का ज्ञान आदि में आवश्यक होता है। उसमें वेदान्त नाम यद्यपि न्यायसूत्र, गीता आदि सभी परम्परा में ग्रहण होता है तथापि उपनिषद् विशेषतः वेदान्त शब्द से अभिहित होता है। इसीलिए वेद का अन्त अर्थात् वेदान्त। उसके द्वारा मन में ऐसा ज्ञान उदित होता हैं तो वेद के अन्तिम में उपनिषद को प्राप्त करते हैं। नहीं, यद्यपि प्रायः वेदों के अन्त में ही उपनिषद् प्राप्त होते हैं, तथापि उसका यह अर्थ नहीं होता है। यहाँ अन्त शब्द का अर्थ रहस्य, ऐसा ज्ञेय है। वेद का अन्त रहस्य है, उससे यह अर्थ प्राप्त होता है। वेद के रहस्य का सार यहाँ गृहीत है, ऐसा आशय है। उपनिषद् निश्चय ही वेद के सारभूत हैं। उपनिषद् में ही उपनिषद् शब्द द्वारा रहस्य को जानें, यह विहित है। इसीलिए केनोपनिषद् में चतुर्थ खण्ड में उपनिषद् शब्द रहस्य विद्या के अर्थ में प्रयुक्त है-

**उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति॥ (केन. 4/7)**

अब यह आया की कभी वेद के अन्तिम भाग में, कभी मध्य भाग में वेद के सारभूत उपनिषद् प्राप्त होते हैं। वस्तुतः प्रायः आरण्यक अथवा ब्राह्मण पर उपनिषद् प्राप्त होता है। कभी संहिता पर भी। उसमें मुक्तिकोपनिषद् में 108 संख्याओं के उपनिषदों का परिचय प्राप्त है। उसके अनुसार प्रत्येक वेद और उपनिषद् की संख्या-

- ऋग्वेद पर दस (10) उपनिषद्
- शुक्लयजुर्वेद पर उन्नीस (19) उपनिषद्
- कृष्ण यजुर्वेद पर बत्तीस (32) उपनिषद्
- सामवेद पर सोलह (16) उपनिषद्
- अथर्ववेद पर इक्कत्तीस (31) उपनिषद्

इन्हें छोड़कर भी उपनिषद् बहुत हैं। किन्तु उनका सम्प्रदाय में वैसा स्थान नहीं है। उन निश्चित उपनिषदों का विशेष देवता आश्रय होने के कारण उत्तर मीमांसा में अन्तर्भाव नहीं होता। किसी के अर्वाचीन होने के कारण सम्प्रदाय में स्थान नहीं है।

यहाँ केवल दस के मुख्यत्व को सम्प्रदाय में स्वीकार किया जाता है। कुछ ग्यारह को भी करते हैं। वे हैं-

1. ईशोपनिषत्
2. कोनोपनिषत्
3. कठोपनिषत्
4. प्रश्नोपनिषत्
5. मुण्डकोपनिषत्
6. माण्डूक्योपनिषद्
7. तैत्तिरीयोपनिषत्
8. ऐतेरेयोपनिषत्
9. छान्दोग्योपनिषत्
10. बृहदारण्यकोपनिषत्

और वहाँ संग्रह श्लोक है-

**ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।**
**ऐतरेय च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥**

कुछ श्वेताश्वतरोपनिषद् और कौषीतक्युपनिषद्, इनका भी यद्यपि प्रमाण कोटि में अन्तर्भाव करते हैं तथापि उनके मुख्यत्व को स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार के विभाग में शंकर भगवत्पाद ही मान्य हैं। उपर्युक्त उपनिषदों पर आचार्य द्वारा भाष्य किये गए है। उनके विषयागाम्भीर्य आदि कारण से ही उसका वेदान्त सम्प्रदाय में ग्रहण होता है। उस से वे सम्प्रदाय में दस ही मुख्य रूप से स्वीकार किये जाते हैं।

कुछ श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य को भी भगवत्पाद की कृति कहते हैं। कौषीतक्युपनिषद् तो आचार्य द्वारा वहाँ वहाँ श्रुतिप्रमाण के रूप से स्वीकार किया गया है। मैत्रायणी आदि का भी उसमें कुछ के मत में अन्तर्भाव है।

यहाँ नीचे प्रकोष्ठ में मुख्य दस उपनिषद् किस वेद पर प्राप्त हैं, ऐसा कहते हैं-

| **उपनिषद्** | **वेद** |
|---|---|
| ईशोपनिषद् | शुक्ल यजुर्वेद |
| केनोपनिषद् | सामवेद |
| कठोपनिषद् | कृष्ण यजुर्वेद |
| प्रश्नोपनिषद् | अथर्ववेद |
| मुण्डकोपनिषद् | अथर्ववेद |
| माण्डूक्योपनिषद् | अथर्ववेद |
| तैत्तिरीयोपनिषद् | कृष्ण यजुर्वेद |
| ऐतरेयोपनिषद् | ऋग्वेद |
| छान्दोग्योपनिषद् | सामवेद |
| बृहदारण्यकोपनिषद् | शुक्ल यजुर्वेद |

कुछ गद्य, पद्य के भेद से उपनिषद् के नामभेद हैं आरण्यकोपनिषद् और मन्त्रोपनिषद्।

## पाठगत प्रश्न 5.1

1. प्रस्थान नाम क्या है?
2. प्रस्थान क्या हैं? नाम बताइए।
3. श्रीमद्भगवद्गीता प्राप्त होता है-

   (क) शान्तिपर्व में (ख) भीष्म पर्व में (ग) अनुशासन पर्व में
4. वेदांत सूत्र के प्रणेता कौन हैं?
5. प्रस्थानत्रयी में स्मृति न्याय से प्रबल है। यह सत्य है अथवा नहीं?
6. उपनिषद् शब्द का प्रकृति-प्रत्यय निरूपणपूर्वक अर्थ बताइए।
7. वेदांत शब्द का अर्थ संक्षिप्त रूप में लिखिए।
8. उपनिषद् कितने हैं? उसमें मुख्य कितने हैं?
9. मुख्योपनिषद् का मुख्यत्व कौन मानता है?
10. मुख्योपनिषद् के सङ्ग्रहश्लोक को लिखिए।
11. पद्यात्मकोपनिषद् संज्ञा क्या है?
12. कठोपनिषद्-

    (क) ऋग्वेदीय (ख) सामवेदीय (ग) यजुर्वेदीय

### उपनिषद् - परिचय

वेदान्त का विषय निश्चय ही जीव-ब्रह्म का ऐक्य है जो शुद्धचैतन्य है। उपनिषद् वेदान्त होने के कारण समान ही विषय है। उपनिषद् उसी का प्रतिपादन करते हैं।

सभी उपनिषदों का परिचय इस प्रकार से किया गया-

- किस वेद में उपनिषद् का अन्त र्भाव हो।
- नाम-वैशिष्टय
- गद्यात्मक और पद्यात्मक तथा अध्याय आदि विवेचन।
- संक्षेप से मुख्य विषय का ज्ञान

टिप्पणी

## 5.4 ईशोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिन शाखा की संहिता में निश्चिय ही चालीस (40) अध्याय हैं। उसमें अन्तिम अध्याय ही ईशोपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य द्वारा कठ शाखा के अनुसार पाठ का भाष्य विरचित है। शाखा के भेद से यहाँ-वहाँ पाठभेद दिखतें हैं।

### 5.4.1 नामकरण

यह उपनिषद् 'ईशा वास्यमिदं सर्वम्' इस आदिमन्त्र द्वारा आरम्भ होता है, उसके कारण इसका ईशावास्योपनिषद्, यह अभिधेय है। शुक्ल यजुर्वेद का अपर नाम वाजसनेयी-संहिता, अतः इस उपनिषद् का भी नाम वाजसनेय- संहितोपनिषद् है। केवल संहितोपनिषद्, मन्त्रोपनिषद् भी कुछ लोग कहते हैं।

### 5.4.2 रीति और अध्याय आदि

यह उपनिषद् पद्यात्मक है। एक ही अध्याय है। और अट्ठारह मन्त्र हैं।

### 5.4.3 विषय

इस उपनिषद् में ईश का निर्मातृत्व आदि गुण कहा गया है। आत्मा का स्वयं प्रकाशन ही यहाँ विषय को ग्रहण किये हुए है। यहाँ कहते हैं- हे मनुष्य! यह सब अनित्य है, उस सत् ईश्वर के द्वारा व्याप्त है। अनित्यों के त्याग से ही आत्मा प्राप्त होती है। किसी के धन की आकांक्षा होती है। अर्थात् धन की आकांक्षा मत करो। सब उस ईश्वर का ही है, उसके कारण है, उसकी ही इच्छा करो, उसके द्वारा ही सब व्याप्त है तथा फल प्राप्त होता है, ऐसा आशय है। यहाँ निवृत्ति-मार्ग गामियों के लिए उपदेश है। निवृत्ति सन्यास तथा समस्त कर्मो से उपरति है। उसके कारण मन्त्र है-

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥ (ईश. 1)**

जो सौ वर्ष जीने की इच्छा करते है।, उनके द्वारा कर्म करना ही चाहिए। कर्म नहीं करने वाला निश्चय ही कर्मलेपहीन होता है। वेदान्त में ही पाप-पुण्य वर्जनीय है। दोनों ही संचारचक्र और पतन का कारण होने से छर्दि के समान हेय है। उससे यदि तुम प्रवृत्ति भाग में संसार को भेदन करने की इच्छा रखते हो तो ईश्वर के शरण को छोड़कर विषयों से निर्लिप्त रहने का कोई साधन नहीं है। यहाँ साधक प्रवृत्ति मार्गी संसारी गृहस्थ है।

वे जो अपने अजानन् शरीर को त्यागते है, वे सभी असुर्या लोक में जाते हैं। असुर्य,

यह परमात्मा के अभाव के कारण सभी देव आदि के समस्त लोक असुर्य हैं। वे सभी लोक अन्धकार से आवृत हैं। इसीलिए-

**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।**
**तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चाऽऽत्महनो जनाः॥ (ईश. 3)**

अब आत्मदर्शी के विषय में कहते हैं कि जो पुरूष सर्वत्र, अन्दर और बाहर आत्म को देखता है वह किसी को जुगुप्सनीय, निन्दनीय अथवा घृणा के योग्य नहीं मानता। तब सभी भूत उस पुरूष के आत्म रूप ही होता है। ब्रह्म निश्चय ही निरञ्जन (क्लेश रहित), अपापविद्ध, सभी दुःख से रहित, आनन्द स्वरूप है। अतः उस पुरूष के मोह अथवा शोक नहीं होता है। वह सर्वत्र आत्मा को ही देखता है। इसीलिए-

**यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवभूद्विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ (ईश. 7)**

वह ब्रह्म स्वप्रकाशकत्व, सर्वव्यापित्व, सर्वज्ञत्व, सर्वनियन्तृत्व आदि गुणों से अन्वित है। प्रजापति आदि के कर्म उसके द्वारा ही विहित है। उसके कारण केवल कर्म में रत रहने वाला अन्धकार में जाता है, और देवता आदि के ज्ञान का अवलम्बन करके जो रहते हैं वे तो और गहन अन्धकार में जाते हैं।

उसी प्रकार एक अन्य मन्त्र है। जिसमें कहते हैं सत्य स्वरूप आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म (पुरूष) स्वर्णिम ज्योतिर्मय पात्र से आवृत (ढका) है। अब पूषन के समक्ष प्रार्थना है की है पूषन् (सूर्य)! उस पात्र को हटा दें जिससे मुझे ब्रह्म की उपलब्धि हो। इसीलिए -

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**
**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ (ईश. 15)**

## 5.5 केनोपनिषत्

सामवेद की जैमिनीय शाखा, तलवकार ब्राह्मण पर प्राप्त उपनिषद् यह 'केन' नाम वाला है।

### 5.5.1 नामकरण

तवलकार ब्राह्मण में इसके अन्तर्भाव के कारण तवलकार उपनिषद् भी अभिधा है। इसमें 'केन केन' आरम्भ में बहुत बार पाठ होने से इस उपनिषद् को 'केन' कहा गया।

टिप्पणी

## 5.5.2 रीति और अध्याय

यह गद्यपद्यात्मक है। इसमें 'खण्ड' नामक अध्याय है। उसके द्वारा यहाँ चार खण्ड प्रस्तुत हैं। उसमें प्रथम और द्वितीय खण्ड पद्यात्मक है। तथा तृतीय और चतुर्थ खण्ड गद्यात्मक है।

## 5.5.3 विषय

यहाँ प्रथम-द्वितीय खण्डों में गुरू-शिष्य के संवाद के माध्यम से आत्मा का उपदेश दिया गया है। शिष्य उस समय तक अपने प्रश्नों को गुरू के समीप स्थापित करता है की किससे हमारे द्वारा सभी कार्य किया जाता है, किसके द्वारा हम इस संसार में आए, ये इन्द्रियाँ किसके द्वारा अपने कर्मों में संलग्न रहती हैं। गुरू तो सत्यनिष्ठ शिष्य के अज्ञान को दूर करता है कि वह श्रोत्र का श्रोत्र, मन का भी मन, सभी इन्द्रियों का वह ही इन्द्र है। जो उसे जानता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है। इसीलिए-

**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मन यद्**
**वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।**
**चक्षुषश्चचक्षुरतिमुच्य धीराः**
**प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन 1/2)**

शिष्य का पुनः प्रश्न होता है की इन्द्रिय का अविषय है वह ज्ञानविषयी कैसे होगा? अब गुरू कहते हैं कि वह ब्रह्म निश्चित रूप से ज्ञान-अज्ञान के विषय से भिन्न है। वाणी, मन, चक्षु, अथवा सभी इन्द्रियों द्वारा जो विषयी नहीं होता है, वही वह ब्रह्म है। तो 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इस श्रुति में प्रकाश शील का ही प्रकाश में हेतुत्व कैसे होता है? स्वयं को कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता, ऐसे वक्तव्य में सूर्य के आत्म प्रकाश में प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। यहाँ गुरू द्वारा शिष्य को आत्मतत्व का ज्ञान दिया जाता है। जीव-ब्रह्म के ऐक्य में ही वेदान्त का तात्पर्य है।

अब शिष्य के ज्ञान के परिपाक के लिए गुरू वाद करते हैं कि यदि तुम्हारे द्वारा माना जाता है कि वह ब्रह्म तुम्हारे द्वारा ज्ञात है तो वह तुम्हारा भ्रम है, तुम्हारे द्वारा अल्प ही ज्ञात है। अतः अभी ब्रह्म तुम्हारे द्वारा विचारणीय है।

और क्या कहते हैं कि यदि आत्मज्ञान इस जन्म में होता है तब महान लाभ है। नहीं तो पतन निश्चित है। इसीलिए आत्मज्ञान के अभाव में जीव पुनः-पुनः संसार में अवतरित होता है, जरा (बुढ़ापा), व्याधि (रोग), भय आदि दुःख सहता है, आनन्द-प्राप्ति को छोड़कर शोक युक्त नहीं हो सकता है। उसके लिए गुरू मुख से श्रुति का उपदेश है-

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति**
**न चेदिहावेदन्महती विनष्टिः।**

**भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः**
**प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन 2/5)**

यहाँ तृतीय और चतुर्थ अध्याय में आख्यान मुख द्वारा श्रुति का उपदेश दिया जाता है। एवं आख्यान है- कभी देव और असुर संग्राम हुआ। देवता विजयी हुए। वस्तुतः सर्वकारणात्मक ब्रह्म के हेतुत्व से ही उनकी विजय हुई तथापि वे मोहान्वित थे इसीलिए हम विजयी हुए, ऐसा मानते हैं। तब निराकार आत्मा भी देवताओं के ज्ञान-प्रविधि के लिए साकार हुआ।

पूज्य यक्ष रूप को धारण किए ब्रह्म को देखकर देवताओं ने अग्नि को कहा- हे जातवेद! क्या सम्यक् रूप से इस यक्ष को जाने? अब वैसा हो, यह कहकर अग्नि गया। अग्नि को देखकर उस यक्ष ने कहा 'कौन है?' अग्नि ने भी स्वयं का परिचय दिया। ब्रह्म ने 'तुम्हारा क्या सामर्थ्य है', ऐसा कहा। अग्नि ने, संसार में सब कुछ जला सकता हूँ, ऐसा कहा। तब ब्रह्म ने एक तृण स्वीकार करके 'यह जलाओ', ऐसा कहा। वह अग्नि सभी शक्ति के द्वारा भी तृण को नहीं जला सका। उसने देवताओं को आकर कहा कि यज्ञ को नहीं जान सका।

अब वायु को भेजा गया। वायु भी यक्ष द्वारा उसी प्रकार से पूछा गया। और उसने कहा कि पृथिवी पर मैं सब कुछ ग्रहण कर सकता हूँ। पूर्ववत् इस तृण को ग्रहण कर दो। किन्तु वह भी असमर्थ हुआ। और निराश होकर आया। तब इन्द्र को भेजा गया। इन्द्र के जाने पर तो (यज्ञ) अचानक तिरोहित हो गया। अब उसे जानने के लिए ध्यानमग्न इन्द्र ने आकाश में स्त्री रूप को देखा। उसने निश्चित ही उमा रूद्रपत्नी हेमवती एवं ब्रह्म को धारण किया। वह उमा ही ब्रह्म-विद्या है। अब इन्द्र ने उससे पूछा, उसके ही वचन से उसने (इन्द्र ने) ब्रह्म को जाना। यहाँ आशय है कि गुरू के समीप बैठे बिना ज्ञान का उन्मेष नहीं होता है।

## 5.6 कठोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा पर प्राप्त होता है।

### 5.6.1 नामकरण

कठ शाखा में पढ़ने से इसका नाम कठ है। सम्प्रदाय में काठकोपनिषद् भी कहते है।

### 5.6.2 रीति और अध्याय

यह पद्यात्मिका है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में तीन वल्ली है।

टिप्पणी

## 5.6.3 विषय

कठोपनिषद् में आख्यायिकामुख द्वारा ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। आख्यायिका का विषय ही ब्रह्मविद्या स्तुति है। 'आख्यायिका ब्रह्मविद्यास्तुत्यर्था' यह श्लोक भगवत्पाद ने कठोपनिषद् के भाष्य में कहा।

कभी वाजश्रवस् ने विश्वजित नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ में सभी (वस्तुएँ) दक्षिणा रूप में देने योग्य होती हैं। उनका पुत्र नचिकेता था। और वह कुमार था। वाजश्रवा द्वारा जीर्ण (वृद्ध) गायें दक्षिणा रूप में दी जा रही हैं, ऐसा देखकर नचिकेता ने विचार किया कि अधम दक्षिणा के दान द्वारा पिता से पाप होगा। और उससे उसमें (पिता में) श्रद्धा व्याप्त है। अब उस श्रद्धावान् ने पिता को कहा 'पिता! मुझे किसको देंगे?', बालक का वचन है, ऐसा मानकर जब वाजश्रवा ने कर्ण नहीं दिया (अर्थात् अनसुना कर दिया) तब नचिकेता ने बार-बार अपने वाक्य का आवर्तन किया। अब क्रोधित होकर उन्होंने कहा कि 'तुम्हें मृत्यु को देता हूँ।' तभी सहसा 'मेरे द्वारा यह क्या कहा गया', वाजश्रवस खिन्न मन से संवृत हुआ। किन्तु श्रद्धावान् नचिकेता ने चिन्तन किया कि मैं तो शिष्य परिषद् में अनेक उत्तम अथवा मध्यम छात्रों में नहीं हूँ, मैं अधम हूँ। उसके कारण मुझे ही दक्षिणा के रूप में देते हैं, उसमें विशेष क्या है।

अत: उसने कहा कि पिता आप सत्य का पान करें, चिन्ता न करें। उस प्रकार नचिकेता यम के गृह गया।

यम-गृह में तब यम नहीं था। और वहाँ वह तीन रात तक आवास के बाहर बैठा। अब घर में यम के आने पर गृहपरिषद् में उसके द्वारा सब ज्ञात हुआ। अतिथि ने प्रतीक्षा किया है और वो भी ब्राह्मण। घर में अप्राप्त आहार से युक्त अतिथि साक्षात् अग्नि के समान होता है और उसके सभी पुण्य आदि को हर लेता है। इसके कारण उनके द्वारा नचिकेता पाद आदि द्वारा पूजा गया। तत्पश्चात् प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने कहा- हे नचिकेता यहाँ पर तीन रात्रियों तक बिना खाये आप बैठे रहे, उस प्रकार प्रत्येक रात्रि एक-एक वर की इच्छा करे। अब नचिकेता ने प्रथम वर माँगा- मैं यहाँ आया, पिता निश्चय उत्कण्ठित हैं। उसके कारण उनकी शान्ति जैसे थी वैसे हो, और भी आपके पास से गमन के कारण प्रेत लोक से जाता हूँ, अत: मुझे पूर्व के समान ही जानें, ऐसा करता है। यम ने सन्तुष्ट होकर इप्सित वर दिया।

तत्पश्चात् उसने द्वितीय वर की इच्छा की- स्वर्गलोक में मृत्यु नहीं है। पिपासा आदि दु:ख भी नहीं है। इस कारण हे यम! आप उस स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधन अग्नि को कहें। तब यम ने अग्निविद्या की शिक्षा नचिकेता को दी। जिसके द्वारा यह उत्तम शिष्य है, ऐसा जानकर प्रसन्न मृत्यु (यम) ने एक अधिक वर दिया। और उन्होंने विविध रत्नों वाली एक माला नचिकेता को समर्पित करके कहा अब से जो अग्नि उन्हें उपदिष्ट है, वह तुम्हारे नाम से होगी। उसका 'नचिकेतस' यह नाम लोक में माना जाएगा।

टिप्पणी



अब तृतीय वर माँगता है कि मनुष्य में आत्मा है, इस विषय में कुछ कहते है 'आत्मा' है, और कुछ कहते हैं ''नहीं है''। इस विषय में जो विद्या होती है, उसको मुझे कहें। मृत्यु ने कहा- यह विषय देवताओं द्वारा भी पूछा गया। किन्तु यह सरलता से जानने योग्य नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म (विषय है)। उस कारण हे नचिकेता अन्य वर माँगो। यह आकाङक्ष्य नहीं है।

नचिकेता ने श्रद्धापूर्वक उस ही प्रश्न को पुनः पूछा है। महत का लाभ सरलता से नहीं होता है। इन्द्रिय के परिपूरक बुरे विषय इसमें विद्यामान होते हैं। किन्तु ब्रह्मविद्या विवेक, वैराग्य आदि से हीन अधिकारी में प्रतिष्ठित नहीं होनी चाहिए। उस कारण से यम भूमि, धन, नारी, पुत्र, पौत्र, शत वर्षीय जीवन आदि प्रलोभन नचिकेता के समक्ष रखकर विचार करते है। किन्तु नचिकता फिर भी अपने वचन पर ही प्रतिष्ठित रहा। वह निश्चय ही उन अनित्यों का धर्म जानता है। उसी कारण से ही -

**श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्**
**सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।**
**अपि सर्वं जीवितमल्पमेव**
**तवैव वाहास्तव नृत्यीते॥ (कठ 1/1/26)**

एवम् कसौटी के पत्थर द्वारा जिस प्रकार स्वर्ण का यथार्थ परिज्ञात होता है उसी प्रकार नचिकेता की भी विद्याधारण करने की पटुता को जानकर मृत्यु (यम) ने उसे ब्रह्मविद्या बताई।

इस उपनिषद् में बहुत से ब्रह्मतत्व प्रतिष्पाठक मन्त्र हैं। तभी ज्ञान के लिए क्रमशः उदाहरण दिये गए है- उसमें रथ रूपक कल्पनात्मक मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार जीवात्मा ही रथी अर्थात् रथस्वामी है, शरीर तो रथ है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम अथवा प्रग्रह है, उसमें इन्द्रियाँ अश्व हैं तथा इन्द्रिय के विषय गमन का मार्ग है, ऐसी कल्पना की गई है। उसके द्वारा शरीर, इन्द्रिय, मन के साथ आत्मा ही मनीषियों द्वारा संसारी कही जाती है। उसके द्वारा केवल आत्मा का भोक्तृत्व निराकृत है। आमत्व-प्राप्ति कैसे हो तो रथी यदि सत्पुरूष हो तो सम्भव है नहीं तो दुष्ट रथी द्वारा आत्मा की प्राप्ति कपोल कल्पित ही है। उसमें ही मन्त्र हैं-

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रमेव च॥**
**इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।**
**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥**
**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥**

**यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ (कठ 1/3/36)**

टिप्पणी

## 5.7 प्रश्नोपनिषद्

अथर्ववेद की पैप्पालाद शाखा पर यह उपनिषद् प्राप्त होता है।

### 5.7.1 नामकरण

इसमें गुरू के समीप प्रश्न को समक्ष रख ब्रह्मविद्या विहित है। अध्यायों का नाम भी प्रश्न है, उससे ही यह प्रश्नोपनिषद् है।

### 5.7.2 रीति और अध्याय

यह गद्यात्मक है। तथापि यहाँ बहुलता से गद्य होते हैं, मध्य-मध्य में कुछ पद्य है। यहाँ छः संख्यक प्रश्न नाम अध्या हैं।

### 5.7.3 विषय

कभी भारद्वाज पुत्र सुकेशा, शिबिपुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्रीय सौर्य्यायणी, अश्वल पुत्र कौसल्य, भृगुवंशीय वैदर्भि और कत्य पुत्र कबन्धी जो ब्रह्मजिज्ञासु और समित्पाणि (समिति से युक्त हाथ वाले) थे, महर्षि पिप्पलाद के पास गए। उनको देखकर एक वर्ष में ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और तप से स्थिति होने के लिए उपदेश दिया। वहाँ से गत वर्ष में वे पुनः आए।

कबन्धी ने कहा- हे भगवान्, ये प्रजाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं? तब पिप्पलाद ने प्रजापति के सर्जन को कहा। तथा सृष्टि आदि विषय को बताकर चन्द्र आदि लोक के गमन के सामर्थ्य को कहा।

अब वैदर्भि ने पूछा- भगवान् कौन से देवता प्रजा के शरीरों को धारण करते हैं, और कौन वरिष्ठ है? तब पिप्पलाद ने आकाश आदि में देवत्व के आरोप द्वारा उन्हें उपदेश दिया। वहाँ पर उपदेश के क्रम से प्राण वरिष्ठ है, ऐसा आया। इसीलिए सभी प्राण पर आश्रित हैं। वहाँ प्रदर्शित है कि यथा चक्र के बीच में अराएँ चक्र धारण श्लाका के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं।

तब बुद्धिमान कौसल्य ने विचार करके प्राण का अनित्यत्व पूछा- भगवन् प्राण कहाँ से उत्पन्न होते है? तथा उनके द्वारा प्राण के कार्य आदि की भी जिज्ञासा हुई। तब पिप्पलाद सन्तुष्ट होकर आत्मा से प्राण का जन्म है, इत्यादि विषय को उपदिष्ट किया। उनके द्वारा पाँच प्रकार के प्राणों का वर्णन भी किया गया। तथा मुख्य प्राण एक ही है तथा कार्यभेद से पाँच है। वे हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। प्राण सामने के मुख से गमन करने वाला नासिकाग्रवर्ती है। अपान आवागमन करने वाला पायु आदि

टिप्पणी



स्थानवर्ती है। व्यान सर्वत्र गमन करने वाला सम्पूर्ण शरीरवर्ती है। उदान कण्ठ स्थानीय ऊर्ध्वगमन करने वाला उत्क्रमण वायु है। और समान शरीर के मध्य में आशित, पीत, अन्न आदि को सन्तुलित करने वाली वायु है। इस प्रकार अनित्य संसार की आलोचना हुई। अब सौर्य्यायणी प्रश्न से परविद्या के साधन आदि को कहते है। तत्पश्चात् सत्यकाम द्वारा प्रणव (ओंकार) के साधन को पूछा गया। पिप्पलाद द्वारा पर-अपर ब्रह्म के प्रणवत्व का प्रतिस्थापन प्रस्तुत करके प्रणव की व्याख्या की गई। एवम् अन्त में सुकेशा ने कहा कि कौसलदेशीय राजकुमार द्वारा वह पूछा गया था कि वह षोडशकल पुरूष को जानता है अथवा नहीं। तब न जानने पर उसे राजपुत्र द्वारा भेजा गया। अब भगवन् पुरूष इनमें कौन है, यह प्रश्न है।

अब पिप्पलाद पुरूष को बताते हैं। पुर अर्थात् शरीर में जो शयन करता है, वह पुरूष है। उस कारण से पुरूष इस देहाकाश में ही विराजता है। वह ही आत्मा है। वहाँ प्राणी आदि का पुरूष में ही लय होता है। वे नाम रूप में ही स्पष्ट होते हैं, पुरूष ही विराजता है। जो पुरूष को जानता है वह मृत्यु को पार कर लेता है। ''तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्येऽयनाय'' (श्वेताश्वतर 3/8) इत्यादि श्रुति में है। इसी कारण विहित है-

**अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन प्रतिष्ठिताः।**
**तं वेद्यं पुरूषं वेद यथा मा वो मृत्यु परिण्यथा इति॥ (प्रश्न. 6/6)**

इस उपनिषद् में आदि में आत्म भिन्न पदार्थ को बताकर और उनके अपवाद रूप में आत्मतत्व को प्रतिष्ठापित करता है।

## 5.8 मुण्डकोपनिषद्

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है।

### 5.8.1 नामकरण

'मुण्डक' अभिधा के द्वारा अध्याय के विभक्त होने के कारण इसका यह नाम हुआ।

### 5.8.2 रीति और अध्याय आदि

यह पद्यात्मक उपनिषद् है। मुण्डक नाम से तीन अध्याय विराजमान हैं। प्रत्येक मुण्डक में दो खण्ड हैं।

### 5.8.3 विषय

यहाँ ब्रह्मविद्या की परम्परा निर्देशित है। इसलिए ब्रह्मा ने आदि में अथर्वण को विद्या

टिप्पणी

का उपदेश दिया। अथर्व ने अङ्गिरा को, अङ्गिरा ने भारद्वाज सत्यवह को और सत्यवह ने अङ्गिरस को उपदेश दिया। इसमें परा-अपरा विद्या का संकलन होता है। इसलिए-

तत्रपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। (मुण्डक 1/1/5)

इस उपनिषद में बहुत से विषय काल से विचार पथ पर मनीषियों के होते हैं। बहुश्रुत मन्त्र भी यहाँ प्राप्त होते हैं। यथा-सत्यमेव जयते। उसका सम्पूर्ण शरीर वैसे-

**सत्यमेव जयते नानृतं**
**सत्येन पन्था विततो देवयानः।**
**येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा**
**यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।। (मुण्डक 3/1/6)**

इसके तृतीय मुण्डक प्रथम खण्ड में एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षी वर्णित है। उनमें से एक स्वादिष्ट फल को खाता है, और अन्य केवल द्रष्टा के रूप में बैठता है। प्रथम जीवात्मा है, अपर परमात्मा है। वह कर्म करते हुए पाप पुण्य से आवृत होकर संसार में गिरता है। अन्य (अपर) अन्न और निर्विकार है। किन्तु जब संसार की अग्नि में संतप्त होकर वह स्वयं आत्मा में निरतिशय आनन्द प्राप्ति के हेतु का नियोजन करता है, तभी वीत शोक होता है। और भी, रूपक उपस्थापित है कि प्रणव ही धनु है, शर अथवा बाण जीवात्मा है, लक्ष्य तो परमात्मा परमब्रह्म है, प्रमाहीन संयतपुरूष ही उसके भेदन में समर्थ है। वहाँ पर शर यथा लक्ष्य पर तन्मयता से जाता है वैसे ही जीवात्मा भी परमात्मा में होता है। इसीलिए-

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।। (मुण्डक 2/2/4)**

## 5.9 माण्डूक्योपनिषद्

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है।

### 5.9.1 नामकरण

विशेष नहीं है।

### 5.9.2 रीति और अध्याय आदि

यह गद्यात्मक उपनिषद् है। इसमें बारह कण्डिक हैं।

### 5.9.3 विषय

इसमें जीव की तीन अवस्था कही गई हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये अवस्थाएँ तीन हैं। अवस्थाओं में भिन्न शरीर होते हैं। जो नष्ट होता है, वह शरीर है। इसीलिए जाग्रत में स्थूल, स्वप्न में सूक्ष्म, सुषुप्ति में कारण। स्थूल शरीर भी व्यष्टि- समष्टि के भेद से दो प्रकार का होता है। व्यष्टि स्थूल शरीर अभिमानी जीव विश्व है। समष्टि स्थूल अभिमानी जीव वैश्वानर है। व्यष्टि सूक्ष्म शरीर अभिमानी जीव तैजस है। समष्टि सूक्ष्म शरीर अभिमानी जीव हिरण्यगर्भ है। व्यष्टि कारण शरीर अभिमानी जीव ईश्वर है। इनकी वेदान्त के प्रौढ़ ग्रन्थों में बहुलता से आलोचनाएँ यहाँ-वहाँ दिखती है। विद्यारण्य मुनि द्वारा रचित पञ्चदशी में इस विषय पर महान आलोचना है। यह उपनिषद् ही उस विषय की सूची है। यद्यपि यह लघुकाय है तथापि विषय के गाम्भीर्य को गौडपादाचार्य कृत माण्डक्यकारिका और उसके शंकरभगवत्पाद द्वारा कृत भाष्य स्पष्ट रूप से प्रकाशित करते हैं। इन तीन अवस्थाओं के वर्णन के पश्चात् सभी के समक्ष तुरीय ब्रह्म प्रतिपादित है। इसीलिए-

**नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।**

**अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्य-लक्षणमचिन्त्यमण्यप-देश्यमेकात्मप्रत्ययसारं**
**प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते। स आत्मा। स विज्ञेयः॥**
**(माण्डूक्य 7)**

प्रत्येक वेद में एक महावाक्य स्वीकृत है। वही महावाक्य होता है जहाँ जीव-ब्रह्म के ऐक्य को सुस्पष्ट प्रकाशित किया जाता है। इस अथर्ववेदीय उपनिषद् में अथर्ववेदीय महावाक्य है - अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य 2)। उसके द्वारा उपनिषदों में इसका स्थान अवश्य ही अन्यतम माना जाता है।

## 5.10 तैत्तिरीयोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखा के तैत्तिरीय आरण्यक पर यह उपनिषद् प्राप्त होता है।

### 5.10.1 नामकरण

तैत्तिरीय आरण्यक के अंशत्व के कारण इसका नाम तैत्तिरीय है।

### 5.10.2 रीति और अध्याय आदि

इस गद्यात्मक उपनिषद् में कुछ श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें अध्याय वल्ली कहे जाते है। तथा यहाँ तीन वल्लियाँ हैं। यथाक्रम नाम हैं- शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द वल्ली और

भृगुवल्ली। वल्ली भी अनुवाक् द्वारा विभक्त है। उसमें शिक्षा में बारह, ब्रह्मानन्द में नौ और भृगु में दस अनुवाक् हैं।

## 5.10.3 विषय

इसके आदि में वर्णों के उच्चारण के विषय में विहित है। शिक्षा ग्रहण कैसे हो, ब्रह्मचर्य आदि का पालनपूर्वक इसमें निबद्ध है। सदा सदाचार, आचरण, निकटता की शिक्षा देता है। अध्ययन समापन के अन्त में समावर्तनकाल में आचार्य का शिष्यों को उपदेश निरन्तर वैदिक निष्ठा के धारक रूप में विराजमान है। इसीलिए - वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति-सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यमा भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। (तैत्तिरीय 1/11/1)

माता, पिता आदि का देव-बुद्धि द्वारा पूजन इत्यादि सदाचार का शिक्षण इसमें उपनिहित है। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव। (तैत्तिरीय 1/11/2) इत्यादि मन्त्र इसमें ही है। इसके द्वितीय वल्ली में ही 'सह नाववतु' (तैत्तिरीय 2/1/1) और 'शन्नो मित्रः' (तैत्तिरीय 2/1/2) शान्तिमन्त्र प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप का भी जो श्रुतिप्रमाण उस उपनिषद् में है और जो बहुद्धृत भी है - सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्तिरीय 2/1/3)। इसमें पञ्चभूतों के भी सृष्टि तत्व को उपनिहित किया गया है। जिसके द्वारा आकाश आदि क्रम से सृष्टि जानी जाती है। सृष्टि ब्रह्म की ही है। इसीलिए-

> **तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत।**
> **आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भम्यः। पृथिवी। पृथिव्या**
> **औषधयः। इत्यादि। (तैत्तिरीय 2/1/3)**

इसमें ही ब्रह्म के स्वरूप के विषय में विश्रुत श्रुति पद होते हैं। यतो वाचो निवर्तन्ते (तैत्तिरीय 2/4) इत्यादि वहाँ उदाहरण है।

अब भृगु वल्ली में वेदान्त में प्रसिद्ध कोशों का वर्णन है। यद्यपि श्रुति में कोश शब्द का प्रयोग नहीं है तथापि उनके कोशवत् आच्छादकत्व के कारण सम्प्रदाय में कोशत्व ही माना गया। पाँच कोश हैं - अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। इनके विषय में सदानन्दयोगीन्द्र विरचित वेदान्तसार में सुष्ठु प्रकार से निगदित है। पञ्चदशी में भी इस विषय में विस्तारपूर्वक आलोचना विहित है।

## 5.11 ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मणस्थ ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक में यह उपनिषद् है।

## 5.11.1 नामकरण

ऐतरेय आरण्यक के अंश होने के कारण इसका नाम ऐतरेय है।

## 5.11.2 रीति और अध्याय आदि

यह उपनिषद् गद्यात्मक है। और तीन अध्याय है। प्रथम अध्याय में तीन खण्ड है। शेष दो अध्याय एक खण्डात्मक है।

## 5.11.3 विषय

इसमें ही ऋग्वेद के अन्तर्गत महावाक्य है जो सम्प्रदाय में स्वीकृत है, वह है - प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय 3/1/3) अपर विद्या (ज्ञान) के अनन्तर तो कर्म के असत्व होने के कारण पराविद्या में प्रवेश होता है। अब यहाँ परगति विषय श्रुति द्वारा उपदिष्ट है। उसमें वामदेव ऋषि सुने जाते है जिन्होंने माता के गर्भ में ही आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके जन्म को प्राप्त किया।

### पाठगत प्रश्न-2

1. ईशोपनिषद् वाजसनेय संहिता में कहाँ है?
2. कौन सा लोक ईशोपनिषद् में वर्णित है, ऐसा प्राप्त होता है?
3. ईशोपनिषद् में कितने मन्त्र उपलब्ध होते हैं?
4. कौन सा याग (यज्ञ) वाजश्रवा द्वारा किया गया?
5. कितने रात नचिकेता द्वारा यमगृह में बिताए गए?
6. रथ रूपक इसमें प्राप्त होता है-

   (क) मुण्डक में (ख) काठक में (ग) तैत्तिरीय में
7. किस ऋषि द्वारा प्रश्नोपनिषद् में कौसल्य आदि उपदिष्ट हैं?
8. 'अतिथिदेवो भव:' यह मन्त्र कहाँ प्राप्त होता है?
9. पञ्चकोश क्या हैं?
10. ईशोपनिषद् किस प्रकार का उपनिषद् है, मन्त्रोपनिषद् अथवा आरण्यकोपनिषद्?
11. शंकराचार्य द्वारा किस शाखा के ईशोपनिषद् के मन्त्रों का भाष्य विरचित है?

12. अथर्ववेदीय महावाक्य क्या है?

13. सत्यमेव जयते प्राप्त है –

(क) तैत्तिरीय में (ख) ईश में (ग) इसमें कहीं नहीं।

14. कठोपनिषद् की आख्यायिका को संक्षेप में बताइए।

15 स्तम्भों का मिलान करो–

| 'क' स्तम्भ | 'ख' स्तम्भ |
|---|---|
| तैत्तिरीय | हिरण्यमयेन पात्रेण |
| नचिकेता | सह नाववतु |
| ईशोपनिषद् | माण्डूक्योपनिषद् |
| अवस्थात्रय | प्रज्ञानं ब्रह्म |
| ऋग्वेद | वाजश्रवस |

## 5.12 छान्दोग्योपनिषद्

सामवेदीय छान्दोग्यब्राह्मण में यह उपनिषद् है

### 5.12.1 नामकरण

छान्दोग्य ब्राह्मण के अन्तर्गत होने से इसका यह नाम है।

### 5.12.2 रीति और अध्याय आदि

यह गद्यात्मक है। इसमें आठ अध्याय हैं। और अध्याय खण्डों में विभक्त हैं।

### 5.12.3 विषय

इसमें सामवेद गत महावाक्य सम्प्रदाय स्वीकृत 'तत्त्वमसि' है। इस 'तत्वमसि' महावाक्य का वेदान्त में महान विचार है। प्राय: सभी वेदान्त विषयक ग्रन्थ में इसका विषय के रूप में ग्रहण है। पञ्चदशी में यद्यपि महावाक्य विषयक अध्याय पृथक है, तथापि तत्वमसि महावाक्य का विचार प्रथम अध्याय में भी उपनिहित है। वेदान्तसार ग्रन्थ में भी इसका प्रवर्तन दिखता है। वहाँ इसके छठे अध्याय अथवा प्रपाठक में उद्दालक, जिनका अपर नाम धेय आरूणि है, अपने पुत्र श्वेतकेतु को उसके आत्म ज्ञान के उन्मेष के लिए

कहते हैं- ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति। इस वाक्य के लक्षणा आदि के विचारपूर्वक वेदान्त के उन उन ग्रन्थों में प्रकरण हैं।

छान्दोग्य का अपर बहुचर्चित विषय उपासना है। 'उपासनानि सगुणब्रह्मविषयकमानसव्यापाररूपाठि। शण्डिल्यविद्यादीनि'- यह वेदान्त सार में सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा उपासना लक्षित है। और वे कौन-सी शाण्डिल्य विद्या आदि छान्दोग्य में प्राप्त होती हैं। इसके तृतीय अध्याय के चौदहवें खण्ड में ही 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि रूप से शाण्डिल्य विद्या कहलाती है। इस उपनिषद् का प्रारम्भ ही ओपारोपासना से होता है। एवं उसमें बहुत उपाासना के प्रकरण हैं। उसमें कुछ अक्षिपुरूषोपासना, सूर्योपासना, द्वारपालोपासना, प्राणोपासना इत्यादि हैं।

और इस उपनिषद् में भी अनेक आख्यायिकाएँ प्राप्त होती हैं। उनमें जाबाल सत्यकाम की आख्यायिका सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसको छोड़कर प्रवाहणजैवल्य आख्यायिका, जानश्रुतिरैक्क्व आख्यायिका है। संवाद के पुर:सर भी ब्रह्मविद्या यहाँ प्रकाशित है। उसमें नारद सनत्कुमार संवाद आदि प्रसिद्ध है।

## 5.13 बृहदारण्यकोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद के काण्वशाखा तथा माध्यन्दिनशाखा पर शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम आरण्यक के अन्तिम भाग में यह उपनिषद् है। शाखा के भेद से कुछ पाठभेद होता है।

### 5.13.1 नामकरण

बृहद्, यह इसका नाम सार्थकता को भजता है। इससे इसका उपनिषदों में बृहत्व ज्ञात होता है। उपनिषदों में बृहत्व के कारण तथा आरण्य का अंश होने से इसका नाम 'बृहदारण्यक' है।

### 5.13.2 रीति और अध्याय आदि

यह प्राय: गद्यात्मक है, मध्य में कुछ पद्यात्मक श्लोक होते हैं। इसके तीन काण्ड हैं। ये हैं - मधुकाण्ड, याज्ञवल्क्यकाण्ड तथा खिलकाण्ड। प्रत्येक काण्ड में दो अध्याय हैं। इस प्रकार यह उपनिषद् छ: अध्यायों से युक्त है। और अध्याय ब्राह्मण द्वारा विभक्त हैं।

### 5.13.3 विषय

इस उपनिषद में प्रथम अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में यजुर्वेदीय महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि उपलब्ध होता है। कर्मानुष्ठानकारी (कर्म अनुष्ठान करने वाला) पुरूष सहसा निर्गुण विषयक

टिप्पणी

ज्ञान का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। उसके कारण आदि में यहाँ सगुणविषयक उपासना विहित है। यहाँ आशय है कि उपासना के द्वारा अध्यारोप के बल से तत्व को समझना। अध्यारोप वस्तु पर अवस्तु के आरोप का नाम है। अपवाद नाम आरोपित के निराकरण का है। यथा प्रसिद्ध उदाहरण है- अंधकार आदि के कारण पुरूष रज्जू में सर्प को आरोपित करता है। किन्तु सम्यक् प्रकाश आदि से भ्रम के दूर होने पर सर्पत्व के आरोप का अपवादपूर्वक वह जानता है कि यह रज्जू है। उसी प्रकार ब्रह्म में यह जगत् अध्यस्त है। अज्ञान के निराकरण द्वारा जगत के बाधित होने पर ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उसी अध्यारोप को अवलम्बित कर प्रपञ्च की उत्पत्ति, विस्तार, उत्कर्षरूप हिरण्यगर्भ प्रदर्शित है। ये सभी अनित्य हैं। नेति नेति (बृहद्. 2/3/6) इस विचार से असंसारी असन्न आत्मा का उनसे पृथक्करणं उद्धृत है। प्रथम अध्याय के पञ्चम् ब्राह्मण के सप्त अन्न प्रकरण में जगत का सापेक्षत्व, सातिशयत्व उद्धृत (निदेर्शित) है। वहाँ तो आत्मा के निरतिशयत्व आदि रूप का बोधन के लिए विहित है। यही षष्ठ ब्राह्मण में प्रपञ्च के नामरूपात्मक अनात्मत्व विहित है। और कहते है-

**अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम।**
**आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥**

उससे सत्ता प्रकाशकत्व और आनन्दात्मक ब्रह्मरूप है। उसके कारण सच्चिदानन्द है। संसार में किसी भी नामरूपात्मक की नित्यता नहीं है। इसी कारण से अध्यारोप-अपवाद से अनित्यों में वैराग्य को छोड़कर मुमुक्षु आत्मा की ही उपाासना करता है (आत्मेत्येवापासीत् (बृहद. 1/4/7) इसमें ही बहु प्रसिद्ध जनक याज्ञवल्क्य संवाद और याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद है। और याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद विख्यात है। मैत्रेयी को उनके पति याज्ञवल्क्य का उपदेश चरमतत्व को व्यक्त करता है। जगत् में कुछ प्रिय नहीं होता है। आत्मा ही एक प्रिय है। आत्मा ही सर्वत्र अनूस्यूत (व्याप्त) है। उसके ही प्रिय होने से सब कुछ प्रिय होता है। इसीलिए-

**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु**
**कामाय सर्वं प्रियं भवति। (बृहद्. 2/4/5)**

**पूर्णमदः पूर्णमिदम (बृहद्. 5/1/1) यह बहुश्रुत शान्ति मन्त्र इसी उपनिषद में प्राप्त होता है।**

**श्वेताश्वतरोपषिद् और कौषीतकी उपनिषद्**

ये दो उपनिषद् दस से भिन्न एक सौ आठ संख्याओं से मुख्य हैं। उसमें श्वेताश्वतर (उपनिषद्) का भाष्य शांकर सम्प्रदाय में है (अर्थात् शंकराचार्य द्वारा रचित नहीं है) कुछ तो शांकर ही हैं।

## 5.14 श्वेताश्वतरोपनिषद्-

श्वेताश्वतर कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसमें छः अध्याय हैं। यहाँ ये मन्त्रों में प्रसिद्ध मन्त्र हैं-

**सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।**
**सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥**

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**
**त्वं कुमार उत वा कुमारी**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि**
**त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥**
**अजांमेकां लोहितशुक्लकृष्णां**
**बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।**
**अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते**
**जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥**

श्वेताश्वतर में उपनिषद् के अन्दर से अथवा संहिता भाग से अनेक मन्त्र स्वीकृत होते हैं।

## 5.15 कौषीतकि उपनिषद्

यह उपनिषद् ऋग्वेद के कौषीतकि ब्राह्मण के अंश से प्राप्त है। इसमें चार अध्याय हैं। इसमें गर्ग के प्रपौत्र चित्र द्वारा गौतम उद्दालक का संवाद है। उपासना अनुष्ठान के साथ-साथ निर्गुण अवाप्ति भी यहाँ विहित है। और भी चित्र के द्वारा वहाँ ही उक्त है कि किसी साधन द्वारा सभी विचितपर्यंक उपविष्ट प्रजापति ब्रह्म का संवाद हुआ, इस कारण से जो विद्या तब ब्रह्म द्वारा दी गई वह पर्यंक विद्या रूप में ख्यात (प्रसिद्ध) है।

और भी इसमें गार्ग्य ऋषि के साथ काशी-ईश्वर अजातशत्रु का संवाद प्राप्त होता है।

### पाठान्त प्रश्न

1. किस सामवेदीय ब्राह्मण में छान्दोग्य उपनिषद् प्राप्त होता है?
2. बृहदारण्यक नाम का सार्थक्य क्या है?
3. याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद कहाँ है?
4. उपासना क्या है?

टिप्पणी

5. 'महावाक्य' नाम क्या है?
6. सामवेद का महावाक्य क्या है?
7. यह कौषीतकि उपनिषद् में है-

   (क) याज्ञवल्क्य (ख) चित्र (ग) नारद
8. बृहदारण्यक की काण्ड संख्या कितनी है? और नाम बताओ।
9. विद्यारण्य मुनि विरचित ग्रन्थ कौन सा है?
10. पूर्णमदः पूर्णमिदम्' शान्तिमन्त्र किस उपनिषद् में प्राप्त होता है?
11. वेदान्त का क्या विषय है?
12. तैजसः क्या है?
13. कौषीतकि उपनिषद्-भाष्य शंकराचार्य द्वारा कृत है अथवा नहीं?
14. यह मुख्य उपनिषद् नहीं है-

   (क) कैबल्योपनिषद् (ख) तैत्तिरीयोपनिषद् (ग) ईशावास्योपनिषद्
15. बृहदारण्यक का विषय संक्षेप में लिखिए।

टिप्पणी

# 6

# प्रस्थानत्रयी में स्मृति और न्याय प्रस्थान

## प्रस्तावना

वेदान्त जिनमें प्रतिष्ठित हैं अथवा जिसके द्वारा प्रतिष्ठित हैं, वेदान्त सम्प्रदाय में श्रुति, स्मृति, न्याय रूप शास्त्र प्रस्थान कहलाते हैं। एवम् ब्रह्म बोधकों की शब्द प्रमाणों की वेदान्तों में जहाँ प्रतिष्ठा होती है, और जिसके द्वारा होती है, वही प्रस्थान है। ध्वन्यालोक ग्रन्थ में लोचनकार अभिनवगुप्तपाद द्वारा प्रस्थान शब्द का निर्वचन प्रदर्शित है यथा- ''प्रतिष्ठन्ते परम्परया व्यवहरन्ति येन मार्गेण तत्प्रस्थानम्।''

वेदान्त ही उपनिषद् कहलाते हैं, तो वेदान्त की श्रुति प्रतिष्ठा कैसे हो, स्वयं की स्वयं की प्रतिष्ठा होने के कारण कहा गया है- आत्म स्वरूप ब्रह्म के बोधक शब्द प्रमाण तत्वमसि इत्यादि वाक्य वेदान्त के शब्द वाच्य होते हैं। वे ही स्वयं परम प्रमाणभूत है, मन्दमति वालों की दृष्टि में प्रतिष्ठा युक्त नहीं हैं। उपनिषदों में ब्रह्म बोधक वाक्य, आख्यायिका, युक्ति, दृष्टान्त अर्थवादियों द्वारा एवं भिन्न-भिन्न प्रबोधन प्रक्रियायों द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठाएँ हैं। उसके कारण वेदान्त उपनिषदों में प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं, यह योजित है।

उपनिषद् सार संग्रह रूप गीता में, उपनिषद् वाक्यों में ही युक्ति युक्त विचार के लिए विरचित ब्रह्मसूत्र में वेदान्त की प्रतिष्ठा सुविदित ही है।

अथवा भाष्य, आख्यान वाद ग्रन्थ, प्रकरण ग्रन्थ आदि रूप वेदान्तशास्त्र की प्रतिष्ठा जहाँ है (जिसमें है), वह प्रस्थान है। श्रुति, स्मृति, न्याय में ही भाष्य आदि वेदान्त शास्त्र प्रतिष्ठित है।

उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र रूप प्रस्थानत्रयी का ही सम्मिलित रूप ही अद्वैत वेदान्त शास्त्र है। प्रस्थानत्रयी ही आत्मस्वरूप निर्धारण में परम प्रमाणता को भजता है। इसमें वह न्याय प्रस्थान और स्मृति प्रस्थान ग्रन्थ की शरीर विवेचना आदि पर आगे विचार किया जाता है।

टिप्पणी

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- न्याय प्रस्थान क्या है, इस विषय में ज्ञान प्राप्त करने में;
- न्याय प्रस्थान में किसको ग्रहण करना चाहिए, यह जान पाने में;
- ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म क्या है, यह जान पाने में;
- आत्मस्वरूप का निर्धारण कैसे करना चाहिए, यह जान पाने में;
- इतर दर्शन के खण्डन के साथ अद्वैत वेदान्त शास्त्र की प्रतिष्ठा होती है, यह ज्ञान प्राप्त करने में;
- जगत की उत्पत्ति और लय किस कारण होती है, यह जान पाने में;
- ब्रह्म ही सत्य वस्तु है, ऐसा श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित है वह जान पाने में;
- स्मृति प्रस्थान का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- गीता के अनुसार किस प्रकार का कर्म करना चाहिए, यह जान पाने में;
- गीता के अनुसार श्रद्धा के भेदों को जान पाने में;
- तीनों गुणों के कार्य को जान पाने में;
- आत्म तत्व को जान पाने में;
- धर्म-अधर्म के विषयों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- संन्यास के स्वरूप को जानने में;
- गीता का सार जान पाने में;
- मोक्ष प्राप्ति के उपायों को जान पाने में;
- ब्रह्म के स्वरूप का निर्णय कर पाने में।

## 6.1 न्याय प्रस्थान

श्री बादरायण व्यास कृत ब्रह्मसूत्र ही वेदान्तशास्त्र का न्याय प्रस्थान है। शारीरिक अर्थात् जीवात्मा का जो स्वरूप उपनिषदों में श्रुत है वह यहाँ नित्य, शुत्र, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म प्रस्थान में उपनिषद् वाक्य ही विषयीकृत करके विचार किया गया है। और भगवत्पूज्यपाद भाष्यकार द्वारा सूत्रभाष्य में कहा गया है- ''वेदान्तवाक्यकुसुमग्रथनार्थत्वात् सूत्रणाम्। वेदान्त वाक्यानि हि सूत्रैरूदाह्यत्य विचार्यन्ते''।।

(जन्माद्याधिकरण भाष्य में) ब्रह्मसूत्र के चार अध्याय हैं और वे अध्याय हैं-

1. समन्वय अध्याय
2. अविरोध अध्याय
3. साधन अध्याय
4. फल अध्याय

प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। और सम्पूर्ण ग्रन्थ के सोलह पाद हैं। प्रत्येक पाद में विषय के भेद से अधिकरण होते हैं। अधिकरण का लक्षण है-

**''विषयों विषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।**
**सन्नतिश्चेति पञ्चांन्न शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥''**

सभी को मिलाकर एक सौ पञ्चानवे (195) अधिकरण विद्यमान हैं। और सम्पूर्ण ग्रन्थ में पाँच सौ पञ्चानवे (555) सूत्र हैं।

## 6.1.1 अध्यायों का परिचय

ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में प्रसिद्ध विषय चतुः सूत्री है। उसमें चार सूत्रों की चर्चा की गई है। सूत्र का लक्षण है-

**अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारद्विश्वतोमुखम्।**
**अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥**

और वे चार सूत्र हैं-

- अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।
- जन्माद्यस्य यतः।
- शास्त्रयोनित्वात्।
- तत्तु समन्वयात्।

इस सूत्र में 'ब्रह्म जिज्ञासा', यह अर्थ प्रतिपादित है। 'अथ' शब्द तो आनन्तयार्थ इस अर्थ में गृहीत है। 'अतः' शब्द हेतु अर्थ में गृहीत है। 'ब्रह्मजिज्ञासा', यहाँ ब्रह्म की जिज्ञासा है। 'ब्रह्मणः' यहाँ कर्मणि षष्ठी है, शेषे षष्ठी नहीं।

जन्माद्यस्य यतः, इस सूत्र में ब्रह्म का लक्षण प्रतिपादित है। लक्षण है- असाधारणधर्मवचनम्। ब्रह्म के दो लक्षण उक्त हैं-

- स्वरूप लक्षण- जो स्वरूप से व्यावर्तक है, स्वरूप लक्षण है। यथा -'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म', 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म'।

- तटस्थ लक्षण- जो लक्ष्य को काल द्वारा अनवस्थित करने पर जो व्यावर्तक है, वही तटस्थ लक्षण है। ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है जगत् के जन्म-स्थिति-प्रलय का कारणत्व। इसी प्रकार श्रुति है ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'' (तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1.1)। यतः पद द्वारा कारण निर्देश होता है। जिस ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति प्रदर्शित है। जगत् तो नाम-रूप से व्याकृत है।

''शास्त्रयोनित्वात्'' इत्यादि सूत्र द्वारा ब्रह्म का शास्त्रप्रमाणकत्व ज्ञात होता है। यहाँ योनि शब्द की भगवत भाष्यकार द्वारा दो प्रकार की व्याख्या प्रदर्शित है। यथा-

शास्त्र योनि अर्थात् प्रमाण है जिसमें उसका भाव शास्त्रयोनित्व है, इसीलिए शास्त्रयोनित्वात्। जैसे कहा गया है- ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति''। इसीलिए ब्रह्म का शास्त्र प्रमाणकत्व सिद्ध है।

शास्त्र का योनि अर्थात् कारण शास्त्रयोनित है, उसका भाव शास्त्रयोनित्व है, इसीलिए शास्त्रयोत्वात्। यथा श्रुति में ही कहा गया है- अस्य महतो भूतस्य निःश्वासितमेतद् यदृग्वेदः (बृहद् 4-5-11) इत्यादि। उस महान् भूत का निरतिशाय, सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तिमत्व है।

'तत्तु समन्वयात्' इत्यादि सूत्र द्वारा मोक्ष का स्वरूप प्रतिपादित है। तत्तु समन्वयात्- इस सूत्र की व्याख्या करके भाष्यकार शंकराचार्य लिखते है- ''ब्रह्मभावश्च'' मोक्षः। अथवा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-ब्रह्म स्वरूपवान् मोक्ष है। वह ब्रह्म सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है। ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' इत्यादि विधानों में यह आत्मा क्या है? मोक्ष क्या है? ब्रह्म क्या है? इन आकांक्षाओं में सभी वेदान्त उपयुक्त हैं। नित्य, सर्वज्ञ, सर्वगत, नित्यतृप्त, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला विज्ञानमानन्द रूपी ब्रह्म है। यह ब्रह्म तो पारमार्थिक, कूटस्थनित्य, निरवयव, स्वयं ज्योति स्वभाव वाला है। वह यह अशरीरत्व ही मोक्ष को कहता है। जैसे उक्त है-

**''अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ठस्थितम्।**
**महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥'' (कठ. 1/2/22)**

और भी,

**''भिद्यते ह्यदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः**
**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥''**

और अन्य,

**''तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुश्यतः।'' (ईश. 8)**

अब सभी पादों के सार रूप अर्थ की क्रम से आलोचना की गई है-

इसमें आदि में पादों के नाम हैं-

| समन्वयाध्याय | |
|---|---|
| प्रथम पाद | स्पष्टब्रह्मलिन्न श्रुति समन्वय |
| द्वितीय पाद | अस्पष्ट ब्रह्मलिन्न श्रुति समन्वय |
| तृतीय पाद | ज्ञेय ब्रह्म प्रतिपादक-अस्पष्ट श्रुति समन्वय |
| चतुर्थ पाद | अव्यक्त आदि सन्दिग्ध पदमात्र समन्वय |

| अविरोधाध्याय | |
|---|---|
| प्रथम पाद | वेदान्त समन्वय विरोध-परिहार |
| द्वितीय पाद | तर्कपाद |
| तृतीय पाद | वियत्पाद |
| चतुर्थ पाद | प्राणपादः |

| साधनाध्याय | |
|---|---|
| प्रथम पाद | वैराग्यनिरूपण |
| द्वितीय पाद | तत्व-पदार्थ परिशोधन |
| तृतीय पाद | परापर ब्रह्म विद्यागुण उपसंहार |
| चतुर्थ पाद | निर्गुण विद्या का अन्तरङ्ग साधन-विचार |

| फलाध्याय | |
|---|---|
| प्रथम पाद | आवृत्तिपाद |
| द्वितीय पाद | उत्क्रान्तिपाद |
| तृतीय पाद | मार्गपाद |
| चतुर्थ पाद | ब्रह्मपाद |

## 6.1.2 समन्वय अध्याय

1. समन्वय अध्याय के प्रथम पाद में आदि के सूत्र चतुष्टय के द्वारा शास्त्रार्थ का संग्रह करके आचार्य द्वारा स्पष्ट ब्रह्मलिन्न श्रुतियों का समन्वय प्रदर्शित है।

टिप्पणी

2. द्वितीय पाद में तो उपास्य के वाचकों का स्पष्ट श्रुति समन्वय प्रदर्शित होता है।
3. तृतीय पाद में ज्ञेय ब्रह्म के प्रतिपादक स्पष्ट श्रुति समन्वय प्रदर्शित होता है।
4. चतुर्थ पाद में तो अव्यक्त आदि सन्दिग्ध पद मात्र का समन्वय प्रदर्शित है।

### 6.1.3 अविरोध अध्याय

1. अविरोध अध्याय के प्रथम पाद में साङ्ख्य आदि स्मृति और युक्ति द्वारा वेदान्त के समन्वय विरोध जो उद्भावित है, उसका परिहार किया गया है।
2. द्वितीय पाद में तर्कपाद की व्याख्या में वेदान्त के समन्वय के अविरोध के लिए सांख्य आदि मतों का दुष्टत्व दर्शित है।
3. तृतीय पाद में तो पञ्चमहाभूत और जीवात्मा में श्रुतियों के विरोध का परिहार है।
4. और चतुर्थ पाद में लिन्न शरीर सम्बन्धी श्रुतियों के विरोध का परिहार किया गया है।

### 6.1.4 साधन अध्याय

1. साधन अध्याय के प्रथम पाद में जीव की वैराग्य हेतु गत्यागति प्रदर्शित होती है।
2. द्वितीय पाद में उसका ही अवस्था भेद, प्रपञ्च, तत्व-पदार्थ परिशोधन किया गया है।
3. तृतीय पाद में ब्रह्म विद्याओं में गुणोपसंहार का प्रकार दर्शित होता है।
4. चतुर्थ पाद में परब्रह्मविद्या के अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग, साधन विरचित हैं।

### 6.1.5 फल अध्याय-

1. फल अध्याय के प्रथम पाद में साधन आश्रित कुछ अवशिष्ट के वर्णन का ही जीवन-मुक्ति विचार किया गया है।
2. द्वितीय पाद में उत्क्रान्ति गति निरूपित है।
3. तृतीय पाद में सगुणविद्यावान् की मृत्यु का उत्तरमार्ग व्याख्यात है।
4. चतुर्थ पाद में ब्रह्म प्राप्ति और ब्रह्मलोक की स्थिति निरूपित है।

ब्रह्मसूत्र में बादरायण आचार्य द्वारा निर्दिष्ट आचार्य

| आचार्यों के नाम | सूत्र |
|---|---|
| काष्र्णाजिनि | चरणादिति चेन्नोपलक्षणाथेति काष्र्णाजिनिः (ब्र.सू.31) |
| काशकृत्स्नाचार्य | अवस्थितेरिति काशकृत्सन (ब्र.सू. 1/4) |
| औडुलोमि | चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमिः (ब्र.सू. 4/4) |
| बादरि | सुकृतदुष्कृते एवेति बादरिः (ब्र.सू. 3/1) |
| बादरायण | एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः (ब्र.सू. 4/4) |
| जैमिनि | ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः (ब्र.सू. 4/4) |
| आश्मरथ्य | प्रतिज्ञासिद्धेर्लिन्नमाश्मरथ्यः (ब्र.सू. 1/4) |

## पाठगत प्रश्न 6.1

1. न्याय प्रस्थान द्वारा किसका ग्रहण होता है?
2. ब्रह्मसूत्र के रचनाकार कौन हैं?
3. ब्रह्मसूत्र में कितने अध्याय हैं?
4. ब्रह्मसूत्र में कितने अधिकरण हैं?
5. ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय का क्या नाम है?
6. ब्रह्म का लक्षण किस सूत्र में प्रतिपादित है?
7. ब्रह्म भाव मोक्ष है अथवा ब्रह्म का अभाव मोक्ष है?
8. साधन अध्याय में प्रथम पाद में क्या प्रतिपादित है?
9. अशरीर मोक्ष है, उसमें श्रुति प्रमाण क्या है?
10. 'जन्माद्यस्य यतः' इसमें 'यतः' पद का अर्थ क्या है?
11. 'शास्त्र्योनित्वात्' इस सूत्र में दो प्रकार का विग्रह क्या है?
12. ब्रह्मजिज्ञासा, यहाँ विग्रह क्या है?
13. सूत्र का लक्षण क्या है?
14. अधिकरण का लक्षण है?
15. बादरायणाचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र में निर्दिष्ट आचार्यों में चार आचार्यों के नाम लिखिए।

टिप्पणी

16. उत्क्रान्ति गति कहाँ वर्णित है?
17. सांख्य आदि का दुष्टत्व किस पाद में निराकृत है?
18. ''अस्य महतो भूतस्य नि:श्वासितमेतद् यदृग्वेद'' कहाँ है?
19. ''प्रतिष्ठन्ते परम्परया व्यवहरन्ति येन मार्गेण तत्प्रस्थानम्'' यह उक्ति किसकी है?
20. तटस्थ लक्षण का क्या लक्षण है?
21. ''तत्तु समन्वयात्'' इस सूत्र में 'तत्' पद द्वारा किसका ग्रहण होता है?
22. 'वेदान्तवाक्यकुशुमग्रथजार्थत्वात् सूत्रणाम्। वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रैरूदाह्यत्य विचार्यन्ते'' किसमें अथवा कहाँ है?
23. ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद का नाम क्या है?
24. ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' सूत्र का अर्थ क्या है?

## 6.2 स्मृति प्रस्थान

स्मृति प्रस्थान को गीता प्रस्थान कहते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में अन्तर्भूत श्रीमद्भगवद्गीता परम पुरूष वासुदेव द्वारा द्वापर में कुरूक्षेत्र में अर्जुन को समुपदिष्ट कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा सात सौ श्लोकों द्वारा उपनिबद्ध है। श्रुति में प्रतिपादित अर्थ ही स्मृति प्रस्थान में आलोचित है। आध्यात्मिक भावना प्रधान गीता अद्वैत वेदान्त साहित्य का द्वितीय प्रस्थान है। भगवान् व्यास द्वारा रचित यह श्रीमद्भवद्गीता है। इसमें सात सौ (700) श्लोक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा 537 श्लोक निगदित हैं, अर्जुन द्वारा 122 श्लोक, संजय द्वारा 40 श्लोक और धृतराष्ट्र द्वारा एक श्लोक कहा गया है। गीताशास्त्र में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही वक्ता हैं, श्रोता तो अर्जुन है।

नि:श्रेयस परम पुरूषार्थ को उद्देश्य करके गीता शास्त्र के धर्म का उपदेश करता है- साक्षात् उपाय भूत निवृत्ति लक्षण धर्म है, और परम्परा से उपायभूत बुद्धियोग से युक्त प्रवृत्ति-लक्षण धर्म है। अभ्युदय का अर्थ, प्रवृत्ति, धर्म, कर्त्तव्य, बुद्धि, फलों से सन्धि, वर्जनरूप योग कौशल द्वारा अनुष्ठीयमान सत्व शुद्धि, सम्पादन द्वारा आत्म-अनात्म के विवेक ज्ञान में समाधि का पर्यावसान होता है। एवम् कर्मनिष्ठा द्वारा ज्ञान ज्ञाननिष्ठा और योग्यता प्राप्त कर कर्मसन्यास पूर्वक ज्ञाननिष्ठा सम्पादन रूप में निवृत्ति-लक्षण ध र्म द्वारा नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है।

यही वेदान्तसार निगदित है। शंकराचार्य द्वारा उक्त है- ''तदिदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसंग्रहभूतं दुर्विज्ञेर्थाम्''। नि:श्रेयस ही यहाँ मुख्य प्रयोजन है। और शंकराचार्य द्वार उक्त है- ''गीताशास्त्रस्य संक्षेपत: प्रयोजनं परं नि:श्रेयसं सहेतुकस्य संसारस्य उत्यन्तोपरमलक्षणम्''।

## 6.2.1 गीता का माहात्म्य

**''गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।**
**विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः॥''**

जो इस पवित्र गीताशास्त्र को पढ़ता है, उसके भय, शोक आदि चले जाते हैं। एवम् वह विष्णु धाम पद को प्राप्त करता है।

**''गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।**
**नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥''**

जो सर्वदा गीता का अध्ययन और प्राणायाम करता है, उसका इस जन्म में किया गया पापकर्म भी और पूर्व जन्म में किया गया पापकर्म नष्ट होता है।

श्रीमद्भगवत्गीता में अट्ठारह (18) अध्याय हैं। और वे अध्याय हैं-

| **अध्यायः** | **अध्याय नाम** |
|---|---|
| प्रथम (एक) | अर्जुनविषादयोग |
| द्वितीय (दो) | सांख्ययोग |
| तृतीय (तीन) | कर्मयोग |
| चतुर्थ (चार) | ज्ञानकर्मसंन्यासयोग |
| पञ्च (पाँच) | कर्मसंन्यासयोग |
| षष्ठ (छः) | आत्मसंयमयोग |
| सप्त (सात) | ज्ञानविज्ञानयोग |
| अष्ठ (आठ) | अक्षरब्रह्मयोग |
| नव (नौ) | राजविद्याराजगुह्ययोग |
| दश (दस) | विभूतियोग |
| ग्यारह | विश्वरूपदर्शनयोग |
| बारह | भक्तियोग |
| तेरह | क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग |
| चौदह | गुणत्रयविभागयोग |
| पन्द्रह | पुरूषोत्तमयोग |
| सोलह | दैवासुरसम्पद्विभागयोग |
| सत्रह | श्रद्धात्रयविभागयोग |
| अट्ठारह | मोक्षसन्न्यासयोग |

टिप्पणी

## 6.2.2 गीता में प्रसिद्ध भगवान् के वचन

**''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**
**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥'' (श्रीमद्भगद्गीता 2/16)**

असत्पदार्थ कभी भी नहीं होता है, यथा-शश श्रृन्न आदि। सत् पदार्थ सदैव रहता है, यथा आत्मा। इन दोनों सत्-असत् पदार्थों का स्वरूप निर्णय केवल तत्वज्ञानियों का ही होता है, अन्य को नहीं।

### आत्मा का स्वरूप

**''न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।**
**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥''**
**(गीता 2/20)**

यह आत्मा कभी भी उत्पन्न नहीं होता और न मरता है, उत्पन्न होकर भी रहने वाला है ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि यह आत्मा जन्मरहित, सनातन तथा पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होता।

**''वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।**
**कथं स पुरूषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥'' (गीता 2/21)**

यह आत्मा विनाशरहित, नित्य, जन्मरहित, और अपक्षय रहित है, ऐसा जो जानता है, वही ज्ञानी है। इस प्रकार का ज्ञानवान् पुरूष अन्य को कैसे मारता है। और अन्य को मारने के लिए कैसे प्रेरित करता है।

**''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥''**
**(गीता 2/22)**

मनुष्य वस्त्र धारण करता है। परन्तु वह सर्वदा समान ही वस्त्र धारण नहीं करता। धारण किये गए वस्त्र जब पुराने हो जाते हैं, तब उन्हें छोड़कर नवीन अन्य वस्त्र धारण करता है। इस प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नवीन अन्य शरीर का आश्रय लेता है।

**''नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः॥'' (गीता 2/23)**

इस आत्मा को न काट सकते हैं, अग्नि इसे नहीं जला सकती है। जल इसे गला नहीं सकता है। वायु भी इसे सुखा नहीं सकता है।

**''अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।**
**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥'' (गीता 2/24)**

यह आत्मा शस्त्र द्वारा किसी भी प्रकार से काटी नहीं जा सकती। अग्नि द्वारा भस्म भी नहीं किया जा सकता। इसको जल आदि के द्वारा भिगोया अथवा वायु द्वारा सुखाया नहीं जा सकता। यह सर्वदा रहता है। सर्वत्र भी रहता है। यह निश्चल, स्थिर और सनातन होता है।

### योग का लक्षण-

**''योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।**
**सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥'' (गीता 2/48)**

हे अर्जुन अत्यन्त आसक्ति को त्याग कर लाभ-अलाभ के विषय में समान भाव से चिन्तन कर एकाग्र मन वाला होकर कर्मों में आचरण करो। लाभ-अलाभ के विषय में समान व्यवहार योग कहलाता है।

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।**
**तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥ (गीता 2/50)**

हे पार्थ ज्ञानमार्ग को समाश्रित करके व्यक्ति सुकर्म और दुष्कर्म को त्याग देता है। तुम भी वह त्याग दो। फल की अनपेक्षा वाले होकर कर्मों में संलग्न हो। कर्मों में कौशल ही योग कहलाता है।

### स्थिरप्रज्ञ का लक्षण-

**''दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते॥'' (गीता 2/56)**

स्थितप्रज्ञ का मन दुःखों में अनुद्विग्न होता है। वह सुखों में स्पृहवान् नहीं होता है। राग, भय और क्रोध से वह अतीत होता है।

**''यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'' (गीता 2/58)**

इन्द्रियाँ सर्वदा शब्द आदि विषयों में प्रवृत्त होती हैं। कूर्म (कछुआ) जैसे भय से अपने अङ्गों को संकुचित कर लेता है तथा जब वह ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त व्यक्ति सभी इन्द्रियों को शब्द आदि से संकुचित कर लेता है तब उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। और वह स्थिरप्रज्ञ होता है।

**''एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**
**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥'' (गीता 2/72)**

हे पार्थ यह ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस स्थिति को जो प्राप्त करता है, वह कदापि मोह वश नहीं होता है। अन्तकाल में भी इस स्थिति में स्थित होकर वह ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है।

टिप्पणी

**''लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
**ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥'' (गीता 3/3)**

हे अर्जुन सांख्यों के लिए ज्ञानमार्ग और योगियों के लिए कर्म मार्ग, यह दो प्रकार के मार्ग मेरे द्वारा प्रारम्भ में ही कहे गए हैं।

**''न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।**
**न च संन्यसादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥'' (गीता 3/4)**

**''न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।**
**कार्यते ह्यवशः कर्म सर्व प्रकृतिजैर्गुणैः॥'' (गीता 3/5)**

जो कोई भी कभी भी क्षणकाल भी कर्मरहित होकर नहीं रहता है क्योंकि सभी प्रकृति से सम्भूत विकारों द्वारा विवश होकर कर्म प्रकरण में प्रवर्तित होते हैं।

### सृष्टिक्रम-

**''अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।**
**यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥'' (गीता 3/14)**

प्राणी आहार से उत्पन्न होते हैं। आहार वृष्टि में होता है। और वृष्टि यज्ञ से होती है। यज्ञ तो कर्म द्वारा समुद्भूत होता है।

**''कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।**
**तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥'' (गीता 3/15)**

कर्म वेद से उत्पन्न होता हे। और वेद परमात्मा से उत्पन्न हो। अतः सर्वव्यापी भगवान् यज्ञ में सदा रहते हैं।

**''प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।**
**अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥'' (गीता 3/27)**

देह, इन्द्रिय आदि सभी प्रकृति के विकारभूत हैं। वे ही कर्म करते हैं, आत्मा नहीं। यह आत्मा पुनः यदि प्रकृतिजन्य अहंकार से युक्त होता है तब मैं ही सभी कर्मों का कर्ता हूँ, ऐसा जानता है।

### अवतारक्रम-

**''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता 4/7)**

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की अधिकता होती है तब मैं स्वयं को लोक के लिए प्रकाशित करूँगा। निराकार भी साकार हो जाएगा।

टिप्पणी



**''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता 4/8)**

सत्पुरूषों के संरक्षण के लिए, दुर्जनों के विनाश के लिए और धर्म की संस्थापना के लिए प्रत्येक युग में अवतरित होता हूँ।

**मोक्षप्राप्ति -**

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता 4/9)**

हे अर्जुन! मेरा यह जन्म और कर्म है, ऐसा जो पुरूष यथार्थ को जानता है, वह शरीर त्याग करने पर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करता अपितु मुझे ही प्राप्त करता है।

**चातुर्वर्ण्य-**

**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।**
**तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्॥ (गीता 4/13)**

गुणों और कर्मों के विभेद अनुसार ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र, चार वर्ण मेरे द्वारा किये गए। उस चार विभाग का यद्यपि मैं कर्ता हूँ तथापि मैं अकर्ता, और अनश्वर हूँ, यह जानो।

**मुक्ति-**

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।**
**लिप्यतेन स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥'' (गीता 5/10)**

जो पुरूष सभी कर्मों को ब्रह्म में अर्पित करके और आसक्ति को त्यागकर, स्वामी अर्थ को त्यागकर सेवक के समान कर्मों का आचरण करता है, वह कमल के पत्ते की भाँति सरोवर में वर्तमान हुए भी जल द्वारा जैसे लिप्त नहीं होता उसी प्रकार पाप द्वारा लिप्त नहीं होता।

**योगियों का कर्म-**

**''कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।**
**योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥'' (5/11)**

योगी शरीर, मनसा और बुद्धि द्वारा ईश्वर के लिए ही कर्म करते हैं, मेरे फल के लिए नहीं। ऐसे ममत्व बुद्धि के बिना इन्द्रियों द्वारा जो कर्म का आचरण करते हैं, उससे उनका चित्त शुद्ध होता है।

टिप्पणी

### ज्ञान द्वारा मोक्ष-

**''ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।**
**तेषामादित्यज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥'' (गीता 5/16)**

जिनका अज्ञान परमात्मा के ज्ञान द्वारा नष्ट होता है, उनका यह ज्ञान सूर्य यथा समस्त रूप में उत्पन्न को प्रकाशित करता है वैसे परमात्मा के अर्थ तत्व को प्रकाशित करता है।

**''तदबुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।**
**गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥ (गीता 5/17)**

जिनकी बुद्धि परमात्मा में स्थित है, चित्त उसमें ही विचरण करता है, स्थिति सर्वदा उसमें ही सम्भाव होती है, और तत्व को प्राप्त करके वह तत्परायण पुरूष उसी प्रकार के ज्ञान द्वारा कल्मष अर्थात् पाप को नष्ट करते है क्योंकि पुनरागमन नहीं होता है, इस प्रकार के मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यथा श्रुतिप्रमाण भी है- ''न स पुनरावर्तते''। (छां.उ.)

### संन्यासी का स्वरूप-

**अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।**
**स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ (गीता 6/1)**

जो कर्मफल की अनपेक्षा वाले होकर कर्म करता है, वह संन्यासी है, ऐसा कहते हैं। वह ही योगी भी है। अग्नि के त्याग मात्र द्वारा कोई भी व्यक्ति संन्यासी नहीं होता है। कर्मफल के त्याग मात्र द्वारा कोई भी व्यक्ति योगी भी नहीं होता। (अग्निरक्षण गृहस्थ का धर्म है। संन्यास आश्रम का स्वीकार करने के अवसर पर अग्नि का त्याग किया जाता है।)

**''यं संन्याससमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।**
**न ह्यसंन्यास्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥'' (गीता 6/2)**

श्रुति और स्मृति के वेत्ता जिसको संन्यास कहते हैं, उसको ही कर्मयोग मानते हैं। कहाँ से? जिसमें कर्म-संन्यास होता है उसमें कर्मफल विषयक अभिलाषा नहीं होती है, तथा जिसमें कर्म-योग होता है उसमें भी उसे कर्मफल विषयक अभिलाषा नहीं होती है। एवम् कर्मफल विषयक अभिलाषा को त्याग करके यहाँ दोनों के सद्भाव से और उनके सादृश्य से वे दोनों एक ही हैं, अनेक नहीं।

### योगी का स्वरूप-

**''ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।**
**युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥'' (गीता 6/8)**

गुरू द्वारा उपदिष्ट ज्ञान और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जिसका चित्त प्रसन्न होता है, जो निर्विकार है और जो इन्द्रियों का वशीकर्ता है, जिसकी मिट्टी, पाषाण और स्वर्ण में समानबुद्धि होती है, उस प्रकार समाधि में मग्न योगी कहलाते हैं। (शास्त्रोक्त पदार्थों का ज्ञान परिज्ञान है। विज्ञान शास्त्र से ज्ञाताओं का वैसा ही स्वानुभाव विषयीकरण है।)

**प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धिकिल्बिषः।**
**अनेकजन्मसंद्धिस्ततो याति परां गतिम्॥ (गीता 8/45)**

पूर्वोक्त प्रकार से यत्न द्वारा योग में पुनः पुनः प्रवर्तमान योगी के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप रहित होकर वह बहुत जन्मों में शुद्ध होकर मुक्तिरूप परम गति को प्राप्त करता है।

**''तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।**
**कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥'' (गीता 8/)**

कृच्छ चान्द्रायण आदि रूप तप का आचरण करने वाले योगी अधिक है। शास्त्र में पण्डितों द्वारा भी योगी अधिक है। अग्निहोत्र आदि कर्म का आचरण आदि करने वाले योगी भी अधिक है। अतः हे अर्जुन तुम योगी बनो।

भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्णय

**''भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
**अहंकार इत्तीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥ (गीता 7/4)**

पृथिवी, जल, तेज (अनल), वायु, खं (आकाश), मन बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकारों से भिन्न मेरी प्रकृति होती है।

**''अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम्।**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ (गीता 7/5)**

महाबाहो! आठ प्रकार से विभक्त यह मेरी प्रकृति संसारबन्धनात्मिका है। इसके अन्य भी मेरी प्रकृति है। वह ही प्रकृष्ट रूप से सभी की प्राणधारी है। उसके द्वारा ही यह जगत् धारण किया जाता है।

**''एतद्योनति भूतानि सर्वाणीत्युपधारम।**
**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ (गीता 7/6)**

सभी भूत प्रकृति से सम्भव है, ऐसा जानो। यह समग्र जगत् मुझसे ही निकलता है, मुझमें ही लीन हो जाता है।

### ब्रह्म का स्वरूप निर्णय-

**''अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।**
**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥ (गीता 8/3)**

अत्युत्तम, विनाशरहित और सर्वव्यापक ब्रह्म कहा जाता है। उस प्रकार के ब्रह्म का जीव रूप शरीर में अवस्थान अध्यात्म कहलाता है। सभी भूतों की उत्पत्ति और वृद्धि में कारणभूत यज्ञः (देवत के उद्देश से चरूपुरोडाश आदि में द्रव का विसर्जन) कर्म कहा जाता है।

**''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ (गीता 8/13)**

सभी प्रवेश द्वारों (नवद्वार) को बन्ध करके चित्त को हृदय में संस्थापित करके और अपने प्राण को स्थापित करके समाधि को प्राप्त एकाक्षर ब्रह्मवाचक होने के कारण साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ओंकार का उच्चारण करके मुझे ध्यान करते हुए जो मानव शरीर को छोड़ता है, वह उत्कृष्ट गति को प्राप्त करता है।

### गुणत्रय-

**''तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।**
**सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥'' (गीता 14/6)**

हे पापरहित अर्जुन उन तीन गुणों में स्वच्छ होने के कारण प्रकाशक निरूपद्रव सत्व सुख और ज्ञान को उत्पन्न करता है।

**''रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भ्दवम्।**
**तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ (गीता 14/7)**

अर्जुन अप्राप्त वस्तु में अभिलाषा तृष्णा, प्राप्त वस्तु में अभिलाषा आसक्ति है। इनमें जो राग सम्भव होता है, वह यह रजोगुण है। और यह आत्मा कर्मों में प्रवृत्त होता है। और वह प्रवृत्त होकर उसमें बन्ध जाता है।

**''तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।**
**प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥'' (गीता 14/8)**

अर्जुन जो तृतीय गुण तम है वह अज्ञान से उत्पन्न होता है। और यह तमस् सभी प्राणियों की भ्रान्ति को उत्पन्न करता है। इस गुण के द्वारा सभी के अनवधान, जड़ता और निद्रा उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह तम पुरूष को संसार में बाँधता है।

### दो प्रकार के लोक-

**''द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।**
**क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥'' (गीता 15/16)**

इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरूष होते हैं। उसमें से क्षर पुरूष नाम, महवत् आदि भूतों से युक्त सभी कार्यरूप राशि है। और वह विनाशी है। अक्षर माया शब्द से जो व्यवह्यत है वह प्रकृति है। यह निर्विकार द्वारा स्थित कारणभाग है।

**असुरस्वभाव-**

**''प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।**
**न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥'' (गीता 16/7)**

असुर गुण सम्पन्न लोग धर्म में प्रवृत्ति को नहीं जानते हैं और अधर्म से निवृत्ति को। कायिक, वाचिक और मानसिक जो त्रिविध शौच (शुचि) है, वह उनमें सुभव नहीं होता है। यथार्थवादित्व भी नहीं।

**त्रिविध-श्रद्धा-**

**''सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।**
**श्रद्धामयोऽयं पुरूषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥'' (गीता 17/6)**

सात्विक, राजसी और तामसी तीन प्रकार की श्रद्धा होती है। अब उनके स्वरूप को कहते हैं-

**यजन्ते सात्विका देवान्यक्षर क्षांसि राजसाः।**
**प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥ (गीता 17/4)**

वहाँ जिनमें सत्व होता है वे देवों को पूजते है॥ जिनमें रजस होता है, वे यक्षों और राक्षसों को पूजते हैं। जिनमें पुनः तमस् होता है, वे प्रेतों और भूतों को पूजते हैं।

## पाठगत प्रश्न 6.2

1. गीता में कितने अध्याय हैं?
2. श्रीमद्भगवद्गीता में किसने किसको उपदेश दिया?
3. श्रीमद्भगवद्गीता को किसने रचा?
4. श्रीमद्भगवद्गीता में कितने श्लोक हैं?
5. श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारह अध्यायों के नाम क्या हैं?
6. आत्मा नित्य है अथवा अनित्य?
7. योग का एक लक्षण लिखिए।
8. स्थित प्रज्ञ का एक लक्षण लिखिए।
9. चातुर्वर्ण्य किससे उत्पन्न हुए?
10. प्रकृति कितने प्रकार की है? और वे क्या हैं?

11. विश्वरूप दर्शन गीता में किस अध्याय में है?
12. अक्षर पद द्वारा ब्रह्म कहलाता है अथवा जीव?
13. तीन गुण क्या हैं?
14. अग्नि किसको जलाने में समर्थ नहीं है?
15. संन्यासी का स्वरूप क्या है?
16. ''न स पुनरावर्तते'' कहाँ है?
17. प्राणी किससे उत्पन्न होते हैं?
18. चार वर्ण कौन से हैं?
19. महाभारत के किस पर्व में श्रीमद्भगवद्गीता अन्तर्भूत है?
20. वे दो प्रकार के धर्म के लक्षण कौन हैं?
21. ज्ञान के द्वारा मोक्ष कैसे होता है?

## पाठसार

महर्षि बादरायण ने ब्रह्मसूत्र की रचना की। शारीरिक अथवा जीवात्मा का जो स्वरूप उपनिषदों में सुना गया है वही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाले ब्रह्म को प्रस्थान में उपनिषद्वाक्य विषयीकृत करके विचार करते हैं।

उसमें चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। वहाँ पर परम अधिकरण का लक्षण कहकर सूत्र का लक्षण भी कहा गया है।

ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में प्रसिद्ध विषय चतुः सूत्री है। उसमें चार सूत्रों की चर्चा की गई है। जन्माद्यधिकरण के भाष्य में ब्रह्म के दो लक्षण भी व्याख्यात है। शास्त्रयोनित्वात् इत्यादि सूत्र द्वारा ब्रह्म का शास्त्रप्रमाणकत्व भी स्थापित है।

उस पर परम् पादों का सार व्याख्यात है। ब्रह्मसूत्र में निर्दिष्ट आचार्य सूत्रप्रमाण के साथ लिखे गए हैं। स्मृति प्रस्थान को गीता प्रस्थान कहते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में अन्तर्भूत श्रीमद्भगवद्गीता परमपुरूष वासुदेव द्वारा द्वापर में कुरूक्षेत्र में अर्जुन को समुपदिष्ट कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा सात सौ श्लोकों में उपनिबद्ध है। श्रुति में प्रतिपादित अर्थ ही स्मृति प्रस्थान में आलोचित है। गीता में प्रवृत्ति लक्षण और निवृत्ति धर्म को व्याख्यायित किया गया है। आत्मा में स्वरूप निर्णय किया गया है। वहाँ परम् स्थित प्रज्ञ का लक्षण भी किया गया है। सृष्टिक्रम भी व्याख्यायित हैं।

भगवान् का अवतार कब होता है, उसकी भी आलोचना ''यदा यदा हि धर्मस्य'' इत्यादि

श्लोक द्वारा की गई है। चारों वर्णों का स्वरूप निर्णय किया गया है। योगियों के भी कर्म कहकर उनका स्वरूप निर्णय किया गया हैं

संन्यासियों के स्वरूप को कहकर (बताकर) ब्रह्म के भी स्व रूप का विचार किया गया है। वहाँ पर तीन गुण व्याख्यायित हैं। और भी, दो प्रकार के लोकों की व्याख्या तथा तीन प्रकार की श्रद्धा व्याख्यायित हैं न्याय प्रस्थान और स्मृति प्रस्थान से ब्रह्म को स्वरूप को ही जाना जाता हैं ब्रह्म की प्राप्ति होती है अर्थात् मोक्ष होता है। तब इस माया मोह विशिष्ट संसार में पुनः आगमन नहीं होता। तब वह जीवनमुक्त होता है। ब्रह्ममीमांसा ही वेदान्त शास्त्र है। और ब्रह्म उपनिषद् में प्रसिद्ध है। वह स्वरूप एवं विचार रूप में वेदान्तशास्त्र एवं उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र रूप प्रस्थानत्रयी में रहता है। ब्रह्म जिज्ञासुओं के लिए प्रस्थानत्रयी ही विशेषतः अध्ययन एवं विचार के योग्य है।

## पाठान्त प्रश्न

1. न्याय प्रस्थान के विषय में प्रबन्ध लिखिए।
2. गीता प्रस्थान के विषय में प्रबन्ध लिखिए।
3. ब्रह्मसूत्र के चारों अध्यायों का परिचय दीजिए।
4. ब्रह्म के दो प्रकार के लक्षण लिखिए।
5. गीता में योग के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
6. गीता में आत्मा के स्वरूप का विचार कीजिए।
7. ब्रह्मसूत्र में निर्दिष्ट आचार्यों के नाम प्रमाण के साथ लिखिए।
8. स्थितप्रज्ञ के लक्षण पर विस्तार से विचार कीजिए।
9. ब्रह्म के स्वरूप को न्याय-स्मृति प्रस्थान द्वारा विचार कीजिए।
10. गुणत्रय और असुरों के स्वभाव पर विचार कीजिए।
11. भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्णय कीजिए।
12. गीता के अध्यायों के नाम लिखकर 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-6.1**

1. न्याय प्रस्थान द्वारा ब्रह्मसूत्र का ग्रहण होता है।

टिप्पणी

2. ब्रह्मसूत्र को महर्षि बादरायण ने रचा।
3. ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं।
4. ब्रह्मसूत्र में एक सौ पञ्चानवें (195) अधिकरण हैं।
5. ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय का नाम अविरोध अध्याय है।
6. ब्रह्म का लक्षण 'जन्माद्यस्य यत:'' इस सूत्र में प्रतिपादित है।
7. ब्रह्मभाव मोक्ष है।
8. साधन अध्याय के प्रथम पाद में जीव की गत्यागति वैराग्य हेतु प्रदर्शित होती है।
9. अशरीराख्य मोक्ष है उसमें श्रुतिप्रमाण है- ''अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्वस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।''
10. 'जन्माद्यस्य यत:' इसमें यत: पद का अर्थ कारणत्व है।
11. शास्त्रयोनित्वात् इस सूत्र में दो प्रकार का विग्रह होता है- शास्त्र योनि अर्थात् प्रमाण है जिसमें, उसका भाव शास्त्रयोनि उसके कारण शास्त्रयोनित्वात्। अपर विग्रह होता है- शास्त्र का योनि अर्थात् कारण, उसका शास्त्रयोनित्व, उसके कारण शास्त्रयोनित्वात्।
12. ब्रह्मजिज्ञासा इसमें विग्रह होता है 'ब्रह्म की जिज्ञासा'। ब्रह्म में कर्मणि षष्ठी होती है, शेषे षष्ठी नहीं।
13. सूत्र का लक्षण है- ''अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारद्विश्वतोमुखम्। अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदु:।।''
14. अधिकरण का लक्षण है- ''विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तम्। सन्नतिश्चेति पञ्चान्न शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।।''
15. बादरायण आचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र में निर्दिष्ट चार आचार्यों के नाम हैं- काष्णाजिनि, काशकृत्स्नाचार्य, औडूलोमि और आत्रेय।
16. उत्क्रान्तिगति फलाध्याय के द्वितीय पाद में वर्णित है।
17. सांख्य आदि का दुष्टत्व को अविरोध अध्याय के प्रथम पाद में निराकृत किया गया है।
18. ''अस्य महतो भूतस्य नि:वासितमेतद् यदृग्वेद:'' बृहदारण्योपनिषद् में है।
19. ''प्रतिष्ठन्ते परम्परया व्यवहरन्ति येन मार्गेण तत्प्रस्थानम्'' यह उक्ति लोचनकार अभिनवगुप्तपाद की है।
20. तटस्थलक्षण का लक्षण है- यावल्लक्ष्यकालमनवस्थितत्वे सति यत् व्यावर्तकं तदेव तटस्थलक्षणम्।

टिप्पणी



21. तत्तु समन्वयात् इस सूत्र में तत् पद द्वारा ब्रह्म का ग्रहण होता है।

22. वेदान्तवाक्यकुयुमग्रथनार्थत्वात् सूत्राणाम्। वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रैरूदाहृत्य विचार्यन्ते।।'' जन्माद्यधिकरण भाष्य में है।

23. अविरोध अध्याय में तृतीय पाद वियत्पाद है।

24. इस सूत्र में ब्रह्म जिज्ञासा, यह अर्थ प्रतिपादित है। 'अथ' शब्द आनन्तर्यार्थ अर्थ में गृहीत है। 'अतः' शब्द हेतु अर्थ में गृहीत है। ब्रह्मजिज्ञासा, यहाँ ब्रह्म की जिज्ञासा है। ब्रह्म में कर्मणि षष्ठी है, शेषे षष्ठी नहीं।

## उत्तर-6.2

1. गीता में अट्ठारह अध्याय हैं।

2. श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश दिया।

3. श्रीमद्भगवद्गीता को महर्षि वेदव्यास ने रचा।

4. श्रीमद्भगद्गीता में सात सौ (700) श्लोक हैं।

5. श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारहवें अध्याय का नाम ''मोक्षसंन्यासयोग'' है।

6. आत्मा नित्य है।

7. योग का एक लक्षण है- ''योगस्थ कुरू कर्माणि सन्न त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।''

8. स्थितप्रज्ञ का एक लक्षण होता है- ''यदा संहरते चायं कूर्मोऽन्नानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।''

9. गुणकर्म के विभाग से चार वर्ण उत्पन्न हुए।

10. प्रकृति आठ प्रकार की होती है। और वे हैं- पृथिवी, जल, अनल (अग्नि), वायु, खं (आकाश), मन, बुद्धि और अहयार।

11. विश्वरूप दर्शन गीता में ग्यारहवें अध्याय में है।

12. अक्षर पद द्वारा ब्रह्म को बताया गया है, न कि जीव को।

13. तीन गुण हैं- सत्व, रजस्, तसम्।

14. अग्नि आत्मा को नहीं जला सकती है।

15. संन्यासी स्वरूप है- अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निं चक्रियः।।

16. ''न स पुनरावर्तते'' यह मन्त्र छान्दोग्योपनिषद् में है।

17. प्राणीजन आहार से उत्पन्न होते हैं।

18. चार वर्ण होते हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

19. महाभारत के शान्तिपर्व में श्रीमद्भगवद्गीता अन्तर्भूत है।

20. दो प्रकार के धर्म लक्षण और वे हैं- प्रवृत्ति लक्षण धर्म और निवृत्ति लक्षण धर्म।

21. ज्ञान द्वारा मोक्ष होता है, उसमें में यह भगवान् का वचन प्रमाण होता है- ''ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।।

**।।षष्ठ पाठ समाप्त।।**

# 7

# चार्वाक दर्शन

## प्रस्तावना

इस पाठ में दर्शन के सामान्य ज्ञान के अनन्तर परम्परा भेद के परिणामस्वरूप कुछ विशेष ज्ञान की आलोचना की गई है। आदि में सर्वप्रसिद्ध चार्वाक दर्शन का आलोचन करते हैं। चार्वाक का उद्भव कैसे हुआ, इस विषय में हम जानेंगे। दसवीं कक्षा के लिए यह पाठ विरचित है। सरलता से विषय उपस्थापित किया गया है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- चार्वाक दर्शन के उद्भव को जान पाने में;
- चार्वाक मत में प्रमा, प्रमेय, प्रमाण को जान पाने में;
- सम्प्रदाय के आचार्यों के परिचय को जान पाने में;
- चार्वाक दर्शन के ग्रन्थों का परिचय जान पाने में;
- चार्वाक दर्शन के प्रसिद्ध श्लोकों को जान पाने में;
- चार्वाकों के गुरूत्व का बोध कर पाने में।

## 7.1 भूमिका

चार्वाक दर्शन कुछ भिन्न दर्शन है। देवगुरू बृहस्पति ने ही लोगों को मोहित करने के लिए प्रिय वचनों द्वारा चार्वाक मत का उपदेश दिया, ऐसा सुना जाता है। चार्वाक दर्शन

का मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। चार्वाक दर्शन धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य अथवा आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता है। चार्वाक भोगवाद को विशेषत: स्वीकार करते हैं। किन्तु इससे वे भोग में तत्पर और दुराचारी हैं, ऐसा निर्णय नहीं करना चाहिए। अहिंसा, शान्ति प्रियता, युद्ध विशेष, इत्यादि अनेक अंश उनके द्वारा भी प्रतिपादित हैं। इस दर्शन का सूत्रकार बृहस्पति नामक आचार्य है। इस दर्शन का प्रचारक चार्वाक नामक दैत्य था, अत: इस दर्शन की चार्वाक दर्शन के रूप में ख्याति है। चार्वाक दर्शन के अनुसार मृत्यु ही मोक्ष है। मृत्यु के पश्चात् कुछ भी नहीं है, ऐसा वे कहते हैं। वे परलोक और पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं। और वे पूछते हैं- ''भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:''। उनके लिए शरीर ही आत्मा है, शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। यह चार्वाक दर्शन का लोक में बहुत प्रचलित होने के कारण लोकायत दर्शन नाम प्राप्त है। प्रत्यक्ष उनका एकमात्र प्रमाण है।

**''यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् नास्ति मृत्योरगोचर:।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:॥''**

लोकगाथा के अनुसार चार्वाक ने कार्य किया। नीति-काम शास्त्र के अनुसार अर्थ और काम ही पुरूषार्थ माने गए तथा पारलौकिक अर्थ को छिपाकर चार्वाक मत अनुवर्तित हुए, ऐसा अनुभूत होता है। (स.द.संग्रह) पृथिवी-अप-तेज-वायु-रूपात्मक शरीर ही आत्मा है, शरीर से अतिरिक्त आत्मा नहीं है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। शरीरी के लिए अपेक्षित अर्थ और काम पुरूषार्थ हैं। वेद कल्पित है, अत: प्रमाण नहीं हो सकता, ऐसा चार्वाक मानते हैं।

क) पृथिवी-अप-तेज-वायु तत्व हैं।

ख) उनके कारण चैतन्य है।

ग) चैतन्यविशिष्ट शरीर ही पुरूष है।

घ) काम, अर्थ पुरूषार्थ है।

ङ) मृत्यु मोक्ष है।

इसीलिए-

**''देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानात् मुक्तिरिष्यते।**
**अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलनिला:।**
**चतुर्भ्य: खलु भूतेश्यश्चैतन्यमुपजायते॥ (सं.द.सं.)**

तत्वज्ञानियों के लिए सृष्टि का रहस्य अनुसन्धान का विषय होता है। सभी दार्शनिक विचारधाराओं में इस विषय का विश्लेषण किया गया है। यथा सभी मानव शरीर में जातिगत समानता विद्यमान होने पर भी आकृतिगत भेद होता है वैसे ही बुद्धि की विषमता से सृष्टि तत्व के एक सत् होने पर भी पृथक बुद्धि का विषय होने के कारण विविध रूपों में ज्ञात हो सकता है। अत: चार्वाक मत असम्यक् है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

दर्शन शास्त्र में प्रमेय तत्वों के सम्बन्ध में यह तथ्य घटित होता है। सृष्टि-स्रष्टा-प्रकृति ये तत्व विविध दर्शनों में विविध दृष्टि से विचार किये गए हैं। तत्व साक्षात्कार की प्रक्रिया में चिन्तक चिन्तन करके उपलब्ध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। एवम् विविध चिन्तकों के निष्कर्ष में पार्थक्य दिखता है। अत: दार्शनिकों का एक ही विषय में मतान्तर स्वाभाविक है। भारतीय दर्शन में एक सम्प्रदाय विशेष उपर्युक्त मत से सहमत नहीं है। चार्वाक का विचार है कि सृष्टि का जो स्थूल रूप दिखता है, वही सत्य है। दृश्यमान स्वरूप की अपेक्षा कोई भी अन्यत तत्व सूक्ष्म रूप से सृष्टि के मूल में है, यह विश्वास योग्य नहीं है। क्योंकि अदृष्ट सूक्ष्म तत्व की सत्ता में भी कोई प्रमाण है, ये भी नहीं कहा जा सकता। और बुद्धिभेद से ये स्थूलबुद्धि दार्शनिक अपनी स्थूल बुद्धि द्वारा जो भी जानने में सक्षम होते हैं, वही मूलतत्व स्वीकर करते हैं। यह संशय अथवा सन्देह वाद है।

यद्यपि महाभारत काल से पूर्व भी विद्यमान था तथापि वर्तमान काल में भी भ्रम को उत्पन्न करता है। वैदिक दर्शन इससे क्षतिग्रस्त हुआ। यद्यपि महाभारत काल में भगवद्गीता के माध्यम से वैदिक दर्शन का पुन: प्रतिष्ठापन विहित है, तथापि वेदविरोधी विचारों का मूलोच्छेदन नहीं हुआ। वैदिक दर्शन के ऊपर उनके वेदविरोधी आचार्यों के प्रहार सतत् होते रहे। अनुमान की अपेक्षा शब्द प्रमाण द्वारा ही सृष्टि के तत्वों का प्रामाण्य ग्रहण किया जाता है। सृष्टि के तत्वों का प्रामाण्य अनुमान की अपेक्षा शब्द प्रमाण द्वारा सरलता से ग्रहण होता है। वेद शब्द प्रमाण रूप हैं। वैदिक वाक्यों के द्वारा ही दर्शन में उक्त जीव-जगत्-ईश्वर-ब्रह्म आदि तत्वों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। फिर भी अवैदिक दर्शनों में वेदों का प्रामाण्य स्वीकृत नहीं है। अवैदिक दर्शनों में चार्वाक-जैन-बौद्ध प्रमुख हैं। इनमें भी जैन-बौद्ध की तत्वचिन्तन में सूक्ष्म दृष्टि है। चार्वाक तो पूर्ण रूप से स्थूल दृष्टि युक्त होते हैं। दर्शनशास्त्र के इतिहास में नास्तिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन का प्रथम स्थान है। इससे चार्वाक दर्शन की प्राचीनता भी सिद्ध होती है। इसका प्राचीनता के द्वारा यह भी स्पष्ट होता है की जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे उसकी संस्कृति में आचार-विचार का परिष्कार हुआ। सभ्यता के विकास के साथ सृष्टि विज्ञान आदि के दार्शनिक सिद्धान्त भी सूक्ष्म तत्व के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुए किन्तु सभ्यता के प्रारम्भ में दर्शनशास्त्र के स्थूल तत्व प्रचलित थे, ऐसा भी माना जा सकता है। यदि चार्वाक स्थूल विचार के पर्यन्त ही आत्मा के चिन्तन को श्रेयस्कर मानते हैं तो क्या दोष है?

वस्तुत: चार्वाक की यह हठधर्मिता तो उसके मत के पुरातन अस्तित्व को द्योतित करती है। चार्वाक की स्थूल दृष्टि की मान्यता का आधार क्या हो सकता है। दर्शन के तात्विक विश्लेषण से उसका निर्धारण करना चाहिए। प्रारम्भ में यह दर्शन लोकायत नाम से प्रसिद्ध था। लोकायतों का परपक्ष खण्डन के अतिरिक्त अन्य कोई सिद्धान्त नहीं था। वे लोकायत और वेदनिन्दक थे। अन्य में भी तात्कालिक विचारक इनसे खिन्न थे। जैन और बौद्ध द्वारा भी इनकी निन्दा विहित है। चार्वाक दर्शन, इस नामकरण में कोई भी सुदृढ़ प्रमाण नहीं है। आचार्य बृहस्पति के शिष्य चार्वाक थे, अत: ये भी चार्वाक कहे जाते हैं।

टिप्पणी

परलोक-पाप-पुण्य आदि के चर्वण के कारण भी ये चार्वाक हुए। इनके वाक् (वचन) चारू हैं, इसीलिए ये चार्वाक कहे जाते हैं। देवगुरू बृहस्पति ने ही इस मत का प्रवर्तन किया। बृहस्पति प्रवर्तित इस दर्शन में स्वभाववाद-यदृच्छावाद-नियतिवाद-कालवाद और भौतिकवाद अवधारणा के रूप में विकसित हैं। इनमें भी स्वभाव वाद चार्वाक के अतीव सन्निकट है। कारण है कि स्वभाववाद में कारण-कार्यभाव की आवश्यकता ही नहीं है। कालवाद में भाग्य का महत्व स्वीकृत है। नियतिवाद में आकस्मिकता के ग्रहण का विधान है। आकस्मिक घटनाओं के साथ यदृच्छावाद का ऐक्य चार्वाक द्वारा कहा गया है। चार्वाक सिद्धान्त का उल्लेख रामायण-महाभारत में भी उपलब्ध है। वाल्मीकि रामायण में लोकायतों का प्रसंग है। लोकायत मिथ्यावादी थे, ऐसा भी जानते हैं। महाभारत में देह की आत्मा है, इस सिद्धान्तवादी एवं लोकायत के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के प्रसंग में चार भूतों द्वारा चैतन्य की उत्पत्ति और प्रत्यक्ष मात्र का प्रामाण्य प्रतिपादित है। चार्वाक दर्शन का मूलग्रन्थ सूत्र शैली में उपनिबद्ध था। इसकी रचना आचार्य बृहस्पति द्वारा विहित है। इसके तथ्य का उल्लेख प्राप्त है, किन्तु वह सूत्र ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

डॉ. उमेश मिश्र द्वारा चार्वाक दर्शन के पन्द्रह सूत्र विविध भाष्यग्रन्थों और टीकाग्रन्थों द्वारा उद्धृत है। इसके अतिरिक्त 'भागुरि' कृत टीकाग्रन्थ का भी उल्लेख इतिहासकार करते हैं। भट्ट जयराशि कृत तत्वोपल्पवसिन्धु नामक अन्य ग्रन्थ के विषय में भी विज्ञात है। इस ग्रन्थ में चार्वाक सिद्धान्तों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। भारतीय दर्शन परम्परा में छः नास्तिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन अन्यतम दिखता है। इस दर्शन की महत् प्रसिद्धि थी। वह प्रायः सभी शास्त्रों में पूर्वपक्ष के रूप में अग्रगण्य होने के कारण ही जाना जाता है। वैदिक युग हुए भारत में प्रियवाक्य के कथन का निर्देश था। यद्यपि भारतवर्ष मूलतः अध्यात्मवाद के लिए प्रसिद्ध है तथापि जड़वादी चार्वाक ने मनोहर प्रियवाक्यों द्वार तर्कसभा में बहु ताडन प्राप्त किया।

## 7.2 सम्प्रदाय

विभिन्न दर्शन का कोई प्रवर्तक होता है। परन्तु चार्वाक दर्शन का कोई प्रवर्तक है, इस विषय में महान् विवाद है। तथापि किसी के द्वारा उक्त है कि देवगुरू बृहस्पति ही इस दर्शन के प्रचारक हैं। सर्वदर्शनसंग्रह में माधवाचार्य द्वारा कही गयी है जो बृहस्पति मत के अनुसार और नास्तिक शिरोमणि चार्वाक द्वारा भी है। यह बृहस्पति कौन है, उस विषय में स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं है। किसी के द्वारा कहा गया है कि चारू वाक् का अर्थ है मधुर वचन। अतः जो मधुर वचनों द्वारा सभी का मन हरते है, वे चार्वाक हैं। चर्व धातु का अर्थ चर्वण (चबाना) है, यह स्वीकार करके कुछ कहते हैं जो भोजन के तत्व का प्रचार करते हैं, वे चार्वाक हैं।

## 7.3 चार्वाक के विविध विशेषण

चार्वाक वैतण्डिक कहे जाते हैं। चार्वाक वितण्ड-निपुण हैं। वैतण्डिक का लक्ष्य केवल

टिप्पणी

परमत खण्डन अर्थात् अन्य के मत का खण्डन है। वितण्डयते व्याहन्यते परपक्षोऽनया, इस व्युत्पत्ति से वितण्डा शब्द निष्पन्न है। अत: जो केवल परपक्ष के खण्डन में प्रवृत्त होते हैं, वे वैतण्डिक चार्वाक हैं।

चार्वाक का अपर नाम लोकायतिक भी है। लोक में आयत अर्थात् विस्तृत जो है वह लोकायत है। लोकायत को जो स्वीकार करते हैं, वे लोकायतिक हैं। इन्द्रिय सुख ही पुरूषार्थ है, ऐसी उनकी वाणी जगत में सभी लोगों को आकर्षित करती है। अनेक लोगों के चित्त को आकर्षित करती है, इस कारण से चार्वाक लोकायतिक हैं। मधवाचार्य ने चार्वाक मत को लोकायत मत कहा। वह जैसे उसके चार्वाक मत का अपर अन्वर्थ लोकायत है। चार्वाक नास्तिक हैं। जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक हैं। जो उसी प्रकार वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक हैं। चार्वाक वेद की निन्दा करते हैं, अत: वह नास्तिक है, ऐसा प्रसिद्ध है।

### पाठगत प्रश्न 7.1

1. चार्वाक का अपर नामधेय क्या है?
2. चार्वाक वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं अथवा नहीं?
3. चार्वाक किन दो पुरूषार्थों को मानते हैं?
4. चार्वाक के गुरू कौन?
5. चार्वाक दर्शन में पुरूष क्या है?
6. चार्वाक के मत में सुख का स्वरूप क्या है?
7. चार्वाक दर्शन में कितने तत्व हैं?
8. चार्वाक मत में आत्मा का स्वरूप क्या है?
9. वैतण्डिक कौन है?
10. सर्वदर्शन संग्रह के लेखक कौन हैं?

## 7.4 चार्वाक मत में प्रमा और प्रमाण

चार्वाक दर्शन में प्रमेय तत्वों का स्थूल स्वरूप ही वास्तविक रूप में स्वीकृत है। अत: स्थूल पदार्थों के ज्ञान के लिए उसमें प्रत्यक्ष ही उपयुक्त माना गया। जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, वे काल्पनिक ही होती हैं, ऐसा न्याय द्वारा प्रत्यक्ष के ही प्रामाण्य को चार्वाक के मत में कहा गया है। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, इन पाँचों के विषयों का ज्ञान होता है, अत: पाँच ही सत्तात्मक पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त

कोई भी विषय कल्पनामात्र प्रतीत होता है। और उसकी प्रामाणिकता नहीं होती है। सभी भारतीय दर्शनों में इन्द्रियातीत और परोक्ष पदार्थों के ज्ञान के लिए अनुमान का प्रामाण्य स्वीकृत है किन्तु चार्वाक मत में अनुमान का प्रामाण्य नहीं है। क्योंकि अनुमान से उत्पन्न ज्ञान केवल सम्भावनात्मक ही होता है, निश्चयात्मक नहीं। सम्भावना सर्वदा सत्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। चार्वाक द्वारा कार्यकारण भाव भी स्वीकृत नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष सुख-दु:ख का कारण अप्रत्यक्षरूप में कल्पित पाप-पुण्य आदि नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई बुद्धिजीवी और परिश्रमी मनुष्य केवल पूर्व में किए पुण्य के बल से ही सुखी होता है। अथवा कोई बुद्धिहीन और आलसी पूर्व में किए पुण्य के अभाव में अथवा पूर्वकृत पाप के द्वारा ही दु:खी होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मानव बुद्धि में न्यून-अधिकता के कारण कार्य प्रवृत्त होकर स्वभावत: कभी सुखी कभी दु:खी होता है, ऐसा चार्वाक कहते हैं।

पाप-पुण्य के लिए सत्-असत् कर्मों की व्याप्ति नैयायिक भी स्वीकार करते हैं किंतु उनकी यह व्याप्ति सिद्ध नहीं है। क्योंकि किसी भी कार्य की उत्पत्ति में कोई भी कारण नहीं होता है। स्वभाव से ही कार्य की निष्पत्ति होती है। अन्यथा काँटों में दिखने वाली तीक्ष्णता का क्या हेतु है, इस तत्वान्वेषण में कोई हेतु अवश्य उपलब्ध होता। और वे हेतु प्राप्त नहीं ही होता है, अत: कार्यकारणभाव की सिद्धि में भी हेतु का अभाव दिखता है। सृष्टि-प्रलय में भी कार्यकारणभाव नहीं है। चार भूतों के आनुपातिक सम्मिश्रण के कारण ही जगत् स्वयं ही अस्तित्व को प्राप्त करता है। और उसके आनुपातिक स्थिति में विलय से प्रलय होता है। किन्तु जगत् का आविर्भाव-तिरोभाव एवं प्राणी-पदार्थों का संयोग और वियोग स्वाभाविक ही हैं। कार्य-कारण में साहचर्य की सिद्धि के अभाव से अनुमान का प्रमाण नहीं है, कार्यकारण-भाव भी असिद्ध है। चार्वाक दर्शन में शब्द भी प्रमाण द्वारा स्वीकृत नहीं है। कुछ लोग सर्वथा सत्य ही बोलते हैं, इस प्रकार उनकी सत्यनिष्ठा पर निर्भर योग्यता नहीं है। शब्द भी पुन: अनुमान तुल्य है। वेदों का भी प्रामाण्य नहीं है, क्योंकि वेदों में भी अनेक वेद विरोधी वचन प्राप्त होते हैं। अनेक निरर्थक शब्द भी वेदों में प्रयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त वेदों में इस प्रकार के पदार्थों का वर्णन भी प्राप्त होता है, जिनका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। इस प्रकार परस्पर विरोधी, निरर्थक और काल्पनिक विषयों का निरूपण जिनमें विहित हो, उन वेद का कैसे प्रामाण्य हो। वैदिक कर्मकाण्डों द्वारा यह प्रतीत होता है कि कुछ धूर्तों द्वारा ही लोक प्रवचन अथवा स्वार्थ साधन के लिए वेदों की रचना विहित है। इसीलिए शास्त्र में-

**त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड-धूर्त-निशाचरा:।**
**जर्फरी-तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वच: स्मृतम्॥**

## 7.5 प्रत्यक्षैक प्रमाणवाद

प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्। प्रमाण प्रमा अर्थात् ज्ञान का करण है। प्रमा का अर्थ यथार्थ

टिप्पणी



ज्ञान है। चार्वाक के मत में संशय, विपर्यय शून्य ज्ञान ही प्रमा है। चार्वाक के मत में प्रमा का करण प्रत्यक्ष ही है, अन्य नहीं। चार्वाक के मत में एक ही प्रमाण 'प्रत्यक्ष प्रमाण' हैं मधवाचार्य ने कहा कि - ''प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानदेरनन्नकारेण प्रामाण्याभावात्। और कुछ प्रत्यक्ष के सभी प्रमाणों में ज्येष्ठ होने के कारण प्रत्यक्ष ही प्रमाण होता है। अनुमान आदि का प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भाव प्रत्यक्ष के अधीन होने से होता है।

चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमान आदि प्रमाणों का ग्रहण नहीं होता है। मधवाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में कहा है कि प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेः अनन्नीकारेण प्रामाण्याभावात् इति। जिसकी उपलब्धि नहीं होती है, वह नहीं है। विपरीत द्वारा जिसकी उपलब्धि होती है, वह है। इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष में प्राप्त वस्तुओं का ही अस्तित्व होता है। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न सम्यक् अपरोक्ष अनुभव ही प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष अपर की अपेक्षा नहीं करता, अतः अपरोक्ष है। अतः संशय शून्य और विपर्यशून्य प्रत्यक्ष ही प्रमा है। और इस प्रमा का करण ही प्रमाण है।

चार्वाक कहते हैं कि प्रत्यक्ष के श्रेष्ठत्व के विषय में कोई भी वितर्क नहीं है। यह तो सत्य ही है कि सभी भारतीय दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष प्रमाण का श्रेष्ठत्व स्वीकार किया है। अवितर्कित सर्वजन्य मान्य प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। दृश्यमान वस्तु के विषय में प्रश्न अथवा शंका कैसे हो?

जो अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण द्वारा स्वीकार करते हैं, वे भी प्रत्यक्ष का ही जय गान करते हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष ही अनुमान आदि का उपजीव्य है। अनुमान, उपमान और शब्द प्रत्यक्ष के अधीन हैं। क्योंकि वह्नि-धूम के साहचर्य के प्रत्यक्ष द्वारा ही वर्तमान धूम को देखकर वह्नि का अनुमान किया जाता है। अतः अनुमान भी प्रत्यक्ष के अधीन है। क्योंकि साहचर्य का प्रत्यदि न हो तो अनुमान असम्भव होगा। उसी प्रकार गवयत्व विशिष्ट पशु में गोसादृश्य को देखकर गवय शब्द के वाचवत्य का निर्णय ही उपमिति है। उपमिति में अज्ञात पदार्थ पर ज्ञात पदार्थ के सादृश्य में प्रत्यक्ष आवश्यक है। उस सादृश्य प्रत्यक्ष के कारण ही अज्ञात पदार्थ के साथ ज्ञात पदार्थ का निश्चयात्मक अनुभव होता है। अतः प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है। और शब्द प्रमाण भी प्रत्यक्ष के अधीन है। आप्त व्यक्ति का वाक्य ही शब्द प्रमाण है। जो यथार्थवक्ता है वह ही आप्त है। अतः चार्वाक का मत सत्य है।

## 7.6 चार्वाक दर्शन की तत्व मीमांसा

चार्वाक दर्शन के अनुसार तत्वों का स्थूल दृष्टि भूत स्वरूप ही यथार्थ है। उन स्थूल तत्वों के स्वरूप-लक्षण-प्रयोजन आदि विचार चार्वाक दर्शन में विशद रूप से विहित हैं। चार्वाक दर्शन के अनुसार पृथ्वी-जल-वायु और तेज, ये चार ही प्रमेय पदार्थ होते

टिप्पणी

हैं। इनके द्वारा ही चार स्थूल ब्रह्माण्ड की रचना विहित है। परवर्ती चार्वाकों के द्वारा आकाश, मन, प्राण आदि का भी प्रमेय पदार्थों में ही परिगणन किया गया। इस प्रकार अनुमान किया जाता है कि अतिस्थूलवादी चार्वाक अतिप्राकृत थे। इन्हीं मूल तत्वों द्वारा इस दृश्यमान जगत के शरीर की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति के क्रम-सन्दर्भ में चार्वाक मौन हैं। सृष्टि में किसी भी अदृष्ट की कहीं भी कारणता नहीं है।

अतएव यह जगत् चार भूतों के आनुपातिक-समन्वय का आकस्मिक परिणाम है। जीवन के सम्बन्ध में भी चार्वाकों का यही सिद्धान्त है कि शरीर के अभाव में चैतन्य नहीं रहता है। शरीर की सत्ता में ही चैतन्य की सत्ता सिद्ध होती है। इस प्रकार शरीर ही चैतन्य रूप आत्मा है, यह स्पष्ट होता है। यथा पदार्थों के उचित सम्मिश्रण के परिणाम स्वरूप किण्व आदि द्रव्य से मदशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार पृथिवी आदि चार भूतों के संयोग से चैतन्य स्वत: ही उत्पन्न होता है। चार्वाक दर्शन के विकासक्रम में स्थूल से सूक्ष्म के प्रति तत्वचिन्तन की प्रवृत्ति हुई। अत: कुछ परवर्ती चार्वाकों के द्वारा इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं, इस सिद्धान्त को उपस्थापित करने के लिए देहात्मवाद का खण्डन किया। कुछ चार्वाकों के द्वारा प्रामाण्यवाद की भी स्थापना की गई। कुछ चार्वाक भी मन ही आत्मा है, ऐसा स्वीकार करते हैं। तथापि चार्वाक मत के अनुयायियों की स्थूल दृष्टि अन्तर्मुखी नहीं होती है।

## 7.7 सृष्टि प्रक्रिया

चार्वाक जड़ पदार्थ की सत्यता को स्वीकार करते हैं। इनके मत में इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा केवल पृथिवी, आप, तेज, वायु, इन चारों की ही उपलब्धि होती है। अखिल जगत् के चारों के मिश्रण द्वारा ही सृष्टि होती है। आकाश के अनुमान द्वारा गम्य होने से स्वीकार्य नहीं है। जीव इन भूतों के संमिश्रण होने पर उत्पन्न हुआ। चार्वाक परमाणु को नहीं स्वीकार करते हैं। परमाणु के प्रत्यक्ष द्वारा अदृश्य होने के कारण। स्थूल, अवयव परमाणु से सृष्टि होती है। अकस्मात् ही होता है, जीव किसी कार्य की अपेक्षा नहीं है। चारों भूतों के समन्वय से चैतन्य उत्पन्न होता है। चैतन्य रूप आगन्तुक धर्म जड़ देह का आर्विभाव काल में आता है, विनाशकाल में जाता है। जगत् के कारण रूप में ईश्वर के अंगीकार की आवश्यकता नहीं है। यथा किण्व आदि द्वारा मदशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार चैतन्य उत्पन्न होता है। शरीर के नाश होने पर चैतन्य का विनाश होता है।

## 7.8 देहात्मवाद

चार्वाक के मत में देह ही आत्मा है। प्रत्यक्ष वेद्य होने के कारण देह के अतिरिक्त

टिप्पणी

कोई भी आत्मा नहीं है। चैतन्य विशिष्ट देह आत्मा है। अतः देह के विनाश होने पर आत्मा का विनाश होता है। जहाँ चैतन्य का प्रत्यक्ष होता है, वहाँ स्थूल शरीर दिखता है। स्थूलोहं (मैं मोटा हूँ), मम शरीरम् (मेरा शरीर) इत्यादि व्यवहार राहोः शिरः (राहू का सिर) इत्यादि के समान औपचारिक है।

## 7.9 मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष के साधन

दर्शन शास्त्र का मोक्षरूप फल में ही तात्पर्य है। चार्वाक दर्शन में भी मोक्ष का स्वरूप कहा गया है। कण्टक आदि से उत्पन्न दुःख ही नरक है। लोक सिद्ध राजा परमेश्वर है। देह का नष्ट होना मोक्ष है। स्त्रियों के आलिंगन आदि से उत्पन्न सुख ही पुरूषार्थ है। आत्मा नहीं है। परलोक नहीं है। अपवर्ग नहीं है। अग्निहोत्र आदि यज्ञ का फल नहीं है। और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में अर्थ और काम पुरूषार्थ है। शरीर के उच्छेद (नष्ट) होने के पश्चात् उसका रक्षण ही मोक्ष साधन है।

## 7.10 चार्वाक सम्प्रदाय में प्रसिद्ध श्लोक

**यावज्जीवेत् सुखं जावेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥**

**अन्वय -**

यावत् जीवं सुखं जीवेत्। मृत्योः अगोचरः नास्ति (किमपि)। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनः कुतः आगमनम्।

**साधारण अर्थ-**

चार्वाक दर्शन में यह श्लोक प्रसिद्ध है। जिस काल पर्यन्त तक जीव की आयु हो उस काल पर्यन्त तक सुख से जीवन यापन करें। क्योंकि देह (शरीर) का विनाश ही मोक्ष है। वहाँ मृत्यु के बाद कुछ भी प्रत्यक्ष गोचर नहीं है। मृत्यु ही जीव की अन्तिम सीमा है। अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भस्मीभूत शरीर पुनः जन्म नहीं होता है। अतः शरीर के सुख के लिए ऋण लेकर घृत का पान करें। परलोक कुछ भी नहीं है। शरीर के नाश होने पर ही सभी समाप्त हो जाता है।

**सन्धिविच्छेद-**

मृत्योरगोचरः - मृत्योः - अगोचरः

पुनरागमनम् - पुनः - आगमनम्

जीवेन्नास्ति - जीवेत् - नास्ति

यावज्जीवं - यावत् - जीवम्

अन्ननालिन्ननाज्जन्यसुखमेन पुमर्थता।

कण्टकादिव्यथाजन्यं दु:खं निरय उच्यते।।

**अन्वय:-**

**अन्ननालिन्ननात् जन्यसुखम् एव पुमर्थता भवति।**
**कण्टकादिव्यभाजन्यं दु:ख निरय उच्यते।।**

**साधारण अर्थ:-**

चार्वाक के मत में स्त्री आदि के स्पर्श से उत्पन्न सुख ही पुरूषार्थ होता है। वह शरीर भोग का नाम ही सुख है। पुरूषों के द्वारा जगत् में वही प्रार्थना की जाती है। सभी की सुख वासना होती है। कण्टक आदि व्यथा से उत्पन्न दु:ख नरक है। आदि पद से जरा-व्याधि का ग्रहण किया गया है। इहलोक को छोड़कर अन्यत्र सुख नहीं है। अतएव यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, यह प्रवाद भी चार्वाक सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध है। और कुछ शरीर के क्लेश ही कष्ट है। अत: सभी प्राणी शरीर के क्लेशों के नाश के लिए उन-उन वस्तुओं को स्वीकार करते हैं।

**लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशो ''नापर: स्मृत:।**
**देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते।।**

**अन्वय :-**

लोकसिद्धो राजा (एव) परेशो भवेत्। न अपर: परेश: स्मृत:। देहस्य नाशो मुक्ति:। न तु ज्ञानात् मुक्ति: इष्यते।

**साधारण अर्थ:-**

चार्वाक ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है। क्योंकि वे परलोक को स्वीकार नहीं करते हैं। और कोई ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होता है। और भी, राजा ही जगत् में सभी प्रजा का पालन तथा रक्षण करता है। अतएव राजा ही इस जगत् का कर्ता, अलौकिक ईश्वर नहीं। और देह का विनाश ही मुक्ति है। जीव की अन्तिम गति है। उससे अन्य कुछ भी जीव को प्राप्तव्य नहीं है। और भी, जैसे वेदान्ती, सांख्य आदि के द्वारा ज्ञान से मोक्ष स्वीकार किया जाता है, वैसे चार्वाक स्वीकार नहीं करते हैं। उनके ज्ञान से मुक्ति नहीं होती।

**अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिला:।**
**चतुर्भ्य: खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते।।**

टिप्पणी

**अन्वय :-**

**अत्र चत्वारि भूतानि भवन्ति भूमिवार्यनलानिलाः च।**
**चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यः चैतन्यम् उपजायते॥**

**साधारण अर्थः-**

चार्वाक चार भूत स्वीकार करते हैं। इन भूतों का संम्मिश्रण होने सृष्टि प्रक्रिया होती है। आकाश के अदृश्य होने के कारण स्वीकार नहीं है। और भी, जैसे किण्व आदि से मदशक्ति के समान यहाँ भी सृष्टि प्रक्रिया में जड़ भूतों द्वारा चैतन्य उत्पन्न होता है। जीव की उत्पत्ति इसी प्रकार से होती है। यहाँ ईश्वर कारण नहीं होता। जड़ द्वारा ही जीव की सृष्टि होती है। न स्वर्ग नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥

**अन्वयः-**

न स्वर्गः अस्ति। न अपवर्गः अस्ति। न वा आत्मा पारलौकिकः अस्ति। वर्णाश्रमादीनां क्रिया नैव फलदायिका अस्ति।

**साधारण अर्थः-**

स्वर्ग नामक कोई भी स्थान नहीं है। और ना ही अपवर्ग रूप फल है। आत्मा शरीर रूप है, पारलौकिक नहीं। शरीर से भिन्न कोई भी आत्मा नहीं होता है। और भी, वेद विहित कर्म के करण से जो स्वर्ग आदि रूप फल प्राप्त होता है, वह भी मिथ्या है। लोकयातिक वेद के मिथ्यात्व को स्वीकार करते हैं। अतः वेदविहित कर्म भी मिथ्या है। अतः मिथ्यारूप कर्म से कोई फल प्राप्त नहीं होता है। देहभोग आदि रूप सुखफल ही अन्तिम फल के रूप में कल्पित है।

## 7.11 चार्वाक ग्रन्थ समूहों का परिचय

चार्वाक दर्शन यद्यपि जगत् में बहुत प्रसिद्ध है तथापि उनका प्रमाणभूत ग्रन्थ रूप में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। मधवाचार्य के सर्वदर्शनसंग्रह में उनके दर्शन की कुछ रूपरेखा है। परन्तु विभिन्न दर्शनग्रन्थों में पूर्वपक्ष के रूप में चार्वाक के वचन प्राप्त होते हैं। यथा न्यायकुसुमाञ्जलि ग्रन्थ में, न्यायमञ्जरी ग्रन्थ में, ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थ में, षड्दर्शनसमुच्चय ग्रन्थ में पूर्वपक्ष के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के द्वारा ही चार्वाक दर्शन का मत स्पष्ट ज्ञात होता है।

### पाठगत प्रश्न 7.2

1. चार्वाक मत में कितने प्रमाण हैं?

टिप्पणी

2. चार्वाक के मत में प्रमा क्या है?
3. चार्वाक के मत में अपवर्ग है अथवा नहीं?
4. चार्वाक के मत में परलोक है अथवा नहीं?
5. चार्वाक के मत में दु:ख का स्वरूप क्या है?
6. देहात्मवाद क्या है ?

## पाठसार

चार्वाक नास्तिक होते हैं। वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में स्थूल पदार्थ ही संसार में होते हैं। चार्वाकों का एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनुमान आदि का तो प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भाव होता है। चार्वाक कहते हैं शरीर ही मोक्ष है। शरीर का नाश होना मोक्ष है। शरीर के अतिरिक्त आत्मा नहीं है। चार्वाक देहात्मवाद को स्वीकार करते हैं। उनके मत में चार ही भूत होते हैं। इन्हीं भूतों के संमिश्रण में सृष्टिक्रिया होती है। इनके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है। राजा को छोड़कर पृथक् ईश्वर नहीं है। यदि होता तो दिखता। परन्तु ईश्वर किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। अत: राजा ही ईश्वर है। चार्वाक पुनर्जन्मवाद को नहीं ही स्वीकार करते हैं। क्योंकि उनके मत में मृत्यु के पश्चात् कुछ भी नहीं है। भस्मीभूत शरीर का पुन: आगमन नहीं होता हे। और भी, अन्नादि आदि से जन्य सुख ही परम सुख है। अत: जब तक जीयें, सुखपूर्वक जीयें, ऐसा इनका निर्णय है। चार्वाक भोगवाद को स्वीकार करते हैं।

## पाठान्त प्रश्न

1. चार्वाकों के देहात्मवाद को विशदीकृत कीजिए।
2. चार्वाकों के सम्प्रदाय के विषय में प्रबन्ध लिखिए।
3. चार्वाकों के मोक्ष का व्याख्यान कीजिए।
4. चार्वाक के मत में सृष्टि प्रक्रिया को लिखिए।
5. चार्वाक कितने प्रमाण स्वीकार करता है, वह लिखकर प्रत्यक्षवाद को लिखिए।
6. चार्वाकों के नास्तिकत्व की आलोचना कीजिए।
7. चार्वाकों की तत्वमीमांसा को लिखिए।
8. 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्', इस श्लोक के तात्पर्य द्वारा व्याख्यान कीजिए।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-7.1

1. चार्वाकों का अपर नाम लोकायतिक है।
2. नहीं, चार्वाक वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं।
3. काम और अर्थ ही चार्वाकों के पुरूषार्थ हैं।
4. चार्वाकों के गुरू आचार्य बृहस्पति है।
5. चैतन्य विशिष्ट शरीर ही पुरूष हैं।
6. अन्न आदि से उत्पन्न सुख ही परम सुख है, ऐसा चार्वाक का मत है।
7. चार्वाक दर्शन में पृथिवी, जल, तेज, वायु ये चार तत्व हैं।
8. चार्वाक मत में चैतन्य विशिष्ट शरीर ही आत्मा है।
9. चार्वाकों का ही अपर नाम वैतण्डिक है।
10. सर्वदर्शनग्रन्थ के लेखक माधवाचार्य हैं।

### उत्तर-7.2

1. चार्वाक मत में प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है।
2. प्रत्यक्ष जन्य ज्ञान ही प्रमा हैं अन्य ज्ञान तो अप्रमा है।
3. 'नहीं', चार्वाक मत में अपवर्ग नहीं है।
4. 'नहीं', चार्वाक मत में परलोक नहीं है।
5. कण्ट आदि से जन्य (उत्पन्न) कष्ट ही परम दु:ख है।
6. चार्वाक चैतन्य विशिष्ट शरीर ही आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं। शरीर को छोड़कर कोई भी आत्मा नहीं है। यही वाद देहात्मवाद है।

॥ सप्त पाठ समाप्त॥

# 8

# बौद्ध दर्शन

## प्रस्तावना

छः नास्तिक दर्शनों में बौद्ध दर्शन अन्यतम है। बौद्ध दर्शन का भारतीय दर्शन जगत् में अतीव माहात्म्य है। आधुनिक काल में भी बौद्ध दर्शन का प्रभाव सर्वत्र दिखता है। यद्यपि नास्तिक हैं तथपि भगवान बुद्ध द्वारा सनातन धर्म का प्रचार किया गया। बौद्ध धर्म का आरम्भ कैसे हुआ, इसका ज्ञान होता है। और भी यहाँ बौद्ध धर्म के प्रमा और प्रमाण की भी आलोचना की गई है। विषय की सरल भाषा द्वारा आलोचना की जा रही है।

## उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- बौद्ध दर्शन का उद्भव जान पाने में;
- त्रिपिटक को जान पाने में;
- भगवान् बुद्ध के जीवन को जान पाने में;
- बौद्धधर्म के प्रमाण को जान पाने में;
- बौद्धधर्म के प्रमेय को जान पाने में;
- बौद्ध दर्शन के मोक्ष और मोक्ष-साधन को जान पाने में;
- बौद्ध दर्शन के पदार्थों को जान पाने में;

टिप्पणी

## 8.1 भूमिका

सम्पूर्ण भूमण्डल में प्रसिद्ध महात्मा बुद्ध का महत्व अतिप्रसिद्ध है। इस महामानव महापुरूष ने अहिंसा का उपदेश दिया। इसी महापुरूष ने लोगों के दु:ख निवारण के लिए अपना राज्य त्याग दिया।

यह महापुरूष शाक्य वंशीय कपिलवस्तु नरेश शुद्धोदन के सुपुत्र थे। इनका प्रथम नाम सिद्धार्थ था। बाल्यकाल से ही सिद्धार्थ का चित्त विषयों में रत नहीं था। पुत्र की इस प्रकार की विरक्ति को देखकर पिता ने उसके लिए सम्पूर्ण सुख-साधन का समायोजन किया। उसके बाद भी सिद्धार्थ का चित्त उनमें आसक्त नहीं हुआ। अब किसी घायल, किसी वृद्ध, उसके पश्चात् मूक तथा संन्यासी को देखकर उसके हृदय में महान वैराग्य उत्पन्न हुआ। अत: मानवों के दु:खनिवृत्ति के लिए राजकुमार सिद्धार्थ ने रात्रि में प्रिय पत्नी और नवजात पुत्र को छोड़कर घर से संन्यास ले लिया।

वहाँ से उन्होंने प्रथम पाँच ब्राह्मणों के साथ तप किया, किन्तु उसके द्वारा उनके मन में पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। अनन्तर उन्हें महान श्रम, सतत् अभ्यास और तपस्या द्वारा एक दिन बोध प्राप्त हुआ। वहाँ से वह बुद्ध के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने लोगों को उपदेश दिया, ''यह संसार दु:खमय है, दु:ख का मूल कामना है, कामना का उन्मूलन साध्य है एवं दु:ख-निवृत्ति सम्भव है। महात्मा बुद्ध ने इन चार आर्यसत्यों का प्रचार किया। उन्होंने लोगों के दु:ख निवारण और उनके कल्याण के लिए उपदेश दिया। ये उनके प्रमुख उपदेश हैं- मन, वचन, कर्म से अहिंसा का पालन करिए, सदा सत्य बोलना चाहिए, किसी की भी कोई भी वस्तु कभी भी नहीं चुरानी चाहिए, सभी को समान दृष्टि से देखना चाहिए, सत्कर्म करना चाहिए। सभी पर दया का आचरण करना चाहिए, शरणागतों की रक्षा करनी चाहिए, अधिक संग्रह नहीं करना चाहिए और ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए।

इनके पालन से ही सुख और शान्ति हो सकती है। महात्मा बुद्ध के विचारों और उपदेशों का प्रचार न केवल भारत में अपितु, चीन, जापान, श्रीलंका आदि देशों में भी लोकप्रिय हुआ।

इस दर्शन के आदि प्रवर्तक गौतम बुद्ध हैं। शुद्धोदन और माया देवी के पुत्र, गौतम गोत्र में उत्पन्न क्षत्रिय सिद्धार्थ ही बाद में ज्ञान के उदय के कारण बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्ध दर्शन का परम सिद्धान्त है- 'दु:ख का मूल आशा है। बौद्धों का सम्प्रदाय माध्यमिक-योगाचार-सौत्रान्तिक-वैभाषिक के भेद से चार भागों में विभाजित है।

**प्रपञ्च को अधिकृत करके उनकी दृष्टि इस प्रकार है-**

**मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्**
**योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिल:।**
**अर्थोऽसति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्धेति सौत्रान्तिक:**
**प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भाषते॥**

बौद्ध दर्शन का प्रचार और प्रसार पालि भाषा में हुआ। संस्कृत में अवगणना ही बुद्धमत के नाश के कारणों में अन्यतम है, ऐसा विवेकानन्द ने कहा है, यह यहाँ स्मर्तव्य है। प्रत्यक्ष और अनुमान, दो प्रमाण बौद्ध स्वीकार करते हैं। बौद्ध दर्शन ऐतिहासिक कालक्रम से जैन दर्शन के परवर्ती है। इसका यह कारण कहा जा सकता है कि महावीर के पर्यन्त जैन तीर्थंकरों और अन्य दार्शनिकों के साहित्य में कहीं भी बौद्ध दर्शन का उल्लेख नहीं है, किन्तु महावीर के सिद्धान्त बौद्ध निकायों में उपलब्ध हैं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म जैन धर्म की अपेक्षा से परवर्ती है। यह ऐतिहासिक सत्य है। बौद्ध दर्शन के प्रवर्तक भगवान बुद्ध थे। यह भी ऐतिहासिक घटना है। बुद्ध का पूर्व नाम सिद्धार्थ था। इनका जन्म 226 ई.पू. में हुआ। इनके पिता शाक्य वंशीय राजा शुद्धोदन थे। इनकी माता मायादेवी इनके जन्म के एक सप्ताह के अनन्तर ही दिवंगत हो गई। इनके जन्म के समय में कपिलवस्तु के राज ज्योतिष द्वारा भविष्यवाणी की गई, जिस कुलीन का महल से निष्क्रमण होगा, और यह धर्म प्रवर्तक होंगे। उसके अनुसार ही सिद्धार्थ ने इक्कीस वर्ष में अपने पत्नी-पुत्र को त्याग कर सांसारिक दु:खों के आत्यन्तिक नाश के लिए उपाय के अन्वेषण के प्रयोजन से राजभवन को भी त्याग दिया। उन्होंने चिरशान्ति की प्राप्ति तथा ज्ञानार्जन के लिए गहन वन में प्रवेश किया।

ज्ञानान्वेषण के प्रयत्न में सर्वप्रथम उस सांख्यतत्ववेत्ता ने अराडकल के शिष्यत्व में सत्य का अनुसंधान किया। किन्तु असन्तुष्ट होने पर विविध स्थानों पर ज्ञानोपदेशों के श्रवण के पश्चात् उरू वेला में कठोर तप करके चार आर्यसत्य का ज्ञान प्राप्त किया। उसके कारक उनके सम्पूर्ण कल्मष नष्ट हो गए और बुद्धत्व की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् सर्वप्रथम उन्होंने सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पाँच शिष्यों को उपदेश देने के लिए धर्मचक्र को प्रवर्तित किया। जनकल्याण के लिए उनकी उपदेशों की भाषा मागधी थी। धर्मोपदेश करके उनका अस्सी (80) वर्षीय दीर्घ जीवन वैशाख मास पूर्णिमा का पर्याप्त महत्व स्वीकार किया जाता है। क्योंकि यह तिथि बुद्ध की जन्म-निर्वाण की तिथि है।

भारतीय धर्मगुरू भगवान् बुद्ध ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ऐसा विख्यात है। गौतमी द्वारा पोषित, ऐसा वह गौतमबुद्ध है। कौशल गणराज्य के राजा शाक्य वंशीय शुद्धशील शुद्धोदन तथा उनकी पत्नी पतिव्रता माया देवी का पुत्र सिद्धार्थ था। इस प्रकार वैराग्य का अवलम्बन करके गौतम बुद्ध हुए।

सिद्धार्थ महान सम्राट अथवा परिव्राजक होंगे, ऐसी देववाणी थी। पिता के अतिप्रयत्न का भी अतिक्रमण करके दैव से प्रभावित सिद्धार्थ रोगी, वृद्ध, मृत पुरूष तथा स्थित प्रज्ञ मुनि को देखकर वैराग्यपूर्वक वन को गया। वहाँ बोधिवृक्ष की छाया में तप करके गौतम बुद्ध हुआ। और उसके कारण वह नश्वर तत्कालीन मात्र साम्राज्य को त्याग का आर्तजनों के हृदय-सिंहासन पर शाश्वत स्थान प्राप्त करके अब भी विराजमान हैं।

इस देश में गौतम बुद्ध के काल में धर्म के स्थान पर सर्वत्र अधर्म का ही प्रचार प्रसार था यज्ञ-याग आदि में पशुबलि नरबलि इत्यादि हिंसाक्रम प्रचलित थे। गौतम बुद्ध ने 'अहिंसा परमो धर्म:' इस सनातन तत्व को पुन: स्थापित किया। गौतम बुद्ध का मार्ग

बौद्धधर्म, इस क्रम से प्रसिद्ध है। सम्राट अशोक जैसे अगणित चक्रवर्ती ने बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर विदेशों में भी इसका प्रचार किया। चीन-जापान आदि देशों में आज भी बौद्धधर्मी बहुत हैं।

## 8.2 सम्प्रदाय परिचय

भगवान् बुद्ध द्वारा बौद्ध दर्शन प्रवर्तित है। भारतीय शास्त्रों के आधार पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव विशेष रूप से दिखता है। बौद्ध मूलग्रन्थ भारत में प्रायः लुप्त हैं। विदेशीय पण्डितों के संशोधन के फल स्वरूप कुछ ग्रन्थ दिखते हैं। भगवान् बुद्ध के अनन्तर बौद्धों की बहुत सी शाखाएँ उत्पन्न हुई। और वे चार प्रधान रूप से हैं- वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक। वैभाषिकों का हीनयान सम्प्रदाय है। अन्य तीनों का महायान सम्प्रदाय है। बौद्धों का 'शून्यवाद' प्रसिद्ध है। 'यत्र किमपि नास्ति तत्' इसमें शून्यपद का अर्थ नहीं है। बौद्ध दर्शन में शून्यपद का दार्शनिक महान् अर्थ है। बौद्धमत के बहुत से धार्मिक अंश त्रिपटक में निरूपित हैं।

### 8.2.1 योगाचार मत-

योगाचार का सिद्धान्त विज्ञानवाद है। विज्ञानवाद की विचारधारा के अनुसार बाह्य सत्ता का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि बाह्य जगत् प्रयोजन काल में मन में बनने वाले प्रतिबिम्ब के आधार द्वारा ही वह जाना जाता है। इसमें प्रतीति का आधार ज्ञान है, अतएव ज्ञान अथवा विज्ञान ही सत्य तत्व है। चित्त, मन आदि विज्ञान की ही संज्ञाएँ हैं। विज्ञान की चेतन क्रिया के सम्बन्ध वश चित्त कहलाता है, मन क्रिया सम्बन्ध वश ही मन कहा जाता है। विषय ग्रहण के साधन रूप में ही विज्ञान सिद्ध है।

### 8.2.2 माध्यमिक मत

माध्यमिकों का सिद्धान्त शून्यवाद है। शून्यवाद के मत के अनुसार बाह्य पदार्थ भी सत्य नहीं है, आन्तरिक पदार्थ भी सत्य नहीं है, विज्ञान भी सत्य नहीं है। शून्य ही सत्य होता है। अब शून्य क्या है, यह विचार करते है। शून्य किसका अभाव है। यहाँ माध्यमिकों का मत है कि शून्य न तो भावरूप है, न अभाव रूप। यह तो अनिवर्चनीय है। सभी के द्वारा भिन्न रूप में ही इसकी शून्य संज्ञा है। यहाँ वेदान्तियों द्वारा ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वचनीय स्वीकार किया जाता है।

यही बौद्ध दर्शन का अन्तिम सत्य है। वैसे ही सर्वप्रथम वैभाषिक सम्प्रदाय द्वारा बाह्यार्थ की प्रत्यक्ष सत्ता स्वीकृत है। उसके बाद सौत्रान्तिक द्वारा बाह्यार्थ अनुमेयवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। तदन्तर योगाचार के द्वारा विज्ञान मात्र की सत्ता स्वीकृत है। अन्त में माध्यमिक द्वार शून्य ही परमतत्व ही संसाधित है। इन सम्प्रदायों में वैभाषिक हीनयान को स्वीकार करता है और अवशिष्ट तीन सम्प्रदाय महायान को स्वीकार करते हैं।

टिप्पणी

### 8.2.3 वैभाषिक मत

वैभाषिक मतानुसार इन्द्रिय ज्ञान इस बाह्य जगत् का मिथ्यात्व नहीं हो सकता। आन्तरिक तत्व के मन की भी स्वतन्त्र सत्ता है। बाह्य पदार्थों के ज्ञान के लिए इन्द्रियों के आन्तरिक तत्व से सहयोग की आवश्यकता नहीं है। आन्तर तत्व भी बाह्य पदार्थ के निरपेक्ष ज्ञान के प्रति कारणभूत होते हैं। इस प्रकार दोनों पदार्थों की सत्ता सिद्ध होती है।

### 8.2.4 सौत्रान्तिक मत

सौत्रान्तिक के मत में बाह्यर्थानुमेयवाद स्वीकार किया जाता है। इसके अनुसार बाह्यार्थ पदार्थ इन्द्रिय-ज्ञान गम्य नहीं होते हैं। क्योंकि पदार्थ क्षणिक हैं, परिणामस्वरूप इन्द्रियार्थ सन्निकर्षकाल में और ज्ञानानुभवकाल में पदार्थ परिवर्तित ही उत्पन्न होते हैं। अत एव उस क्षण में पदार्थान्तर ही अभिमुख होता है। एवम् बाह्य पदार्थों की सत्ता प्रत्यक्ष गम्य नहीं है, अनुमान द्वारा ही वह ज्ञात होता है। यह सिद्धान्त ही बाह्यार्थानुमेयवाद होता है।

### पाठगत प्रश्न 8.1

1. बौद्ध धर्म के प्रतिष्ठाता कौन हैं?
2. बौद्ध दर्शन नास्तिक है अथवा आस्तिक?
3. गौतम बुद्ध के माता-पिता कौन थे?
4. गौतम बुद्ध का जन्म स्थान कहाँ था?
5. बौद्ध दर्शन में कितने सम्प्रदाय हैं?
6. शून्यवादियों के मत में शून्य का स्वरूप क्या है?
7. किनके मत में बाह्य पदार्थ सत् हैं?
8. किनके मत में बाह्य पदार्थ असत् हैं?
9. किनके मत में बाह्य पदार्थ अनुमेय है?
10. बुद्ध का जन्म कब हुआ?

## 8.3 अष्टाङ्गिक मार्ग

बुद्ध प्रतिपादित इस मध्य मार्ग के आठ अंग एवं प्रकारण हैं- सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि। इस अष्टाङ्गिक मार्ग के सम्यक् पालन द्वारा निर्वाण प्राप्त

टिप्पणी

होता है, इस प्रकार की बौद्धों की मान्यता है। इस प्रकार से भगवान् बुद्ध ने अविद्या का मूल कारण मानकर ज्ञान द्वारा उसके परिमार्जन का महत्व प्रतिपादित किया। शुद्ध ज्ञान शुद्ध मनोवृत्ति के बिना प्राप्त नहीं होता है। शरीर शुद्धि के लिए भगवान बुद्ध द्वारा शील-समाधि-प्रज्ञा आदि का महत्व प्रतिपादित किया गया। शील के अन्तर्गत अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह का समावेश होता है। यहाँ नैतिक सुख-साधनों का परित्याग गृहीत है। समाधि द्वितीय साधन है। समाधि से पूर्व जन्म-स्मृति-उत्पत्ति-विनाश आदि का ज्ञान बाधक नियम का बोध अपेक्षित है। प्रज्ञा तृतीय साधन को कहते हैं। प्रज्ञा भी तीन प्रकार से प्रतिपादित है- श्रुतमयी प्रज्ञा, चिन्तामयी प्रज्ञा और भावनामयी प्रज्ञा।

## 8.4 बौद्ध दर्शन के मत में मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष शब्द 'मोक्ष्' मोचने इस धातु से व्युत्पन्न है। यथा स्वर्ग नामक 'दिव्यसुखोपभोगसाधनों द्वारा युक्त स्थान हैं जहाँ पुण्यवादी लोग मृत्यु के अनन्तर जाते हैं, ऐसा सभी का विश्वास है। तथा मोक्ष नामक कोई स्थान विशेष नहीं है। उसमें कहा गया है-

**''मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।**
**अज्ञानतिमिरग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥**

वस्तुतः जीव परमात्मा का ही अंश है। पर अज्ञानता के कारण वह उस तथ्य को नहीं जानता है। जब अज्ञान नष्ट होता है तब साक्षात्कार के द्वारा वह परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। एवं अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है। मृत्यु के अनन्तर स्वकर्म के अनुसार पुनः नूतन जन्म ग्रहण करता है। एवम् उस भ्रमित की जब वासना नष्ट होती है, तब अकस्मात् जन्म-मरण के चक्र से वह मुक्ति को प्राप्त करता है। वह ही मोक्ष है। अन्य में पुनः छः शत्रुओं के प्रभाव से मुक्ति का नाम मोक्ष है, ऐसा मानते हैं। मनुष्य मात्र सुख संपादन तथा दुःख निवारण के लिए प्रयत्न करता है। उसमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इस विषय में धर्म द्वारा किया गया मार्गदर्शन वह सम्यक् रूप से जानता है। दुर्योधन की 'जानामि धर्म न च में प्रवृत्ति जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः' उक्ति प्रसिद्ध है ही उसके अनुसार विकारों से अभिभूत मानव धर्माचरण में स्वभावतः ही प्रवृत्त नहीं होता है। यथा नीचे गमन करने का स्वभाव जलप्रवाह का है वैसे ही प्रवाह पतित के समान स्वभाव मनुष्य का प्रतीत होता है। धर्माचरण प्रवाह के विरूद्ध जाना है। अधोगमन विनाश के लिए सम्पादित है। किन्तु प्रवाह के विलोम में तैरने के लिए शरीर-सामर्थ्य, मनोनिग्रह, आत्मविश्वास इत्यादि गुण आवश्यक होते हैं। अतः यदि स्वकल्याण को साधने के लिए धर्म के आचरण की कामना करता है तो विकारों के ऊपर विजय का सम्पादन आवश्यक है। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा सूक्ष्म दृष्टि से मानव प्रवृत्ति के प्रमुख रूप से छः विकार निर्धारित है। और उन्हें रिपु (शत्रु) संज्ञा प्रदान

टिप्पणी

की गई है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर, ये छः शत्रु सुने गए हैं। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में ये विकार निभृत रूप में रहते हैं। मन की दुर्बल अवस्था में वे ऊपर आ जाते हैं। तप, पूत, योगी भी इस विषय में अपवाद नहीं हैं। विश्वामित्र-मेनका का आख्यान तो सभी में सुपरिचित ही है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस वचन के अनुसार मन ही सभी आपत्तियों के मूल में रहता है। अतः मनोनिग्रह अथवा इन्द्रियजय बार-बार शास्त्रकारों द्वारा उपदिष्ट है। शीतोष्ण-सुख-दुःख-जय-पराजय-मान-अपमान आदि द्वन्द्वीतत्व ही इन्द्रियजय का निदर्शन है।

एवम् इन्द्रियों के निग्रह, संयमय द्वारा, विकारों के षड् रिपुओं के ऊपर विजय और इनके प्रभाव से मुक्ति ही मोक्ष है। यदि विकारों का प्रभाव नहीं होगा तो ही उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है। इस प्रकार विकार रहित मनुष्य अनुपम, सुख और अद्वितीय आनन्द अनुभव करता है। वह आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है। परमात्मा के अंशत्व का प्रत्यक्ष करता है। वह ही जीवनमुक्त है। यही मनु जन्म की कृतार्थता है।

## 8.5 बौद्ध धर्म की आचार मीमांसा

सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान बुद्ध के द्वारा जटिल दार्शनिकता की अनपेक्षा करके सरलता से आचार पद्धति प्रतिपादित है। बुद्ध ने गहन आध्यात्मिकता के प्रश्न नहीं दिए। अतः श्रावस्ती विहार के अवसर पर मालुंम्यपुत्त द्वारा आध्यात्म विषय में बुद्ध को पूछा गया। तब बुद्ध ने आचार मार्ग का ही उपदेश दिया। बुद्ध मत के द्वारा आर्य चतुष्टय इस प्रकार से निर्दिष्ट है- (दुःख (दुःख समुदय (दुःख निरोध (और दुःख निरोध गामी उपाय। अर्थात् संसार दुःखमय है, दुःखों का निदान भी होता है, दुःखों से मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं, मुक्ति मार्ग भी निर्धारित है। केवल आर्यजन ही इनको प्राप्त कर सकते हैं, अनार्य तो जब तक जीते हैं, दुःखों में ही जीते हैं। बुद्ध के मतानुसार आर्य-सत्य के मार्ग के द्वादश (12) कारण हैं- (जरा-मरण, (जाति (भव, (उपादान (तृष्ण (वेदना (स्पर्श (षडायतन (नामरूप (विनय (संस्कार (और अविद्या। इनमें प्रत्येक पूर्ववर्ती परवर्ती के प्रति कारण है।

उदाहरणार्थ जरा-मरण का कारण जाति है, जाति का कारण भव है, भव का कारण उपादान है। इन द्वादश कारणों को आश्रित करके कार्यकारण भाव का जो सिद्धान्त प्रतिपादित है, वह बौद्ध मत में प्रतीत्य समुत्पाद कहलाता है। प्रतीत्य समुत्पाद का तात्पर्यार्थ होता है। किसी वस्तु की प्राप्ति से अन्य वस्तु की उत्पत्ति होती है। एवम् यह वस्तुतः सापेक्ष कारणातावाद है, यह भी कहा जा सकता है। प्रयीत्य समुत्पाद ही बौद्ध प्रतिपादित कारणवाद है। यही मानव की उत्पत्ति के सन्दर्भ में शृंखला बद्धता का निर्देश करता है। मानव-उत्पत्ति की शृंखला में बारह अंग और तीन काण्ड थे। प्रथम काण्ड में अतीत जन्म से सम्बद्ध निदान है, फलतः अविद्या जन्य संस्कार उत्पन्न होते हैं। द्वितीय काण्ड में वर्तमान जीवन से सम्बन्धित निदान है जिसके अन्तर्गत विज्ञान से भव पर्यन्त आठ कारण उत्पन्न होते

हैं। तृतीय काण्ड में भविष्य से सम्बद्ध निदान होता है। वहाँ जाति जरा-मरण दो कारण गृहीत होते हैं।

तृतीय आर्य-सत्य दु:ख-निरोधात्मक है। उसका तात्पर्य है कि कार्य कारण पर आश्रित रहता है तथा कारण यदि ध्वंस हो तब कार्य भी स्वत: ध्वस्त होगा। एवम् मूल कारण रूप अविद्या को विद्या से उन्मूलित करे तब उससे उत्पन्न कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। चतुर्थ आर्य-सत्य निर्वाण है। इसकी प्राप्ति के लिए बुद्ध द्वारा मध्यम मार्ग का उपदेश दिया गया। अर्थात् निर्वाण प्राप्ति के लिए कठोर व्रत, उपासना आदि की आवश्यकता अपेक्षित नहीं होती है, और न ही सर्वथा श्रम रहित आचरण प्रशस्थ (प्रशंसनीय) है। दोनों के बीच में क्या अपेक्षणीय है, इस पर विचार करके भगवान बुद्ध द्वारा जो मार्ग प्रतिष्ठापित है वह ही मध्यम मार्ग है। इस मध्यम मार्ग के आठ अंग हैं, अतएव अष्टाङ्गिक मार्ग कहे जाते हैं।

## 8.6 बौद्ध चिन्तन के दार्शनिक आधार

बौद्ध दर्शन का जो चिन्तन सर्वस्व है, उसका आधार आध्यात्मवाद नहीं है। बौद्ध चिन्तन तो संघातवाद सत्तावाद का ही विस्तार है। आत्मचिन्तन दु:ख-निवृत्ति का मुख्य साधन है, तथापि बुद्ध द्वारा आत्मा के अस्तित्व को ही निराकृत किया गया। उनके मत के अनुसार आत्मा केवल मनोवृत्तियों की पुञ्जमात्र है। क्योंकि मानव प्रवृत्तियों के अतिरिक्त उस आत्म तत्व का कोई भी अस्तित्व नहीं है। वह आत्म तत्व तो रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान आदि पञ्चस्कन्धों का समुच्चय है। रूप भौतिक पदार्थ है। किसी भी वस्तु का साक्षात्कार संज्ञा होता है। उस संज्ञा के द्वारा उत्पन्न सुख-दु:ख अथवा उदासीनता का भाव वेदना कहलाता है। भूतकालिक अनुभव से उत्पन्न, स्मृति के कारणभूत मानसिक प्रवृत्तियों का स्वभाव संस्कार है। यही चैतन्य विज्ञान नाम से जान जाता है। आत्मा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए नागसेन मिलिन्द से रथ के प्रत्येक अवयव के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं। और मिलिन्द प्रत्येक प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हैं। वस्तुत: स्वतन्त्र रूप से अश्व रथ नहीं हैं, और न ही वल्गारथ हैं, यह काठ की गाड़ी भी रथ नहीं है। इस प्रकार की स्थिति मे रथ के प्रत्येक अवयव रथ हैं, ऐसा स्वीकार करते हैं। वैसे ही स्वतन्त्र रूप में काई भी आत्मा नहीं है। अपितु व्यवहार में दृश्यमान भौतिक और मानसिक व्यापारों का समूह ही आत्मा कहलाते हैं।

### 8.6.1 सन्तान वाद

बौद्ध दर्शन के अनुसार जीव और जगत् दोनों ही अनित्य है। यह स्कन्ध पञ्चक स्थिर नहीं है। क्षण-क्षण में यह परिवर्तित होता है। जैसे- दीप की ज्वाला सतत् एक ही दिखती है, किन्तु वह प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। तभी यह अनुभव नहीं होता है कि तेल-वर्तित के संयोग से दृश्यमान दीपशिखा प्रतिक्षण नूतन है तथा तेल और

टिप्पणी

वर्तिक का अंश जलकर उसमें ही प्रविष्ट होता है। एवम् प्रकाश शिखा के रूप में पूर्वत: विद्यमान ज्वाला ही नष्ट होती है। बौद्ध दर्शन में मुख्यत: परिणाम का सिद्धान्त अभिमत है। अत: जगत् के सत्यत्व को अस्वीकृत करके उसकी परिणामात्मकता को स्वीकार किया गया है। परिणाम ही सत्य है किन्तु इस परिणाम के मूल में कोई भी अन्य सत्य तत्व नहीं है। बुद्ध के वैचारिक सूक्ष्मता की यह द्वितीय कल्पना है।

## 8.7 बौद्ध दर्शन का धार्मिक विकास

बौद्धधर्म में महायान सम्प्रदाय ने थेरवाद को स्वीकार किया, अतएव उसकी अपर संज्ञा हीनयान भी है। बौद्ध धर्म के विविध यानों के बोध विषय में अर्थात् जीवन मुक्ति के निरूपण के विषय में एकरूपता नहीं है। इन तीन यानों की तीन जीवनमुक्तियाँ हैं - श्रावकबोधि, प्रत्येकबुद्धबोधि, और सम्यक् सम्बोधि। इन सभी की साधना पद्धति भिन्न है। बौद्ध दर्शन का विकास बौद्ध धर्म के साथ नहीं हुआ। जब बौद्ध धर्म का प्रचण्ड प्रचार हुआ तब बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त अस्तप्राय थे। किन्तु जब भी बौद्ध विद्वानों का बुद्ध-उपदेशों के गाम्भीर्य में प्रवेश हुआ, तभी बौद्ध धर्म स्वत: ही शिथिल हो गया।

### 8.7.1 शून्यवाद में सत्य की समीक्षा-

शून्यवादी बौद्धों के मत के अनुसार सत्य दो प्रकार का है -व्यवहारिक और पारमार्थिक। लोक व्यवहार में प्रचलित सत्य व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया जाता है। इसका अपर नाम सांवृतिक भी है। पारमार्थिक सत्य तो अनुपपन्न, अनिरूद्ध, अनुच्छेद्य और अशाश्वत है। पारमार्थिक सत्य बुद्धिगम्य नहीं होता है। संवृत्ति नाम आच्छादन क्रिया का है। एवम् संवृत्तिक वह होता है जो आच्छादक होता है। आच्छादक तत्व तो अविद्या है। उस अविद्या के द्वारा ही जब अन्य तत्व आच्छादित होता है, तब व्यावहारिक सत्य का उदय होता है। बौद्धों के द्वारा भी अविद्या स्वरूप माया के दो कार्य स्वीकृत हैं- (स्वभाव दर्शन का आवरण (उसमें असत्पदार्थ के स्वरूप का आरोपण है। शून्यवादियों के द्वारा संवृत्ति भी दो प्रकार की हैं - (तथ्यसंवृत्ति (और मिथ्यासंवृत्ति। पदार्थ के यथार्थ परिज्ञान में तथ्य संवृत्ति होती है किन्तु अयथार्थ ज्ञान में मिथ्या संवृत्ति होती है। दोनों संवृत्तियों के माध्यम से गृहीत ज्ञान सांवृत्तिक होता है। उसे ही व्यावहारिक सत्य भी कहते हैं।

सांवृत्तिक सत्य ही पारमार्थिक सत्य का साधन भी है। व्यावहारिक सत्य द्वारा ही पामार्थिक सत्य का बोध होता है। जन्म से कोई भी पारमार्थिक सत्य का दर्शन नहीं करता है। यहाँ पारमार्थिक सत्य निर्वाण रूप होता है। निर्वाण तो अज्ञात तत्व ही है। जिसकी प्राप्ति भी नूतन नहीं होती है। जिसका विनाश भी नहीं होता है, जो न तो नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है। अतएव उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। इस अनिर्वचनीय तत्व को जानना ही बौद्ध मत में तथागत, इस नाम से जाना जाता है। बौद्ध धर्म में व्यावहारिक-पारमार्थिक सत्य के आधार से ही व्यावहारिक आदेश दिया गया है। जब साधक पारमार्थिक सत्य

टिप्पणी

के अनुसन्धान से ही तथागत के स्वरूप और शून्यता की प्राप्ति होती है तब स्वयं वर्णनातीत होता है, क्योंकि वह तब अविद्या के अस्पष्ट होने पर सभी मतों से रहित हो जाता है। वह सभी प्रकार के क्लेशों से मुक्त होता है। किन्तु यह सभी निर्वाण रूप सम्यक् सम्बोधि के बिना असम्भव ही है। सम्यक् सम्बोधि तो षट् परमिताओं की प्राप्ति के अनन्तर ही प्राप्त होता है। षट् परमिता इस प्रकार से प्रतिपादित हैं- ज्ञान-शील-क्षान्ति-वीर्य-समाधि और प्रजा। इन छः परमिताओं में ज्ञान-शील-क्षान्ति के सतत् अभ्यास से पुण्यसंभार की प्राप्ति होती है। वीर्य-समाधि के अभ्यास से ज्ञान सम्भार की प्राप्ति होती है। दोनों प्रकार के सम्भार द्वारा प्रज्ञा का उदय होता है। प्रज्ञा भी दो प्रकार की है- साधक रूप और फल रूप। जब साधक साधनभूत प्रजा को प्राप्त करने के लिए अभिमुक्त चरित संज्ञक होता है तब उक्त ज्ञान के आविर्भाव होने पर फलरूप प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रज्ञा का चरमोत्कर्ष ही बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था में सर्वशून्यता का दर्शन उत्पन्न होता है। दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति भी यही सम्भव होती है। शून्यता की प्रतीति में सर्वविध धर्मों की स्वभावहीनता दिखती है। माध्यमिक कारिका में गति-इन्द्रिय-स्कन्ध-धातु-दुःख-संसर्ग-कर्म-बन्ध-मोक्ष-काल-आत्मा आदि तथ्यों का व्यावहारिक स्थिति में विश्लेषण किया गया है। उसमें शून्यवादियों के आचार्यों की तर्कपद्धति में सूक्ष्मता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यह अखिल व्याख्यान निषेधात्मक ही है। इस पद्धति से जगत् की सभी अवधारणाएँ निःस्वभाव होती हैं। इस सम्प्रदाय की ही बुद्धपालिताओं के द्वारा शून्यता की सिद्धि के लिए तर्क की पूर्णता से तिरस्कार विहित है। अतएव बौद्ध दर्शन के इतिहास में माध्यमिक, यह प्रासांगिक नाम अभिहित है। वैदिक दर्शनों की मुक्ति अथवा मोक्ष के स्थान पर बौद्धों ने निर्वाण को प्रतिष्ठापित किया। बौद्ध दर्शन के विविध सम्प्रदायों के द्वारा निर्वाण का निरूपण स्व-स्व मान्यता के आधार पर किया गया। तथापित बौद्धों के चार सम्प्रदाय हीनयान-महायान के रूप में विभक्त हैं। क्योंकि हीनयान में निर्वाण का जो स्वरूप प्रतिष्ठापित है, महायान में वह भिन्न रूप में प्रतिपादित है। हीनयान में निर्वाण का स्वरूप है- हीनयान के मतानुसार संसार दुःखमय है। दुःख के तीन प्रकार हैं- दुःखदुःखता, संसार दुःखता एवं विपरिणदुःखता। शारीरिक और मानसिक कारणों द्वारा उत्पाद्यमान दुःख दुःखतासंज्ञक है। उत्पत्तिशील और विनाशशील जगत में वस्तुओं द्वारा उत्पाद्यमान दुःख संस्कारदुःखता कहे जाते हैं। जिन कारणों के द्वारा सुख भी दुःखरूप में परिणत होता है, उन कारणों द्वारा उत्पद्यमान दुःख विपरिणदुःखता होती है। प्राणी विविध दुःखों से कैसे मुक्त हो, यह विचार करने के लिए बुद्ध द्वारा चार आर्य सत्य का उपदेश किया गया। इन आर्य-सत्यों का आचार ही सांसारिक पदार्थों की नश्वरता और अनात्मता का ज्ञान दुःख निवृत्ति का सदुपाय है। एवम् अष्टाङ्गिकमार्ग का अनुसरण प्रथम उपाय है, सांसारिक पदार्थों के प्रति हेयभाव द्वितीय उपाय है, आत्मा के अस्तित्व की अस्वीकृति तृतीय उपाय है। इन तीनों उपायों के अनुपालन से त्रिविध दुःखों का उन्मूलन होता है। इस प्रकार की अवस्था में पुष्ट जीव की पुनः बन्धरूपता नहीं होती। यही निर्वाण की अवस्था है। महायान में निर्वाण का स्वरूप क्या है? महायान के मतानुसार निर्वाण के लिए दोनों प्रकार के

आवरणों का क्षय आवश्यक होता है। क्लेशावरण-ज्ञेयावरण की क्षति क्रमिक है। पहले क्लेशावरण नष्ट होता है, तदनन्तर ज्ञेयावरण का विनाश होता है। हीनयान में स्वीकृत निर्वाण का स्वरूप महायान की दृष्टिकोण से अपूर्ण है, क्योंकि क्लेशावरण के विनाश के बाद भी ज्ञेयावरण अवशिष्ट होता है। यद्यपि हीनयान मत द्वारा क्लेशावरण विनाश से आत्मा का निषेध विहित है। क्योंकि आत्मा के सुख आदि के लिए मानव की प्रवृत्ति होती है। अतएव दु:ख आदि होते हैं। आत्मदृष्टि से ही ये विषम परिणाम होते हैं। अत: आत्मा के निषेध होने पर दु:खों का स्वत: ही नाश हो जाएगा। यही हीनयान का नैरात्म्यवाद है। उसके दो भेद कहे गए हैं- पुद्गलनैरात्म्यवाद और धर्मनैरात्म्यवाद। एवम् पुद्गलनैरात्म्य द्वारा प्राणी स्वत: क्लेशमुक्त होता है। इसके विपरीत जगत के अभाव से सांसारिक पदार्थों की शून्यता के ज्ञान द्वारा पारमार्थिक-सत्य रूपी ज्ञान के ऊपर का आवरण नष्ट होता है।

साधक की सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। क्लेश से मुक्ति का आवरण होता है, ज्ञेयावरण और ज्ञेयपदार्थ को आवृत करता है। दोनों आवरणों के विनाश से ही सर्वज्ञता को प्राप्त किया जा सकता है। महायान सम्प्रदाय में ज्ञेयावरण के निवारण के उपाय रूप में सर्वशून्यता का प्रतीति अभिमत है। इसी प्रकार हीनयान में अर्हत्प्राप्ति परम उद्देश्य है किन्तु महायान में बुद्धत्व प्राप्ति लक्ष्यभूत होता है। दोनों सम्प्रदायों का ही निर्वाण भेद है।

## 8.7.2 महायान

महायान मतानुसार निर्वाण के लिए दोनों प्रकार के आवरणों का क्षय आवश्यक होता है। क्लेशावरण और ज्ञेयावरण की क्षति क्रमिक है। पहले क्लेशावरण नष्ट होता है, तदनन्तर ज्ञेयावरण का विनाश होता है। हीनयान में स्वीकृत निर्वाण का स्वरूप महायान के दृष्टिकोण में अपूर्ण है, क्योंकि क्लेशावरण के विनाश के बाद भी ज्ञेयावरण अवशिष्ट होता है।

यद्यपि हीनयान मत द्वारा क्लेशावरण विनाश से आत्मा का निषेध विहित है। क्योंकि आत्मा से आत्मा का निषेध विहित है। क्योंकि आत्मा के सुख आदि के लिए मानव की प्रवृत्ति होती है। अतएव दु:ख आदि होते हैं। आत्मा दृष्टि से ही ये विषम परिणाम होते हैं। अत: आत्मा के निषेध होने पर दु:खों का स्वत: ही नाश हो जाएगा। यही हीनयान का नैरात्म्यवाद है। उसके दो भेद कहे गए हैं- पुद्गलनैरात्म्यवाद और धर्मनैरात्म्यवाद एवं पुद्गलनैरात्म्य द्वारा प्राणी स्वत: क्लेशमुक्त होता है। इसके विपरीत जगत के अभाव से सांसारिक पदार्थों की शून्यता के ज्ञान द्वारा पारमार्थिक-सत्य रूपी ज्ञान के ऊपर का आवरण नष्ट होता है। साधक भी सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। क्लेश के द्वारा मुक्ति का आवरण होता है, ज्ञेयावरण और ज्ञेयपदार्थ आवृत करता है। दोनों आवरणों के विनाश से ही सर्वज्ञता को प्राप्त किया जा सकता है। महायान सम्प्रदाय में ज्ञेयावरण के निवारण के उपाय रूप से सर्वशून्यता की प्रतीति अभिमत है। इस प्रकार ही हीनयान में अर्हत्प्राप्ति परम उद्देश्य है, किन्तु महायान में बुद्धत्व प्राप्ति लक्ष्यभूत होता है। दोनों सम्प्रदायों का ही निर्वाणभेद है।

टिप्पणी

### 8.7.3 हीनयान

हीनयान मतानुसार संसार दु:खमय है। दु:ख के तीन प्रकार हैं- दु:खदु:खता, संस्कारदु:खता एवं विपरिणादु:खता। शारीरिक और मानसिक कारणों द्वारा उत्पाद्यमान दु:ख दु:खता संज्ञक है। उत्पत्तिशील और विनाशशील जगत् में वस्तुओं द्वारा उत्पाद्यमान दु:ख संस्कार दु:खता कही जाती है। जिन कारणों के द्वारा सुख भी दु:खरूप में परिणत होता है, उन कारणों द्वारा उत्पद्यमान दु:ख विपरिणदु:खता होती है। प्राणी विविध दु:खों से कैसे मुक्त हो, यह विचार करने के लिए बुद्ध द्वारा चार आर्य सत्य का उपदेश दिया गया। आर्य-सत्यों का आचार ही सांसारिक पदार्थों की नश्वरता और अनात्मकता का ज्ञान दु:खनिवृत्ति का सदुपाय है। एवम् अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण प्रथम उपाय है, सांसारिक पदार्थों के प्रति हेयभाव द्वितीय उपाय है, आत्मा के अस्तित्व की अस्वीकृति तृतीय उपाय है। इन तीनों उपायों के अनुपालन से त्रिविध दु:खों का उन्मूलन होता है। इस प्रकार की अवस्था में पुष्ट जीव की पुन: बन्धरूपता नहीं होती। यही निर्वाण की अवस्था है।

## 8.8 बौद्ध तीर्थस्थान

सारनाथ बौद्ध केन्द्र वाराणसी से दस किलोमीटर दूर पर बौद्धों का प्राचीन केन्द्र है। गौतमबुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। बौधगया में ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर वाराणसी आ गए थे। अनन्तर यहाँ सारनाथ में स्थित हुए। शताब्दी के 640 समय में यहाँ 2500 पूजा करने वाले (पुजारी), अशोकस्तम्भ और 100 मीटर ऊँचे स्तूप थे। मुगलवंशियों के शासनकाल में अनेक स्मारक नष्ट हुए। भारतीय सर्वेक्षण विभाग में इसके अवशेष हैं। भारत के राष्ट्रीय चिन्ह पर विद्यमान चतुर्मुखी सिंह इससे ही उद्धृत है। इसमें अशोक निर्मित धमेकास्तूप और अर्धगोलाकर 93 पादोन्नत हैं। धर्मराणि स्तूप के समीप में अशोक ध्यानासक्त थे। मुख्य मन्दिर के सामने स्तम्भ निर्मित था। सारनाथ के आर्कियालाजिकल वस्तु संग्रहालय में मोर्यो कुषाणों और गुप्त काल की मूर्तियाँ हैं। गणेश, सरस्वती, विष्णु इत्यादि की मूर्तियाँ भी यहाँ हैं। आधुनिक काल में भी सारनाथ क्षेत्र दर्शनीय क्षेत्र है

#### बौद्ध स्थान-2

गया विहार का द्वितीय महानगर है। गया मण्डल का केन्द्र है। गया बिहार की राजधानी पटना से 100 किलोमीटर दूर पर स्थित है। फाल्गुन नदी के (रामायण में 'निरञ्जन' निर्दिष्ट है) तट पर विद्यमान हिन्दी-बौद्ध-जैन धर्मियों का पवित्र स्थान है। इस नगर के चारों ओर तिसृषुदिक्षु पर्वत हैं (मन्नलगौरी, शृन्नस्थान, राम्शिला, ब्रह्मयोनी) चार दिशाओं वाली (पूर्वा) नदी बहती है। प्राकृतिक परिसर, पुराने भवनों तथा निबिड़ मार्गों से युक्त है।

टिप्पणी

## 8.9 बुद्धजयन्ती

जन्मदिन का आचरण 'जयन्ती' शब्द से निर्दिष्ट है। यथा- 'गांधी जयन्ती' जो अक्टूबर मास की द्वितीय दिनांक पर आचरित है, और इस दिन गांधी महोदय का जन्म हुआ। बुद्ध जयन्ती तो विशिष्ट है। महात्मा बुद्ध के जीवन के तीन प्रमुख घटना उसी दिन में घटित हुई। प्रथम घटना उनका जन्म। ईसा.पू. छठी शताब्दी में वैशाख मास के पूर्णिमा के अवसर पर कपिलवस्तु राज्य में सिद्धार्थ रूप में उन्होंने जन्म प्राप्त किया। अपने जीवन के उन्नतीस (29) वर्ष पर्यन्त भी वह नहीं जानते थे कि सभी के जीवन में अस्वास्थ्य वेदना-कष्ट-मरण आदि सम्भव होते हैं। पुत्र द्वारा यह दु:ख आदि न ज्ञात हो वैसी व्यवस्था उसके पिता राजा शुद्धोदन ने कल्पित की। कभी रथ द्वारा नगर मार्ग में गए सिद्धार्थ ने लोगों के रोग, मरण आदि प्रत्यक्ष देखा। इसने उनके जीवन मार्ग को ही परिवर्तित कर दिया। जीवन के अर्थ के अन्वेषण में उनका मन प्रवृत्त हुआ। किसी रात्रि में वह राजमहल को त्यागकर चले गए। आठ वर्ष उन्होंने सर्वत्र भ्रमण किया। अन्त में बोधगया क्षेत्र में बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करके उन्होंने ज्ञानबोध प्राप्त किया। और वह दिन वैशाख पूर्णिमा ही था। उस दिन से उन्होंने आत्मा की प्राप्ति के ज्ञान के प्रसार के लिए फिर से देश सञ्चारण आरम्भ किया। अस्सी (80) वर्ष में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। और वह दिन भी वैशाखपूर्णिमा ही था। अतएव 'वैशाख पूर्णिमा' 'बुद्ध पूर्णिमा' के रूप में प्रसिद्ध है। बौद्धमत के अनुयायी बुद्ध पूर्णिमा के दिन पर बोधगया में समाविष्ट होते हैं। प्रार्थना सभा, धार्मिक चर्चा, बुद्धोपदेश का जप, बौद्धग्रन्थों का पठन, सामूहिक ध्यान, शोभायात्रा इत्यादि अनेक कार्यक्रम वहाँ आयोजित होते हैं। यात्री उन दिनों में उत्तरप्रदेश में स्थित सारनाथ आदि पवित्र स्थानों पर महान प्रयास से जाते हैं।

### पाठगत प्रश्न 8.2

1. आर्य चतुष्टय क्या है?
2. बौद्ध दर्शन में दो शाखाओं के नाम क्या है?
3. बौद्धदर्शन में मोक्ष क्या है?
4. बौद्ध धर्म में आर्यसत्य के मार्ग के कारण कितने हैं और वे क्या हैं?
5. बौद्धदर्शन में अष्टाङ्गिक मार्ग क्या हैं?
6. दो बौद्धतीर्थ स्थान लिखिए।

## पाठान्त प्रश्न

1. गौतम बुद्ध का जीवन परिचय लिखिए।
2. अष्टाङ्गिक मार्ग का परिचय कराएं।
3. बौद्ध दर्शन के मोक्ष को प्रतिपादित कीजिए।
4. बौद्ध दर्शन के दार्शनिक को आधार लिखिए।
5. बौद्ध दर्शन के प्रमा और प्रमाण लिखिए।
6. बौद्ध दर्शन की आचार मीमांसा को लिखिए।

## पाठसार-

बौद्ध दर्शन का भारतीय दर्शन साहित्य में क्या अवदान है, वह हमारे द्वारा इस पाठ में देखा गया। भगवान् गौतम बुद्ध का परिचय यहाँ हमारे द्वारा प्राप्त है। बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय सिद्धान्तों का भी ज्ञान पाठ में है। और हीनयान-महायान शाखाओं का भी ज्ञान होता है। मोक्ष और उसका साधन भी ज्ञात है। बौद्धों के अष्टाङ्गिक मार्ग का परिचय हुआ। बौद्धधर्म के उद्भव और आधार भी हमारे द्वारा ज्ञात हुए। बौद्ध धर्म की प्रमा शुद्ध ज्ञान ही है। और बौद्ध कितने प्रमाण स्वीकार करते हैं वह भी यहाँ वर्णित है। इस प्रकार भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का माहात्म्य ज्ञात हुआ।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-8.1**

1. बौद्ध धर्म के प्रतिष्ठाता भगवान् गौतम बुद्ध।
2. बौद्ध दर्शन नास्तिक दर्शन है।
3. गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन और माता मायादेवी थे।
4. कपिलवस्तु नामक नगर में जन्म हुआ।
5. बौद्ध दर्शन में चार सम्प्रदाय है।
6. चार कोटि का ज्ञान रहित शुद्ध ज्ञान है।
7. वैभाषिकों के मत में बाह्य पदार्थ सत् है।

टिप्पणी

8. सौत्रान्तिकों के मत में बाह्य पदार्थ असत् है।

9. सौत्रान्तिकों के मत में बाह्य पदार्थ अनुमेय है।

10. ई.पू. 226 में बुद्ध का जन्म हुआ।

**उत्तर-8.2**

11. बुद्ध मत द्वारा चार आर्य-सत्य इस प्रकार से निर्दिष्ट है- दु:ख, दु:खसमुदाय, दु:खनिरोध और दु:खनिरोध गामिनी उपाय।

12. हीनयान और महायान बौद्धदर्शन की दो शाखाएँ।

13. जीव का अज्ञान नाश ही मोक्ष है।

14. बुद्ध के मतानुसार आर्य-सत्य मार्ग के बारह कारण हैं- जरामरण, जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायनत, नामरूप, विनय, संस्कार और अविद्या।

15. बौद्धदर्शन में अष्टाङ्गिक मार्ग होते हैं- सम्यक् वाक्, सम्यक् स्मृति, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् समाधि, सम्यक् आजीव, सम्यक् कर्म।

16. गया और सारनाथ दो बौद्ध तीर्थ स्थान हैं।

॥अष्ट पाठ समाप्त॥

# 9

# आर्हत दर्शन

## प्रस्तावना

दसवीं कक्षा के लिए यह पाठ विरचित है। भारतीय दर्शन में जैन दर्शन का प्रभाव तो आज भी दिखता है। भारतीय दर्शन के परिचय के लिए जैन दर्शन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। और भी, जैन दर्शन ने भारतीय दर्शन में कैसे अपनी परिधि स्थापित की। उसका प्रसार कैसे हुआ? उनके आचार व्यवहार के विषय में आलोचना यहाँ की जाती है। जैन सम्प्रदाय में जीव का क्या स्वरूप है? आत्मा के स्वरूप के विषय में क्या कहा गया है? उनके नास्तिकत्व को कैसे लिया जाता है? वे वेद को स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु वे किस ईश्वर को स्वीकार करते हैं अथवा नहीं, ये विषय यहाँ आलोचित हैं। और भी? दशम कक्षा के लिए जैसे कठिन न हो वैसा वाक्य-विन्यास है। अत: विषय की भी वैसी ही रचना की जाती है यथा छात्रों को सुख-बोध हो।

## उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- जैन दर्शन की सम्यक् धारणा जान पाने में;
- जैन धर्म गुरूओं के नाम जान पाने में;
- जैन दर्शन के प्रमा का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- जैन दर्शन का प्रमाण-ज्ञान जान पाने में;
- जैन दर्शन के मोक्ष-विषय में धारणा जान पाने में;
- जैन दर्शन का भारतीय दर्शन पर प्रभाव कैसा था, यह जान पाने में।

टिप्पणी

- जैन दर्शन का उद्भव कैसे हुआ, यह जानने में समर्थ होंगे;
- जैन दर्शन द्वारा कैसे मुक्ति-लाभ होता है, जानने में समर्थ होंगे;
- जैनों के नास्तिकत्व को जानने में समर्थ होंगे;
- जैनों के वेद खण्डन के प्रकार को जानने में समर्थ होंगे।

## 9.1 भूमिका

जैन दर्शन भारतीय दर्शनों में अन्यतम है। चार्वाक विचारधारा के अनन्तर नास्तिक दर्शनों में जैन दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। चार्वाक मत के स्थूल तत्वों के चिन्तन की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों के प्रति चिन्तन की प्रवाहिकता जैन दर्शन में दिखती है। जहाँ चार्वाक शरीर को आत्मा स्वीकार करते हैं वहाँ जैन दर्शन द्वारा आत्मा को शरीर से अतिरिक्त अभौतिक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया। और वह शरीर परिमाण अथवा मध्यम परिमाण अभिमत है।

वैदिक दर्शन में प्राय: यह प्रतिपादित है कि आत्मा अणुपरिमाण अथवा महत्परिमाण है- 'अणोरणीयान् महतो महीयानिति'। अणुपरिमाण अथवा महत्परिमाण के नित्यता के कारण आत्मा नित्य है, ऐसा वैदिकों के द्वारा माना गया है। उनके मत के अनुसार मध्यम परिमाणत्मक पदार्थ अनित्य हैं। जैन दर्शन में मध्यम परिमाण आत्मा नित्य है। वह भौतिक पदार्थवत् अनित्य है। दार्शनिक विचार के क्रम से इन दोनों दर्शनों का पौर्वापर्य स्पष्ट रूप में दिखता है। ऐतिहासिक साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध होता है कि चार्वाक के पश्चात् जैन दर्शन का विकासक्रम होता है। इसकी भी गणना नास्तिक दर्शनों में विहित है, क्योंकि यहाँ वेदों का प्रामाण्य स्वीकृत नहीं है। तथापि इसका लक्ष्य चार्वाक के समान स्थूल पदार्थ का विवेचन नहीं है। त्रिविध दु:खों के द्वारा आत्यन्तिक मुक्ति ही यहाँ लक्ष्यभूत होती है। आस्तिक दर्शनों का भी यही लक्ष्य है। अत: जैन दर्शन आस्तिक धारा को कुछ अंशों में अनुकरण करता है।

## 9.2 आत्मा

आत्मा जैन मत में परिमाणी द्रव्य है, जीव अस्थिकाय स्वरूप होता है, इत्यादि अवधारणाओं के द्वारा सूक्ष्म तत्वों की भी भौतिकता सिद्ध होती है। जैन दर्शन में जीवात्मा का पार्थक्य नहीं होता है। विभिन्न दर्शन में आत्म पद द्वारा जो कहा जाता है यहाँ जैन दर्शन में वही जीव पद द्वारा कहा जाता है। जीवात्मा ही नित्य विभु होता है। आत्मा स्वरूपत: निराकार होती है, तभी शरीर के आकार के द्वारा प्रवेश करके देह के समान परिमाण विशिष्ट होती है। शरीर का आयतन ही आत्मा का आयतन है। वैदिक दर्शनों से विपरीत दर्शन के कारण इसकी नास्तिक संज्ञा होती है। जीवात्मा के सम्बन्ध

टिप्पणी

में जैन सिद्धान्तों का चार्वाक सिद्धान्तों के साथ कोई भी साम्य दिखता है। अतएव चार्वाक के उपरान्त इसकी विद्यमानता के द्वारा अनुकरण में सन्देह नहीं है।

## 9.3 जैन दर्शन का उद्भव

जैन धर्म यद्यपि अनादि और सनातन है, तथापि उसके युग प्रवर्तक ऋषभदेव थे। ऋषभदेव ऐतिहासिक महापुरूष थे उनका इतिवृत्त उपलब्ध है। हिन्दू धर्म के अवतारवादियों की अवधारणा के द्वारा चौबीस अवतारों में षष्ठ अवतार ऋषभदेव थे। तीर्थंकरों में आदिभूत होने के कारण यही आदिनाथ भी कहे जाते हैं। आदिनाथ के अनन्तर जैन दर्शन के तीर्थंकर परम्परा धर्म-दर्शन के विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। वह जैसे- आदिनाथ (ऋषभदेव), आजिनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रनाथ, सुविधनाथ, शीतननाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्युनाथ, अहरनाथ, मल्लिनाथ, सुव्रतनाथ, नाभिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर।

जैन दर्शन के युग प्रवर्तक आचार्य तीर्थंकर कहे जाते हैं। जैन दर्शन की तत्वसिन्धु के निमज्जन के लिए मार्गदर्शक तीर्थंकर संज्ञा को प्राप्त करते हैं। यहाँ तीर्थंकर पद का लाक्षणिक प्रयोग होता है। तीर्थंकरों में अन्तिम वर्धमान का ऐतिहासिक परिचय अवश्य उपलब्ध होता है। वर्धमान का जन्म ईस्वी पूर्व 599 वर्ष में बिहार प्रदेश में हुआ। तीस वर्ष का होने पर वर्धमान द्वारा संन्यास को ग्रहण किया गया, कैवल्य के लिए कठोर तप विहित है। स्वलक्ष्यसिद्धि के कारण यह सर्वज्ञ भी जाने जाते है।

जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय में दार्शनिक चिन्तन पर्याप्त रूप से हुए हैं। पञ्चमहाव्रतों के अतिरिक्त शारीरिक-मानसिक-वाचिक चेष्टाओं में नियन्त्रण की भी आवश्यकता प्रतिपादित है। क्योंकि इसके द्वारा ही मृत्युपर्यन्त कष्ट सहने की क्षमता उत्पन्न होती है। चौदह गुण स्थानों का अनुभव भी दार्शनिक चिन्तन का ही विषय होता है। ये गुण स्थान इस प्रकार से कहे गए हैं-

मिथ्याव्रत, सासादन, मिश्र, अविरत, सम्यक्त्व, देशविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली और अयोगकेवली।

जैन साहित्य ऐतिहासिक चिन्तन द्वारा चार भागों में विभक्त है- आगमकाल, आरम्भयुग, मध्ययुग, और अवान्तरयुग। आगमकाल में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय का आगम साहित्य उत्पन्न हुआ-

1) आचारंगसूत्र
2) सूत्रकृतान्न
3) स्थानान्नसूत्र
4) समवायन्नसूत्र
5) भगवतीसूत्र
6) ज्ञातधर्मकथा
7) उपासकदशा
8) अन्तकृतदशा

टिप्पणी

9) अनुत्तरोपपादिकदशा
10) प्रश्नव्याकरण
11) विवाङ्सूत्र
12) दृष्टिवाद

## 9.4 आरम्भकाल

जैन दर्शन का आरम्भ दिगम्बर सम्प्रदायाचार्य के उमास्वामी विचारधाराओं द्वारा होता है। उमास्वामी द्वारा तत्वार्थ सूत्र की रचना विहित है। इन तत्वार्थ सूत्रों में समय-समय पर वृत्ति, भाष्य आदि भूषित ग्रन्थ प्राप्त होते रहे। जैन दर्शन के ये सूत्र पाणिनि सूत्रों के समान हैं।

उमास्वामी के अनन्तर दिगम्बर सम्प्रदाय के ही आचार्य कुन्दकुन्दन द्वारा नियमासार-आचारान्तिक -कामसार-समयसार-प्रवचनसार नामक ग्रन्थ विरचित हैं। कुन्दकुन्दनाचार्य की ये रचनाएँ ही जैन दर्शन का विश्वकोश मानी जाती है। आचार्य समन्तभद्र ने भी जैन दर्शन के क्षेत्र में अभिनव चिन्तन प्रस्तुत किया। देवनन्दी द्वारा जैनेन्द्रव्याकरण में आचार्य समन्तभद्र का उल्लेख विहित है। इसकी रचनाओं में आप्त मीमांसा, युक्त्यनुसन्धान, स्वयम्भूस्तव जिनस्तुतिशतक, रत्नकरण्डक श्रावकाचार, जीवसिद्धि, तत्वानुसन्धान, गन्धहस्तिभाष्य आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

## 9.5 मध्यकाल

जैन दर्शन का विकास मध्यकाल के प्रारम्भ में ईस्वी षष्ठ शताब्दी में होता है। नवम शताब्दी पर्यन्त काल मध्यकाल ही निर्धारित है। यह काल जैन साहित्य का स्वर्णयुग है। जैन दर्शन के बहुत से मौलिक ग्रन्थों की रचना इस काल में ही हुई। इस काल खण्ड में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने न्यायावतार-सन्मतितर्क -तत्वार्थटीका-प्रभृति ग्रन्थों की रचना की। इन रचनाओं में न्यायावतार ग्रन्थ जैन दर्शन का स्वरूप प्रस्तुत करता है। आठवीं शताब्दी में हरिभद्रसूरि द्वारा भी षड् दर्शन समुच्चय-अनेकान्तवाद-जयपताका आदि ग्रन्थ विरचित हैं। भट्ट अकलक द्वारा तत्वार्थ-सूत्रों में राजवार्तिक ग्रन्थ का प्रणयन किया गया। न्याय विनिश्चय और प्रमाण संग्रह भी अकलक की ही जैन न्याय शास्त्रीय दो रचनाएँ हैं।

## 9.6 अवान्तर काल

दसवीं शताब्दी के बाद अवान्तरकाल का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है। इस काल में देवसूरि प्रमुख आचार्य हुए। देवसूरि द्वारा भी जैन-न्याय क्षेत्र में प्रमाणानयन तत्व आलोकाकार, इस ग्रन्थ की रचना की गई। इसी ग्रन्थ में इन्हीं आचार्य के द्वारा स्वयं स्याद्वादरत्नाकर नामक टीका ग्रन्थ लिखा गया है। बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र द्वारा काव्य व्याकरण के

क्षेत्र में नूतन साहित्य रचा गया। प्रमाण मीमांसा हेमचन्द्र की सुप्रसिद्ध रचना है। वस्तुतः यह अद्वितीय दार्शनिक रचना है।

तेरहवीं शताब्दी में मल्लिषेणसूरि ने 'स्याद्वादमञ्जरी' की रचना की। जैन दर्शन में यह रचना पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। यह रचना हेमचन्द्र की 'अन्ययोगण्यवच्छेद' इस द्वात्रिंशिका ग्रन्थ की टीका है। पन्द्रहवीं शताब्दी में गुणरत्न द्वारा हरिभद्र रचित षड्दर्शन समुच्चय को लक्ष्यीकृत करके टीका ग्रन्थ रचा। सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य यशोविजय द्वारा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषाओं में अनेक खण्डन- मण्डनात्मक ग्रन्थों का सृजन विहित है। जैन तर्क भाषा इसकी प्रमुख कृति है। ग्रन्थों की उपादेयता के साथ भाषागत वैशिष्ट्य भी वहाँ स्पष्ट दिखता है।

## 9.7 जैन दर्शन की तत्व मीमांसा

जैन दर्शन के अनुसार निखिल ब्रह्माण्ड के मूल में सात पदार्थ विद्यमान होते हैं। दृश्यमान सम्पूर्ण जगत उनका ही परिणाम है। ये सात पदार्थ जैन दर्शन के ग्रन्थों में इस प्रकार से उल्लिखित हैं- जीव तत्व, अजीव तत्व, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष। अब इनका यथाक्रम विवेचन किया जाएगा।

### 9.7.1 जीव तत्व

जीव तत्व आत्मा की सांसारिक अवस्था रूप है। यह चेतन होता है, अनन्त ज्ञान दर्शन सामर्थ्यों से युक्त होता है। व्यवहार जगत् में पूर्व अर्जित कर्मों के प्रभाव से जीव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त सामर्थ्य से युक्त नहीं होता है। उस अवस्था में यह जीव औपशमिक, क्षायिक, क्षायौपशमिक, औदयिक, पारिणामिक भावों के साथ होता है। इनके संपर्क से जीव स्वशुद्ध स्वरूप से भिन्न भासित होता है। द्रव्य के समान परिवर्तित होने पर जीव ही पुद्गल रूप में व्यक्त होकर संसार कहलाता है। जीव परिणामी है। उसकी सभी क्रियाएँ पूर्व में किए कर्मों का परिणाम स्वरूप होती है। जब यह चेतन किसी भी कर्म में प्रवृत्त होता है तब उस प्रवृत्ति का कारण भी पूर्वोपार्जित कर्म ही होता है। प्राप्त शरीर के अनुसार स्थूल और कृश (पतला) होता है। कर्मफल का भोक्ता भी जीव ही है। वह ही उर्ध्व कहलाता है। जीव में कर्म द्वारा प्रवेश का कारण अविद्या होती है। क्योंकि अविद्या से उत्पन्न कर्म ही जीवात्मा को सांसारिकता द्वारा आबद्ध करती है। बन्धमुक्ति का उपाय ज्ञान है। सत्कर्मों के परिणामस्वरूप बन्धन अवस्था में ही ज्ञान उत्पन्न होता है ऋत में ज्ञान की मुक्ति नहीं होती, इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान बद्ध जीव के लिए अत्यावश्यक होती है। यह जीव अवयवी भी कहलाता है। अवयव के संघातरूप के कारण यह अस्तिकाय भी है। चैतन्य और अनुभूतियोग जीव के दो प्रमुख गुण हैं। जीव का परिणाम पर्याय भी होता है। और वह चार प्रकार का प्रतिपादित है - 1) दिव्य 2) मानुष 3) नारकीय 4) तीर्थ पर्याय के भी दो प्रकार है- द्रव्यपर्याय

और गुण पर्याय। भिन्न द्रव्यों में भी जो ऐक्य प्रतीत होता है वह द्रव्यपर्याय कहा जाता है। परिणाम के कारण द्रव्य का गुणों में जो परिवर्तन दिखता है वह गुण पर्याय होता है।

## 9.7.2 अजीव तत्व

अजीव धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-काल के भेद से पाँच प्रकार का है। इनमें आकाश नित्य अवयव है, अतः वह अनस्तिकाय भी होता है। गतिमान जीव पुद्गल सहकारी कारण और द्रव्य विशेष धर्म कहलाता है। तथा जलचर के लिए जल, इससे विपरीत स्थितिमान् जीव पुद्गल स्थितिकारण और द्रव्य विशेष अधर्म कहलाता है। यथा परिश्रान्त के लिए आश्रय। अस्तिकाय द्रव्यों का आश्रयप्रद द्रव्य आकाश है। यह अनुमानसिद्ध पदार्थ है। क्योंकि बहुदेशव्यापी जीव पुद्गल धर्म अधर्म का विस्तार करके प्रदेशपर्याय आकाश की सिद्धि होती है। आकाश भी दो प्रकार का होता है- लोकाकाश और अलोकाकाश। पुद्गल जड़द्रव्य होता है। ''पूरयन्ति गलन्ति च पुद्गलाः'' इस व्युत्पत्ति द्वारा पुद्गल परिपूर्ण द्रव्य है। पुद्गल अणुरूप और संघातरूप दो प्रकार के होते हैं। इनके अणु निरवयव होते हैं। संघात तो रूप-रस आदि गुण चतुष्येन द्वारा समूह रूप होता है। काल भी प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, तथापि अनुमान के द्वारा ही काल की सिद्धि होती है। क्योंकि सम्पूर्ण जगत् परिणामशील है। परिणाम के हेतु द्वारा काल सिद्ध होता है। काल के बिना पदार्थों की स्थिति असम्भव है। प्रत्येक परिणाम कालाश्रित है। अतः काल का अनुमान करते हैं। विस्तार के अभाव में काल अस्तिकाय द्रव्य भिन्न दिखता है।

### पाठगत प्रश्न 9.1

1. प्रथम तीर्थंकर कौन हैं?
2. महावीर कौन हैं?
3. जैन दर्शन के मत में कितने प्रमाण हैं?
4. पुद्गल क्या है?
5. द्रव्य का लक्षण क्या है?
6. जैन मत में ज्ञान के कितने प्रकार हैं?
7. अनेकान्तवाद किनका मत है?
8. कितने तीर्थंकर हैं?
9. पञ्चमहाव्रत क्या हैं?
10. द्रव्य के कितने भेद हैं?

## 9.7.3 आस्रव तत्व

योग द्वारा कर्मपुद्गलों का जीव में प्रवेश आस्रव है। आस्रव के सम्पर्क से ही जीव बन्ध में गिरता है। जैन दर्शन में मनोवाक् कर्म क्रिया युक्त स्वीकार किये जाते हैं। ये ही योग संज्ञा द्वारा कहे जाते हैं। क्योंकि कर्मपुद्गल जड़ होते हैं, अतः स्वयं जीव उन कर्मों में प्रविष्ट नहीं हो सकता। अपितु योग के द्वारा कर्मपुद्गलों का जीव में स्वाभाविक रूप से प्रवेश होता है। आस्रव ही बन्ध का कारण है। और वह दो प्रकार का होता है- भाव आस्रव और द्रव्य आस्रव। जब कर्मपुद्गलों का जीव में प्रवेश नहीं होता तब वह भाव आस्रव कहलाता है। जीव में कर्मपुद्गलों का प्रवेश ही द्रव्य आस्रव कहा जाता है। उदाहरणार्थ वस्त्र के आदिकारण के अनन्तर मलिनता प्राप्ति रूपी कार्य में दो क्रियाएँ दिखती है। प्रथम क्रिया आदिकारण है और अपर धूलिकणों द्वारा संसर्गरूप है। मलिनता के दोनों ही हेतु होते है वहाँ जलसिक्ति में भाव आस्रव है, धूलकण संसर्ग में द्रव्य आसव होता है। प्रधानभूत आस्रव सत्रह हैं। जो मनोयोगों, वाग्योगों, और काययोगों के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों के चार कषायों के और पञ्चमहाव्रतों के परित्याग से उत्पन्न होते हैं।

## 9.7.4 बन्ध तत्व

जीव में कर्मपुद्गलों के प्रवेश से उत्पन्न बन्धभाव ही बन्ध कहलाता है। बन्ध भी दो रूपों में व्यवहृत होता है। वह भावबन्ध और द्रव्य बन्ध है। बन्ध का कारण आस्रव होता है क्योंकि आस्रव ही जीव के मूलस्वरूप को नष्ट करता है। मिथ्यात्व, अविरति, व्रत आदि नियमों की अनायास उपेक्षा और बन्ध के हेतु हैं।

## 9.7.5 संवर तत्व

कर्म पुद्गलों के जीव में प्रवेश का अविरोध संवर कहलाता है। यह अवरोध वस्तुतः आस्रव का और आस्रव जन्य बन्ध का होता है। इसका क्रियान्वय सभी विकारों से रहित होने पर ही सम्भव होता है। संवर के भी दो भेद है- भावसंवर और द्रव्य संवर। जैन दर्शन में कर्मपुद्गलों के जीव में प्रवेश के 62 उपाय कहे गए हैं। उनमें पाँच बाह्य और अवशिष्ट आभ्यान्तर हैं।

बाह्य उपाय समिति भी कहे जाते हैं। वे हैं- ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आसन्निक्षेपण समिति, प्रतिस्थापना समिति। जो सम्भव उपाय हैं वे गुप्ति कहलाते हैं। वे हैं मनोगुप्ति और कायगुप्ति। समितियों में सत्क्रिया प्रवृत्त होती हैं किन्तु गुप्तियों में असत्क्रिया निवृत्त होती है। संवर की प्रक्रिया में परीषह का महत्वपूर्ण योगदान है। मुक्ति मार्ग में प्रवृत्ति के लिए कर्म के क्षय के लिए गृह्यमाण सहिष्णुत्व को परीषह कहते हैं। परीषह के बाईस (22) भेद हैं। कर्म के क्षय के लिए पाँच महाव्रतों के द्वारा, दश धर्मों के द्वारा, बारह अनुप्रेक्षाओं के द्वारा, और पाँच चरित्रों के द्वारा संवर का अनुष्ठान

होता है। चरित्र के पाँच भेद हैं। वहाँ इस प्रकार से कहा गया है- सामयिक, छोदोस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात। इनके सभी के अनुपालन से जीवात्मा में कर्मपुद्गलों के प्रवेश का निरोध होता है।

## 9.7.6 निर्जरा तत्व

आत्मा में कर्म पुद्गलों के नूतन प्रवेश का अवरोध, और पूर्व में अवशिष्ट पुद्गलों का विनाश निर्जरा कहलाता है। निर्जरा को अवलम्बित करके कोई साधक आत्मदर्शन कर सकता है। यथार्थ तो यह है पूर्वोक्त 62 उपायों की साधना कठोर श्रम साध्य होती है। वहाँ से भी अधिक श्रम आत्म स्थानों के कर्मपुद्गलों के विनाश कार्य में होता है। साधक की यह अवस्था निदिध्यासन स्वरूप होती है। इसी अवस्था द्वारा साधक आत्यन्तिक दु:खनिवृत्ति को अनुभव करता है। निर्जरा भी जैन दर्शन में दो प्रकार से प्रतिपादित है- भाव निर्जरा और द्रव्यनिर्जरा। आत्म स्थानों के कर्मपुद्गलों के विनाश की भावना भाव निर्जरा होती है। उन कर्मपुद्गलों के विनाश की क्रिया द्रव्यनिर्जरा होती है। कर्मपुद्गलों के विनाश की भावना दशा में कर्मों के उपभोग के अनन्तर कर्मपुद्गल स्वत: ही नष्ट होते हैं। वह दशा सविपाकभावनिर्जरा कही जाती है। और यदि कर्मों के उपभोग से पूर्व ही कर्मपुद्गलों का विनाश होता है, तब साधक की वह दशा अविपाकभावनिर्जरा कहलाती है। यह अविपाकभावनिर्जरा अतीव दुर्लभ मानी जाती है। इसके लिए कठोर तप की आवश्यकता प्रतिपादित है।

## 9.7.7 मोक्ष तत्व

कर्मपुद्गलों से पूर्णतया मुक्त होकर जीवात्मा सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होता है। जैन दर्शन में आत्मा की यह अवस्था जीवनमुक्ति अथवा मोक्ष को कहते हैं। यह मोक्ष भावमोक्ष ही होता है। पूर्ण रूप में मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान वरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायों के, चार घातीयकर्मों के, आयु-नाम-गोत्र-वेदनीय-संज्ञकों के चार अघातीयकर्मों का भी विनाश आवश्यक होता है। इसके अनन्तर ही द्रव्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

मोक्ष की अवस्था में जीव सभी औपशमिक-क्षणौपशमिक-औदर्यिक-भव्यत्व आदि भावों द्वारा मुक्त होता है। वह ऊर्ध्वगतिशील होता है। अतएव ऊर्ध्व ही हो जाता है। किन्तु लोकाकाश से परे जो अलोककाश है वहाँ धर्मास्तिकाय के अभाव में जीव प्रविष्ट नहीं हो सकता है। वह पुन: वहाँ से संसार में भी आने में समर्थ नहीं होता। जैन दर्शन के अनुसार मुक्त जीव परमात्मा में ऐक्यभावं को प्राप्त नहीं करता। अर्थात् परमात्मा में उसका लय नहीं होता है। परिणामस्वरूप मुक्त जीव भी अनन्तकालपर्यन्त सिद्धशिला में ही रहता है। यही मोक्ष माना जाता है।

टिप्पणी

## 9.8 प्रमाण परिचय

जैन दर्शन में ज्ञान को दो प्रकार का स्वीकार किया गया है, निविकल्प और सविकल्प। निर्विकल्प के चार भेद है, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल। सविकल्प के पाँच भेद होते हैं- मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्याय और केवल। सविकल्प के ज्ञान के पञ्चभेद ही प्रमाण के लिए विषयीभूत स्वीकार किये जाते हैं। प्रमाण तो यथार्थ ज्ञान होता है, जिसको जीव स्वतः किसी भी सहायता के बिना प्राप्त करता है। जैन दर्शन में प्रत्यक्ष के लिए मन अथवा इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वहाँ सर्वदा वस्तुओं के यथार्थज्ञान को ही उत्पन्न करता है। जैन दर्शन में प्रमाण दो प्रकार का निरूपित है। उसमें प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है पारमार्थिक और व्यावहारिक। पारमार्थिक प्रत्यक्ष वह है जो कर्म प्रभाव से मुक्त हो, स्वतन्त्र रूप से आत्मा को प्रकाशित करे। इसके द्वारा ही जगत् प्रकाशित होता है। जिस ज्ञान के लिए जीव इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष और मन पर निर्भर होता है, वह व्यावहारिक प्रत्यक्ष होता है।

साकार ज्ञान के मति-श्रुति-अवधि-मनः पर्याय और केवल भेद से पञ्च प्रकार हैं। इनमें मतिज्ञान चार प्रकार से प्रतिपादित हैं - अवग्रह अर्थात् संयोगसन्निकर्ष, ईहा संयुक्तसमवायरूप, अवाय संयुक्तसमवेतसमवाय रूप और धारणा। आगम अथवा आप्तवचनों द्वारा प्राप्त ज्ञान श्रुतज्ञान होता है। मति और श्रुत ज्ञान भी भेदकत्व जैन दर्शन में निर्दिष्ट है। इस प्रकार मतिज्ञान केवल वर्तमानाश्रित होता है किन्तु श्रुतज्ञान त्रैकालिक होता है। जैन आगमानुसार श्रुतज्ञान मतिज्ञान की अपेक्षा प्रामाणिक है। क्योंकि मतिज्ञान परिणाम पर आश्रित होता है। किन्तु श्रुतज्ञान आप्तवचन और कारणातीत है। घातीय और अघातीय कर्मों से मुक्त जीव जब इन्द्रियों-करणों के बिना ज्ञान प्राप्त करता है, तब वह ज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाता है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं- केवल ज्ञान और विकलज्ञान। राग द्वेष आदि रहित अर्हतों में विद्यमान केवल ज्ञान होता है। विकाल ज्ञान तो अवधि और मन पर्याय के भेद से दो प्रकार का होता है। ज्ञानवारण विनष्ट होने पर देवताओं और नारकीयों में स्वभाव से उत्पन्न ज्ञान, मनुष्यों में इतरतिर्यग्योनियों में प्रयत्नपूर्वक विधीयमान सम्यक् दर्शन जन्य ज्ञान अवधिज्ञान में होता है। सम्यक् चरित्र द्वारा ज्ञानावरण के नष्ट होने पर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, जन मानसों में सीमित दिखता है, वह मनः पर्याय ज्ञान होता है। यह विशेष तपस्वियों द्वारा ही प्राप्त होता हैं परोक्ष प्रमाण (अनुमान) हेतु द्वारा साध्य के ज्ञान में जो प्रक्रिया होती है वह अनुमान कहलाती है। अनुमान भी दो प्रकार से प्रतिपादित है- स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। बहुत से दृष्टान्तों के द्वारा एक अनिश्चत अवधारणा की पुष्टि स्वार्थानुमान है। यथा अनेक बार धूम को वह्नि युक्त देखकर दर्शक अपने मन में निर्धारित करता है- जहाँ जहाँ धूम है, वहाँ वहाँ अग्नि है। यहाँ कारण रूप धूम एवं कार्यरूप वह्नि साहचर्य व्याप्ति कहलाता है। अतः साहचर्य नियम ही व्याप्ति है, यह सिद्धान्त निर्धारित है। कभी कहीं सुदूर पर्वत आदि पर धूम को देखकर पूर्वनिश्चत व्याप्ति के स्मरण से "जहाँ जहाँ धूम, वहाँ वहाँ अग्नि" इस नियम के आधार पर दर्शन पर्वत पर वह्नि-ज्ञान (अग्नि का ज्ञान) करता है। दर्शक

अपने मन में विश्वास करता है कि जहाँ भी धूम होगा वही अग्नि अवश्य होगी। क्योंकि इस धारणा को उसने पहले भी अनेक दृष्ट उदाहरणों द्वारा किया। अतः धूम रहने पर अग्नि के निश्चय में स्वार्थानुमान क्रियान्वित होता है। इस स्वार्थानुमान में जहाँ साध्य की सिद्धि सन्दिग्ध होती है, वह पक्ष होता है, क्योंकि उसमें हेतु रूप धूम स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अर्थात् पर्वतरूपी पक्ष में दृश्यमान धूम पक्ष धर्म है। क्योंकि वह धूम धूमत्व धर्म से विशिष्ट है। धूमवत्व द्वार विशिष्ट धूम की पर्वतरूप पक्ष में विद्यमानता पक्ष धर्मता होती है। एवं व्याप्ति और पक्ष धर्मता अनुमान के मुख्य अंग हैं। अतः व्याप्ति विशिष्ट पक्ष धर्मता का ज्ञान अनुमान माना जाता है।

परार्थानुमान में अनुमान की उक्त विधि अन्य के ज्ञान के लिए योजित है। किन्तु इसमें पाँच अवयव होते हैं- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। यथा ''पर्वत वह्निमान है, धूम के कारण'' इस वाक्य में पर्वत पर अग्नि है, इसके ज्ञापन के लिए प्रतिज्ञा विद्यमान है। 'धूमात् (धूम के कारण)' यह कथन हेतु है क्योंकि धूम के बिना 'पर्वत पर वह्नि है' इसका अनुमान नहीं होता है। ''जहाँ जहाँ धूम है, वहाँ वहाँ अग्नि है'', यथा महानस, यह उदाहरण है। ''जैसे महानस (रसाईघर) में वैसे यहाँ पर्वत पर'', यह उपनय है। ''पर्वत पर भी धूम के कारण अग्नि ही है, अन्य नहीं'', यह निगमन है।

आचार्य भद्रबाहु ने कहा कि परार्थानुमान की प्रक्रिया में दस अवयव होते हैं- 1) प्रतिज्ञा 2) प्रतिज्ञाविभक्ति 3) हेतु 4) हेतुविभक्ति 5) विपक्ष 6) विपक्षप्रतिषेध 7) दृष्टान्त 8) आशय 9) आशयाप्रतिषेध 10) निगमन। अनुमान में प्रायः पक्ष, साध्य और हेतु, ये तीन अंग होते हैं। अनुमान द्वारा जिसका ज्ञान होता है, वह साध्य होता है। यथा ''पर्वतो वह्निमान्'' इत्यादि में वह्नि। जिस आश्रय में साध्य की सिद्धि होती है, वह पक्ष होता है, यथा ''पर्वतो वह्निमान्'' इत्यादि उदाहरण में पर्वत। साध्य की सिद्धि के लिए जो साधन होता है, वह हेतु होता है, यथा ''पर्वतो वह्निमान् धूमवत्वात्'' इत्यादि उदाहरण में धूमवत्व।

## 9.9 नय ज्ञान अथवा स्याद्वाद (स्यात्वाद)

प्रमाण के अतिरिक्त दृष्टि-भेद से भी तत्व ज्ञान की उत्पत्ति सम्भव होती है। यह दृष्टि-भेद 'नय' कहलाता है। जैन दर्शन के चिन्तन में एक वस्तु अनेक धर्मों से युक्त होती है। उन अनेक धर्मों में विद्यमान में भी एक धर्म विशेष के ग्रहण से वस्तु निश्चित की जाती है। उसमें वस्तु-निश्चय की प्रक्रिया नय कहलाती है। नय द्वारा वस्तु के एक ही व्यय का ज्ञान हो सकता है किन्तु प्रमाण से वस्तु के अनेक धर्मों का ज्ञान होता है। नय भी दो प्रकार होता है- निश्चय नय और व्यावहारिक नय। निश्चय नय द्वारा वस्तुओं का तात्विक ज्ञान होता है। व्यावहारिक नय द्वारा वस्तुओं का सांसारिक ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के विभिन्न रूपों को विभिन्न दृष्टि से जानने के लिए अनेक नय जैन दर्शन में स्वीकृत हैं। जिनमें द्रव्यार्थिक नय और पारमार्थिक नय प्रमुख है। कर्मवाद

टिप्पणी

जैन दार्शनिकों के द्वारा भी कर्म ही बन्धनों के मुख्य कारण रूप में स्वीकार किये गए हैं। कर्म के कारण ही जीव का क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चार कषायों द्वारा अनादि और अनन्त सम्पर्क होता है। अतः कर्म ही अविद्या है। यह स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि जीव का कर्मों के उसके सम्पर्क युक्त वस्तुओं से सम्बन्ध रहता है। कर्म सम्बन्धी पुद्गल कर्मपुद्गल होते हैं।

स्वभाववाद और अनेकान्तवाद दो वाद जैन दर्शन में हैं। जैनमतानुसार द्रव्य का होना अथवा स्वभाव परिणामित स्वीकार किया जाता है। अतः उसके उत्पाद-व्यय उत्पन्न होते हैं। तथापि द्रव्य का सत (होना) अथवा मूल ध्रौव्य है। अतः उसका विनाश नहीं होता यथा घट अथवा पट। घट की उत्पत्ति मृत्तिका (मिट्ट) से होती है। और पुनः उसका विनाश होकर ध्वंस रूप बचता है। और वे मृत्तिका ही है। पदार्थ का मौलिक रूप, जैसे घट की मृदा, दोनों अवस्थाओं में होता है। यही ध्रौव्य है। तत्व चिन्तन की दशा में अनेक धर्मों का विचार आवश्यक है। उसी से उस वस्तु के स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। जैन परिणामी नित्यावाद स्वीकार करते हैं। जैनसिद्धान्त के अनुसार सत द्रव्यों में अथवा, व्यय, ध्रौव्य आदि में गुण विद्यमान होते हैं। उत्पाद-विनाश के सदृश अवस्थाओं में भी वस्तु का अस्तित्व सिद्ध होता है। परस्पर विरूद्ध अवस्थाओं में भी विद्यमान यह परिणामी नित्यतावाद अथवा अनेकान्तवाद कहलाता है। जैन मत द्वारा चेतन-अचेतन सभी पदार्थों के असंख्य धर्म हैं। यथा आत्मा में सत्व-व्यापकत्व-चेतनत्व आदि धर्म विद्यमान होते हैं। किन्तु यह धर्म किसी भी अपर वस्तु की अपेक्षा द्वारा होते हैं। किसी भी अन्य की अपेक्षा से नहीं ही होते हैं। एवं किसी की अपेक्षा आत्मा सत् होता है और किसी की अपेक्षा आत्मा असत् है। वस्तुतः वस्तु का स्वरूप न केवल उस वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा नहीं होता है। अपितु अन्य वस्तुओं का भी ज्ञान आवश्यक होता है। जिनकी अपेक्षा मूल वस्तु का स्वरूप जाना जा सकता है। अर्थात् एक वस्तु के अवज्ञान के लिए अन्य वस्तुओं की भी सम्भावना परोक्ष द्वारा होती है। यह सम्भावना जैनदर्शन में 'स्याद्' पद से व्यक्त है।

स्याद्वाद जैन दर्शन में सप्त भंगी न्याय द्वारा प्रदर्शित होता है। वे हैं- 1) स्याद् है। 2) स्याद् नहीं है। 3) स्याद् है और स्याद् नहीं है। 4) स्याद् अवक्तव्य है। 5) स्याद् है और अवक्तव्य है। 6) स्याद्ा नहीं है और अवक्तव्य है। 7) स्याद है और अवक्तव्य नहीं है। यही सप्तभंगीन्याय है।

## 9.10 आर्हत दर्शन में कुछ प्रसिद्ध श्लोक

**''सर्वज्ञो जितरागदिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।**
**यथास्थितार्थवादी च देवोईन्परमेश्वरः॥''**

**अन्वय**- सर्वज्ञः जीतरागदिदोषः त्रैलोक्यपूजितः यथास्थितः अर्थवादी देवः परमेश्वर च अर्हत्।

टिप्पणी

**व्याख्यान**- इस श्लोक में अर्हत के स्वरूप को कहते हैं। जो सर्वज्ञ सभी विशेषण को जानता है। राग आदि दोषों से रहित है। तीनों लोकों में पूज्य है। जैसा देखता है, वैसा कहता है, उसका नाम यथार्थ वक्ता है। और वह ही परमेश्वर भी है। वही अर्हत् पद द्वारा कहा जाता है। अतः जैसा भगवान् का स्वरूप है वैसा ही अर्हत का भी स्वरूप है। राग आदि वासना से उत्पन्न जीव, उसके अतिरिक्त सभी दोषों से रहित आर्हत्। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि जैन ईश्वर को स्वीकार नहीं करते तथापि अर्हत को ईश्वरत् पूजते हैं।

**''यथावस्थिततत्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।**
**योवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥''**

**अन्वय**- मनीषिणः यथावस्थितत्वानां संक्षेपाद् विस्तरेण वा यः अवबोधः (भवति) तं अवबोध सम्यग्ज्ञानं आहुः।

**व्याख्यान**- जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान को स्वीकार किया जाता है। तब सम्यक् ज्ञान क्या है, तो कहते हैं, कि वस्तु की जैसी स्थिति होती है वैसे वस्तुओं तत्वों का ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है। वह संक्षेप से अथवा विस्तार से हो। परन्तु वस्तुओं की यथास्थिति है वैसा ही तत्व ज्ञान सम्यक् ज्ञान होता है। और इस सम्यक् ज्ञान के पाँच भेद होते हैं। इस प्रकार से ज्ञान के प्रकारों द्वारा जैनों की वस्तु अवधारणा होती है।

## पाठगत प्रश्न 9.2

साधु उत्तर का चयन करें -

1. स्याद्वाद के कितने प्रकार हैं।

   क) पाँच  ख) सात  ग) अष्ट  घ) छः

2. जैन क्या ईश्वर को स्वीकार करते हैं।

   क) करते हैं  ख) न स्वीकार करते हैं  ग)दोनों

3. जैन दर्शन के मत में जीव के बन्धन का कारण क्या है?

   क) कर्म  ख) दुःख  ग) अज्ञान  घ) माया

4. जैनमत में ज्ञान का क्या स्वरूप हैं?

   क) स्वप्रकाश  ख) अप्रकाश  ग) अनित्य  घ) ये तीनों नहीं

5. गुप्ति कितने प्रकार की है?

   क) दो  ख) तीन  ग) पाँच  घ) चार

6. जैन मत में काल का स्वरूप क्या है?
7. जैन दर्शन के अनुसार धर्म-अधर्म का स्वरूप क्या है?
8. अनेकान्तवाद का वर्णन कीजिए।
9. जैन सम्प्रदाय का वर्णन कीजिए।

## पाठसार

इस पाठ में जैन दर्शन के विषय में आलोचना की गई है। जैनों का उत्स है। उनके धर्म प्रचारकों के नाम हैं। जैनियों का आचार-अनुष्ठान भी उक्त है। जैनों के प्रमा-प्रमाण के विषय में आलोचना है। इस पाठ में स्याद्वाद का वर्णन भी है। जैनों के जीव के विषय में आलोचना की गई है। जैन दर्शन में मोक्ष क्या है अथवा कैसे मोक्ष होता है उस विषय में आलोचना है। जैनों के अनेकात्मवाद का वर्णन दिखता है। भारतीय दर्शनों में जैनों के स्थान की आलोचना की गई है। और इस पाठ में उसका नास्तिक दर्शनत्व कैसा है, यह प्रदर्शित है।

## पाठान्त प्रश्न

1. जैन दर्शन का अवदान लिखिए।
2. जैन दर्शन के प्रमाण के विषय में आलोचना कीजिए।
3. जैन दर्शन में मोक्ष का स्वरूप लिखिए।
4. पुद्गल, निर्जीव तत्व के विषय में टिप्पणी लिखिए।
5. जैनों के साधन के विषय में आलोचना कीजिए।
6. जैन दर्शन का नास्तिकत्व विचार।
7. जैन प्रमेय के विषय में लघुनिबन्ध लिखिए।
8. अनेकान्तवाद का अङ्गीकार कैसा है, वह प्रतिपादित कीजिए।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-9.1**

1. ऋषभदेव

2. जैनतीर्थंकर
3. दो प्रमाण
4. अचेतन जड़ द्रव्य ही पुद्गल कहा जाता है। ''पूरयन्ति गलन्ति च' इस व्युत्पत्ति द्वारा पुद्गल कहलाता है।
5. गुण पर्याय के समान द्रव्य
6. पाँच प्रकार के हैं
7. जैनों का है।
8. चौबीस तीर्थंकर थे।
9. अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-और अपरिग्रह पाँच महाव्रत हैं।
10. द्रव्य के दो प्रकार हैं। अस्तिकाय और अनस्तिकाय।

## उत्तर-9.2

1. सात प्रकार
2. ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं।
3. कर्म
4. स्वप्रकाश
5. दो
6. जैन मत में काल आकाश का ही अनुमेय है। काल अनस्तिकाय द्रव्य है। काल देश में अथवा एक स्थान पर नहीं रहता है। काल अविभज्य भी है तथा व्यवहारिक प्रयोजन में खण्ड भी किया जाता है। अतीत आदि व्यवहार काल के सहयोग से ही होता है। न्याय-वैशेषिक मत में काल छठा द्रव्य है। काल नित्य, एक, विभु होता है। काल सभी का आधारभूत तथा सभी कार्यों का निमित्त कारण है।
7. हमारे द्वारा जैसे सामान्यतः धर्म-अधर्म अर्थात् पाप-पुण्य जाना जाता है। परन्तु जैन दर्शन में धर्म अर्थात् गति कहा जाता है। अधर्म स्थिति का है। गति-स्थिति के नियामक रूप में धर्म-अधर्म अनुमिति है। वे नित्य, अरूप और निष्क्रिय है। कुछ वेदविहित कर्म अनुष्ठान द्वारा आत्मा में जो गुण उत्पन्न होता है, वह गुण धर्म है। पक्षान्तर में वेदोक्त निषिद्ध कर्म द्वारा आत्मा में जो गुण उत्पन्न होता है वह अधर्म है। सुख से जैसा धर्म का अनुमान किया जाता है तथा दुःख से अधर्म का अनुमान किया जाता है।
8. जैन अनेकान्तवाद को स्वीकार करते हैं। अनेकान्तवाद मत में वस्तु के यथार्थतत्व

टिप्पणी

का एकान्तभाव से नहीं जाना जा सकता है। कारण ही जीव का ज्ञान प्रतिष्ठित होता है। मृन्मयघट यथा मृत्तिका रूप में सत्य है वैसे ही मृत्तिका के विकार रूप में भी सत्य होता है। अपने-अपने सम्प्रदाय के दार्शनिक विशेष दृष्टिभेद से अनेक व्याख्यान करते हैं। परन्तु उनके व्याख्या के अनुसार यह तत्व ही एकान्तभाव से सत्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मतवाद की आंशिक सत्यता होती है, सम्पूर्ण सत्यता नहीं होती है। केवल अपना सम्प्रदाय ही सत्य है, अपर सम्प्रदाय का तत्व मिथ्या है, यह एकान्तभाव द्वारा कहा जाता है। परन्तु वस्तु मात्र अनन्त धर्मविशिष्ट है। अतः यह वस्तु सत् है अथवा असत् यह निर्दिष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता। अतः अनेकान्तवाद स्वीकार करने योग्य है।

19. जैन दर्शन में चौबीस तीर्थंकर हैं। प्रथम ऋषभदेव अन्तिम महावीर। श्वेताम्बर और दिगम्बर जैनों के दो सम्प्रदाय है। श्वेताम्बर सम्प्रदायिक उदारपन्थी होते है। पक्षान्तर में दिगम्बर सम्प्रदायिक चरमपन्थी होते हैं। यद्यपि मौलिक विषय में उनका पार्थक्य नहीं दिखता तथापि आचरण भेद से पार्थक्य दिखता है।

**।।नवम् पाठ समाप्त।।**

# 10

# न्याय दर्शन

## प्रस्तावना

दृशिर् प्रेक्षणे धातु के पर भाव ल्युट् प्रत्यय होने पर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। और वह दर्शन शब्द यद्यपि अनेक स्थानों पर चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञान का वाचक है तथापि इन प्रसंगों में तत्व ज्ञान का वाचक है। और भी, 'दृश्यते अनेन ज्ञायते' करण में ल्युट्-प्रत्यय के योग में निष्पन्न दर्शन शब्द न्याय आदि विद्या का वाचक है। गौण वृत्ति द्वारा वह विद्या प्रतिपादक ग्रन्थ का वाचक है। भारतीय प्राचीन दर्शन वैसे दो प्रकार का है- आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक दर्शन वे जो वेद को प्रमाण रूप में गिनते हैं। वे नास्तिक हैं जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। नास्तिक दर्शन प्रधान रूप से तीन हैं- चार्वाक, बौद्ध और जैन। उनमें कर्म और ज्ञान दोनों काण्ड के ही प्रामाण्य के निराकरण से चार्वाक चरम नास्तिक हैं। बौद्ध और जैन मुख्यत: कर्मकाण्ड का ही प्रामाण्य निराकृत करते हैं। वहाँ पर वे चार्वाक के समान चरम नास्तिक नहीं हैं। आस्तिकों में छ: प्रधान होते हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा। सभी दर्शनशास्त्रों का मूल उद्देश्य मोक्ष ही है। उसके कारण दर्शन शास्त्र को मोक्ष शास्त्र के रूप में कहा जाता है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- न्याय दर्शन का माहात्म्य जान पाने में;
- न्याय शब्द का अर्थ जान पाने में;
- न्याय शास्त्र का बीज जान पाने में;

टिप्पणी



- काल के भेद से न्याय शास्त्र का विभाग कर पाने में;
- न्याय शास्त्र के आचार्यों के बारे में जान पाने में;
- न्याय शास्त्र के विषय में जान पाने में;
- न्याय मत में प्रमाण तत्व जान पाने में;
- न्याय मत में प्रमेय तत्व जान पाने में;
- हेत्वाभास परिचय प्राप्त कर पाने में;
- न्याय मत में मोक्ष जान पाने में;
- असत्कार्यवाद को जान पाने में।

## 10.1 न्याय दर्शन का माहात्म्य

आस्तिक सम्प्रदाय में न्याय दर्शन अन्यतम है। और यह कहीं तर्कशास्त्र अथवा आन्वीक्षिकी नाम से अभिहित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस शास्त्र के महत्व को उल्लिखित कर अत्यधिक प्रशंसा की गई है। जैसे-

**प्रदीपः सर्वविद्यानाम् उपाय सर्वकर्मणाम्।**
**आश्रयः सर्वर्धाणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥**

वस्तुतः न्यायशास्त्र की जो युक्ति पद्धति है वह विशेष रूप से सभी व्याकरण अलंकार आदि दर्शन सम्प्रदायों के द्वारा स्वीकृत है। उस युक्ति से ही वेद आदि विद्याओं का ग्रहण दृढ़ होता है। अतः वह न्याय शास्त्र शाश्वत् है, ऐसा चिन्तन करते हैं। और साहित्य में न्यायशास्त्र के प्रभाव का एकमात्र उदाहरण नैषधचरित्र में है। उसमें श्रीहर्ष द्वारा न्याय शास्त्र के अनुसार मन अणु परिमाण का कहा गया है। उसमें अणु परिमाण के द्वारा लोगों के चित्त के साथ धूलिकणों की उपमा प्रदान की गई है। और श्लोक है-

**अजस्रभूभीतटकुट्टनोद्गतैरूपास्य चरणेषु रेणुभिः।**
**रयमकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः॥**

## 10.2 न्याय शब्द का अर्थ

इसके द्वारा ले जाया जाता है, प्राप्त किया जाता है विवक्षित अर्थ की सिद्धि को, ऐसा नी धातु के करण में धञ् प्रत्यय के योग में न्याय शब्द व्युत्पन्न होता है। भाष्यकार वात्सायन ने न्याय शब्द का अर्थ कहा- ''प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः''। यहाँ 'प्रमाणैः' पद द्वारा अनुमान के पाँच अवयव गृहीत हैं। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन

टिप्पणी

पाँच अवयव हैं। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण इन अवयवों के मूल हैं। इसीलिए वात्सायन द्वारा भाष्य में कहा गया है-

''तेषु प्रमाणसमवायः। आगमः प्रतिज्ञा। हेतुः अनुमानम्। उदाहरणं प्रत्यक्षम्। उपनयनं उपमानम् इति।'' और अर्थ पद से अनुमेय पदार्थ ग्राह्य है। अतः प्रमाणों के द्वारा पञ्च अवयवों से अर्थ अथवा अनुमेय पदार्थ का परीक्षण या परीक्षा न्याय है। उससे परोक्षतया अनुमान प्रमाण ही न्याय शब्द का फलित अर्थ होता है।

पूर्व में कहा गया है की न्यायशास्त्र आन्वीक्षिकी पद द्वारा कहा जाता है। अनु-'पश्चात्', ईक्षा-'ज्ञान', इस प्रकार अनुमानपरम् अन्वीक्षा पद है। अतः भाष्यकार वात्सायन ने कहा-

**''प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणम् अन्वीक्षा।**
**तया प्रवर्तते इति आन्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम्॥''**

यहाँ यह आक्षेप हो सकता है कि न्याय शब्द का अर्थ अनुमान होता है तो बौद्ध शास्त्रों में भी न्याय शास्त्र होगा, क्योंकि उन शास्त्रों में भी अनुमान स्वीकार किया जाता है। वस्तुतः न्याय शास्त्र में अनुमान प्रमाण द्वारा दृढ़ता द्वारा वेद के प्रमाण्य को प्रतिष्ठापित किया जाता है। इसीलिए न्यायमञ्जरी में कहा कि-

**''न्यायविस्तरस्तु मूलस्तम्भभूतः सर्वविद्यानां वेदप्रमाण्यहेतुत्वात्।''**

## 10.3 न्याय शास्त्र का बीज

न्यायशास्त्र का बीज वैदिक साहित्य में निहित है। छान्दोग्योपनिषद् में नारद के वचन में न्यायशास्त्र का उल्लेख दिखता है। इसीलिए कहा गया है-

''ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वणं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम्....'' (छा. उप. 7.1.2)

यहाँ वाकोवाक्य शब्द का अर्थ आचार्य शंकर ने कहा- वाकोवाक्य तर्कशास्त्र है। अतः न्यायविद्या का उद्भव कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यथा माल्यकार उद्यान में प्रस्फटित पुष्पों के एक-एक कर चुनकर एकत्र करके पुष्प माला को बनाता है, वैसे ही महर्षि गौतम ने न्याय विद्या के सिद्धान्तों को सर्वतः संग्रह करके न्यायसूत्र को रचा।

## 10.4 काल भेद से न्याय शास्त्र का विभाग

काल-भेद से न्यायशास्त्र तीन प्रकार का है- प्राचीन, मध्य और नव्य। आचार्य गौतम के काल से प्रारम्भ होकर उदयनाचार्य के कालपर्यन्त प्राचीन न्याय, भा-सर्वज्ञ के काल से प्रारम्भ होकर गगेशोपाध्याय से पूर्व के समय में मध्य न्याय और गगेशोपाध्याय के काल से परवर्ती नव्य न्याय का काल है, ऐसी स्थिति है।

टिप्पणी

## 10.5 प्राचीन-मध्य-नव्य न्याय के वैशिष्ट्य

प्राचीन न्याय में प्रमेयों का प्राधान्य होता है। भाषा सरल और सुबोध है। यहाँ विषय के प्रतिपादन का कौशल स्थूल है। प्राचीन न्याय का प्रधान प्रतिपक्ष बौद्ध सम्प्रदाय है। नव्य न्याय में प्रमाणों का प्राधान्य दिखता है। वैसे ही नव्य न्याय के प्रामाणिक ग्रन्थ तत्वचिन्तामणि में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द चार खण्ड होते हैं। यहाँ प्रकारता, विशेष्यता, प्रतियोगिता, अनुयोगिता, अवच्छेदकता इत्यादि पारिभाषिक पदों के प्रयोग के बाहुल्य से भाषा का काठिन्य होता है। यहाँ विषय प्रतिपादन कौशल सूक्ष्म है। भा-सर्वज्ञ कृत न्यायसार को अवलम्बित करके मध्य न्याय का आरम्भ होता है। मध्य न्याय में वैशेषिक सिद्धान्त न्याय शास्त्र के परिपूरक सिद्धान्त के रूप में गृहीत नहीं है। मध्य न्याय का मुख्य प्रतिपक्ष बौद्ध सम्प्रदाय और जैन सम्प्रदाय हैं।

## 10.6 न्याय सम्प्रदाय के आचार्य

कालक्रम से न्याय शास्त्र के आचार्यों के नाम तथा उनके द्वारा प्रणीत सन्दर्भों के नाम दिये जा रहे हैं-

| अनुक्रम | ग्रन्थकार | ग्रन्थ | कालः (ईशवीयशतकम्) |
|---|---|---|---|
| 1. | गौतम/अक्षपाद | 1. न्यायसूत्र | 200 (ईसा पूर्व) |
| 2. | वात्सायन | 2. न्यायसूत्र पर न्यायभाष्य | 400 (ईसा पूर्व) |
| 3. | उद्योतकर | 3. न्यायवार्तिक<br>4. न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका | 600 (ईसा पूर्व) |
| 4. | वाचस्पति मिश्र | 5. न्यायसूचीनिबन्ध<br>6. न्याय सूत्रोद्धार<br>7. तत्वबिन्दु | 9 (ईस्वी) |
| 5. | जयन्त भट्ट | 8. न्याय मञ्जरी<br>9. न्यायवार्तिकतात्पर्य परिशुद्धि | 9 (ईस्वी) |
| 6. | उदयनाचार्य | 10. न्यायकुसुमाञ्जलि<br>11. न्यायपरिशिष्ट<br>12. आत्मतत्वविवेक | 10 |
| 7. | भासर्वज्ञ | 13. न्याय सार<br>14. न्याय भूषण | 900 (ईस्वी) |

टिप्पणी

| | | | |
|---|---|---|---|
| 8. | वरदराज | 15. बोधिनी (कुसुमाञ्जलि टीका)<br>16. तार्किक रक्षा | 12 |
| 9. | दिवाकर उपाध्याय | 17. परिमल (कुसुमाञ्जलि टीका)<br>18. न्यायनिबन्धनोद्यत (परिशुद्धि टीका) | 13 |
| 10. | शशधर आचार्य | 19. न्यास सिद्धान्तदीप | 13 |
| 11. | मणिकण्ठ मिश्र | 20. न्यायरत्न<br>21. न्यायचिन्तमणि | 14 |
| 12. | गंगेश उपाध्याय | 22. तत्वचिन्तामणि | 13वीं शताब्दी |
| 13. | वर्धमानोपाध्याय | 23. न्यायनिबन्धप्रकाश<br>24. मणि प्रकाश<br>25. कुसुमाञ्जलि प्रकाश | 14 |
| 14. | शंकरमिश्र | 26. वादिविनोद<br>27. भेदप्रकाश<br>28. मणिमयूख | 14 |
| 15. | यज्ञपति उपाध्याय | 29. मणिप्रभा | 15 |
| 16. | वासुदेव सार्वभौम | 30. अनुमान परीक्षा<br>31. प्रत्यक्षमणि परीक्षा<br>32. शब्दमणि परीक्षा | 16 |
| 17. | अन्नंभट्ट | 33. तर्कसंग्रह | 16 |
| 18. | जगदीश तर्कालंकार | 34. मयुख (चिन्तामणि टीका)<br>35. न्यायादर्श<br>36. तर्कामृत | 16 |
| 19. | रघुनाथ शिरोमणि | 37. तत्वचिन्तामणि दीधिति | 16 |
| 20. | विश्वनाथ न्यायपञ्चानन | 38. न्यायसूत्रवृत्ति<br>39. भाषापरिच्छेद | 17 |

## पाठगत प्रश्न 10.1

1. दर्शन शब्द का क्या अर्थ है?

टिप्पणी



2. नास्तिक दर्शन सम्प्रदाय कौन हैं?
3. न्यायशास्त्र का अन्य नाम क्या है?
4. भाष्यकार द्वारा न्याय शब्द का किस प्रकार का अर्थ किया गया है?
5. अनुमान के पाँच अवयव क्या हैं?
6. न्यायशास्त्र में किस प्रमाण द्वारा वेद का प्रामाण्य द्वारा उपस्थापित है?
7. छान्दोग्योपनिषद् में आम्नात 'वाकोवाक्य' पद का अर्थ क्या है?
8. न्याय सूत्र के प्रणेता कौन हैं?
9. नव्य न्याय के प्रवक्ता कौन हैं?
10. एक मध्य न्याय के आचार्य का नाम लिखिए।
11. प्राचीन-न्याय का भेद क्या है?
12. न्याय सूत्र का उद्भव काल कब हुआ था?
13. न्यायवार्तिक किसके द्वारा प्रणीत है?
14. न्याय वार्तिक तात्पर्य किसके द्वारा रचित है?
15. उदयनाचार्य कृत न्यायशास्त्र के ग्रन्थ का नाम क्या है?
16. न्याय मञ्जरीकार कौन हैं?
17. नव्य न्याय का प्रामाणिक ग्रन्थ क्या है?
18. वर्धमानोपाध्याय कृत टीका का नाम क्या है?
19. वादिविनोद किसके द्वारा प्रणीत है?
20. न्यायसूत्रवृत्तिकार कौन हैं?
21. रघुनाथ शिरोमणि कृत न्याय ग्रन्थ का नाम क्या है?
22. न्यायसार किसके द्वारा प्रणीत है?

## 10.7 न्यायशास्त्र के विषय

न्यायशास्त्र में सोलह पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान मोक्ष-लाभ के लिए अनुकूल है। और वे पदार्थ हैं- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान। इन पदार्थों के तत्व ज्ञान से मोक्ष का लाभ होता है। तथा सूत्र है-

टिप्पणी

''प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जप्ल-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जपति-निग्रह स्थानानां तत्वज्ञानान्नि श्रेयसाधिगम्।'' इन पदार्थों को छोड़कर वाच्यता, अवच्छेदकता इत्यादि अनन्त पदार्थ न्याय में प्रतिपादित और व्यवहृत है। अतः स्वीकार किये जाते हैं। अतः नैयायिक अनियत पदार्थवादी हैं।

## 10.8 प्रमाण तत्व

प्रमाण ही प्रमेय की सिद्धि होता है। यथार्थानुभव का साधन प्रमाण है। न्याय मत में प्रमाण चार प्रकार का है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। तथा न्यायसूत्र - 'प्रत्यक्षानुनोपमानशब्दाः प्रमाणानि'। इन प्रमाणों द्वारा यथाक्रम प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द ये चार प्रमा उत्पन्न होते हैं। प्रमा यथार्थ अनुभव अथवा ज्ञान है।

## 10.9 प्रत्यक्ष

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न (जन्य) ज्ञान प्रत्यक्ष है। ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? आत्मा मन से संयोग करता है, मन इन्द्रिय द्वारा संयोग करता है, और इन्द्रिय अर्थ द्वारा संसृष्ट होता है। वहाँ पर व्यक्ति के अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक इन्द्रिय द्वारा एक से अधिक विषय युगपद् में जाने जा सकते हैं। परन्तु एक से अधिक इन्द्रिय से युगपत् ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है। इन्द्रियाँ पाँच हैं- चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक्। मन भी इन्द्रिय ही है। अर्थ घट आदि विषय हैं। सन्निकर्ष संयोग आदि सम्बन्ध हैं। छः इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह यथा- चक्षु द्वारा जन्य ज्ञान चाक्षुष है। श्रोत्र द्वारा जन्य ज्ञान श्रावण है। घ्राण द्वारा उत्पन्न ज्ञान घ्राणज है। रसना द्वारा उत्पन्न ज्ञान रासन है। त्वचा जन्य ज्ञान त्वाच है। मन से जन्य ज्ञान मानस कहा जाता है।

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। और वह प्रत्यक्ष द्विविध है - निर्विकल्पक और सविकल्पक। निष्प्रकारक ज्ञान निर्विकल्पक प्रत्यक्ष है, सप्रकारक ज्ञान सविकल्पक प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान का करण प्रत्यक्ष प्रमाण है। और वह इन्द्रिय ही है।

### 10.9.1 सन्निकर्ष

इन्द्रिय का विषय के साथ विशिष्ट सम्बन्ध होता है वही ज्ञान उत्पन्न होता है। वहाँ जो सम्बन्ध ज्ञान का कारण होता है, वह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। विषय अर्थ कहलाता है। इन्द्रिय का अर्थ के साथ वह संसर्ग, सम्बन्ध, जिसके कारण आत्मा में ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। अर्थ अनेक हैं। उनके द्वारा इन्द्रियों के विभिन्न सम्बन्ध होते हैं। अतः विविध सन्निकर्ष हैं। इन्द्रिय के साथ अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है। उदाहरण- चक्षु से ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है। इसलिए-आत्म मन से संसृष्ट होता है, मन चक्षु से संसृष्ट होता है,

टिप्पणी



और चक्षु घट आदि द्रव्य से संयुक्त होता है। चक्षु तैजस है। वह विषयदेश को जाता है। चक्षु भी द्रव्य है। घट आदि भी द्रव्य है। अतः दोनों द्रव्यों का संयोग होता है। इसी संयोग से घट विषयक चाक्षुष ज्ञान उत्पन्न होता है। यह सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है। वहाँ यह संयोग ही सन्निकर्ष कहलाता है। इस प्रकार इन्द्रियभेद और विषयभेद से सन्निकर्ष भेद होता है।

और वह सन्निकर्ष लौकिक और अलौकिक भेद से दो प्रकार का है। लौकिक सन्निकर्ष छः हैं – संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत-समवाय, समवाय, समवेत समवाय और विशेष्य विशेषण भाव। अलौकिक सन्निकर्ष सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज के भेद से तीन प्रकार का है।

1. **संयोग** – चक्षु द्वारा घट प्रत्यक्ष में संयोग सन्निकर्ष है।
2. **संयुक्त समवाय** – चक्षु द्वारा घटरूप के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष है, चक्षुः संयुक्त घट में रूप के समवाय के कारण।
3. **संयुक्त समवेत समवाय** – रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष है। चक्षु संयुक्त घट में रूप समवेत, और वहाँ रूप में रूपत्व जाति का समवाय होने से।
4. **समवाय** – श्रोत्र से शब्द प्रत्यक्ष में समवाय सन्निकर्ष। कर्ण विवरवर्ती आकाश के, श्रोत्रत्व के कारक। शब्द आकाश का गुण है। गुण-गुणी का सम्बन्ध समवाय है।
5. **समवेत समवाय** – और शब्दत्व प्रत्यक्ष में समवेत समवाय सन्निकर्ष, श्रोत्र समवेत शब्द में शब्दत्व का समवाय होने के कारण।
6. **विशेष्यविशेषणभाव** – चक्षु से अभाव प्रत्यक्ष में विशेष्यविशेषणभाव सन्निकर्ष है, घटाभाव के समान भूतल, यहाँ चक्षु संयुक्त भूतल में घटाभाव का विशेषण होने से।

## 10.9.2 कारण

कार्य से नियत पूर्ववर्ती कारण है। और कार्य प्राग्भाव प्रतियोगी है। अर्थात् जो कार्य से पूर्व नियम द्वारा होता है, वह कारण कहा जाता है। और वह कारण अनन्यथासिद्ध होता है। रासभ (गधा) आदि तो घट कार्य के प्रति अन्यथासिद्ध हैं। कारण त्रिविध है – समवायि, असमवायि और निमित्त।

1. **समवायिकारण** – 'जो समवेत होकर कार्य को उत्पन्न करता है, वह समवायी कारण है।' अर्थात् समवाय सम्बन्ध से जिस द्रव्य में कार्य उत्पन्न होता है, वह द्रव्य उत्पन्न कार्य का समवायि कारण होता है। यथा तन्तु पट का और पट अपने

रूप आदि का समवायिकारण है। कार्य समवाय द्वारा जहाँ होता है वही समवायि कारण है, ऐसा संक्षेप में ग्राह्य है।

2. **असमवायिकारण** - असमवायिकारण की दो प्रत्यासत्ति है। कार्य अथवा कारण के साथ एक अर्थ में समवेत होने पर जो कारण है, वह असमवायिकारण है।

   **काग्रैकार्थप्रत्यासत्ति**- कार्य के साथ एक अधिकरण में समवाय सम्बन्ध से होता है और भी कार्य के प्रति जो कारण होता है, वह असमवायिकारण है। यथा दो कपालों के संयोग से घट उत्पन्न होता है। अत: घट के प्रति कपाल संयोग कारण है। और घट कार्य है। 'कपाल संयोग' घटात्मक कार्य अधिकरण कपाल में समवाय सम्बन्ध से होता है और घटात्मक कार्य के प्रति कारण भी होता है। कपाल-संयोग कैसे घट के प्रति कारण भी होता है तो कहते हैं कपाल-संयोग के अभाव में घटोत्पत्ति नहीं होती है। एवं 'तत्वसत्वे तत्सत्ता, तदभाव तदभावे' इस अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा कपाल का कारणत्व ज्ञेय है। अत: कपाल संयोग घट के प्रति असमवायिकारण होता है। वैसे ही पट के प्रति तन्तु संयोग असमवायिकारण होता है।

   **कारर्णकार्थप्रत्यासत्ति**- स्वकार्य समवायिकारण के साथ एक अधिकरण में समवाय सम्बन्ध से होता है और कार्य के प्रति जो कारण होता है वह असमवायिकारण होता है। यथा घट रूपात्मक कार्य का समवायिकारण घट है और वह समवाय से कपाल में होता है। और कपाल में समवाय सम्बन्ध से कपालरूप होता है। किसी घटरूपात्मक कार्य के प्रति 'कपालरूप' कार्य होता है। अत: घट रूप के प्रति कपालरूप असमवायिकारण होता है। वैसे ही पटरूप के प्रति तन्तुरूप असमवायिकारण होता है।

3. **निमित्तकारण** - समवायी और असमवायीकारण से भिन्न कारण निमित्त करण होता है। यथा पट का निमित्तकारण 'तुरी', वेमा आदि हैं।

तीन कारणों में कार्य का जो असाधारण कारण है, वह करण है। असाधारणत्व वैसे फलायोग व्यवच्छिन्नत्व है। वह उक्त है- 'फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणम्'। यथा वृक्ष छेदन कार्य में कुठार वृक्ष-संयोग विशेष करण है। नव्य मत में तो जो व्यापार विशिष्ट सत् कार्य को उत्पन्न करता है वह कारण करण है। उक्त है- 'व्यापारवत् असाधारण कारणं करणम्'। तथा वृक्षच्छेदन होने पर कुठार पर करण होता है। और उसके द्वारा घट प्रत्यक्ष में पहले पक्ष में चक्षु द्वारा घट का संयोग प्रत्यक्ष प्रमाण है, और द्वितीय पक्ष में चक्षु इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण होता है।

## 10.10 अनुमान

अनुमिति का करण अनुमान है। अर्थात् अनुमिति का जो करण है वह अनुमान प्रमाण है। अनुमिति नाम परामर्श से जन्य ज्ञान है। उक्त है- ''परामर्शजन्यं ज्ञानम् अनुमिति:'।

टिप्पणी



व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता का ज्ञान परामर्श है। ''यत्र यत्र धूमः (हेतुः) तत्र तत्र वह्नि (साध्यः)'', इसमें वह्नि साहचर्य धूम में है। यह नियत साहचर्य निमय ही व्याप्ति है। वस्तुतः हेतु साध्य का साहचर्यनियम व्याप्ति है। जो साधा जाता है या अनुमान किया जाता है, वह साध्य (अग्नि) है। साध्य का साधन हेतु (धूम) है। सन्दिग्ध साध्यवान् पक्ष (पर्वत आदि) है। हेतु का पक्षवृत्तित्व (पर्वतादि वृत्तित्व) पक्षधर्मता है। जिस व्यक्ति को व्याप्ति ज्ञान है, वह कभी पर्वत के समीप गया और पर्वत पर धूम को (धूमवान् पर्वत) देखकर व्याप्ति का स्मरण करता है ''यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र अग्निः''। वहाँ पर उसका ज्ञान होता है- वह्नि से व्याप्त धूम इस पर्वत पर (वह्नि व्याप्य धूमवान! पर्वतः)। यह परामर्श ज्ञान है। उस परामर्श ज्ञान से 'पर्वत वह्निमान है', यह अनुमिति उत्पन्न होती है। उस अनुमिति का करण प्राचीन मत में (फलायोग-व्यवच्छिन्नं कारणं करणम्) परामर्श तथा नव्य मत में (व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्) व्याप्ति स्मृति है। अतः प्राचीनमत में परामर्श ज्ञान अनुमान प्रमाण है और नवीनमत में व्याप्ति स्मृति अनुमान प्रमाण है। अनुमान जिस क्रम से होता है, वह क्रम यहाँ नीचे प्रदर्शित है-

1. साहचर्यग्रह - जहाँ जहाँ हेतु, वहाँ वहाँ साध्य
   जहाँ जहाँ धूम वहाँ वहाँ अग्नि।
2. व्याप्ति का अनुभव - साध्यव्याप्य हेतु। वह्नि व्याप्य धूम।
3. पक्षधर्मता ज्ञान - हेतुमान पक्ष। धूमवान् पर्वत।
4. व्याप्ति-स्मरण - साध्यव्याप्य हेतु। वह्नि व्याप्य धूम।
5. परामर्श - साध्यव्याप्य हेतुमान् पक्ष। वह्नि व्याप्य धूमवान्-पर्वत।
6. अनुमिति - पक्ष साध्यवान्। पर्वत वह्निमान्।

अनुमान दो प्रकार का है- स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। जहाँ स्वयं के लिए अनुमान प्रवृत्त होता है, वह स्वार्थानुमान है। उसी प्रकार जब पर्वत पर धूम को देखकर, वहाँ अग्नि है अथवा नहीं, ऐसा संशय होता है। तब जहाँ जहाँ धूम है, वहाँ वहाँ अग्नि है, इस व्याप्ति को स्मरण करके वह्नि से व्याप्य धूमवान् यह पर्वत है, ऐसा परामर्श होता है। उसके कारण 'पर्वत वह्निमान है', यह अनुमिति उत्पन्न होती हे। यही स्वार्थानुमान है। और भी जब स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके अन्य को बोध कराने के लिए पञ्चावयव वाक्य प्रयुक्त होते हैं, वह परार्थानुमान होता है।

इसीलिए परार्थानुमान के पाँच अवयव हैं-

1) प्रतिज्ञा - पर्वत वह्निमान है। (अनिर्णीत)

2) हेतु - धूम के कारण।

3) उदाहरण - जहाँ धूम है, वहाँ अग्नि है, यथा रसोईघर।

टिप्पणी

4) उपनय – और यह वैसा है। (वह्नि व्याप्य धूमवान् यह पर्वत है।) (परामर्श)

5) निगमन – इसीलिए वैसा है (वह्नि व्याप्य धूमत्व होने के कारण पर्वत वह्निमान है) (निर्णीत)

और पुनः अनुमान त्रिविध है- पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट है। जहाँ कारण से कार्य का अनुमान होता है, वहाँ पूर्ववत् अनुमान है। यथा मेघ के होने पर वर्षा होगी। जहाँ कार्य के कारण का अनुमान होता है, वहाँ शेषवत् अनुमान है। यथा नदी के पूर्णत्व आदि को देखकर वर्षा हुई होगी, इस स्रोत का अनुमान करते है। सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। यथा गतिक्रिया प्रयुक्त अन्य दृष्ट का अन्यत्र दर्शन। और सूर्य का है। अतः सूर्य गतिमान है।

## 10.11 उपमान

उपमिति का करण उपमान प्रमाण है। उपमिति संज्ञा-संज्ञी के सम्बन्ध का ज्ञान है। संज्ञा के साथ संज्ञी का सम्बन्ध ज्ञान उपमिति है। जैसे कोई भी गवय शब्द द्वारा क्या अर्थ है, यह नहीं जानता है, उसके द्वारा किसी भी वनेचर से सुना गया 'गो सदृश गवय है'। वहाँ से वह वन को गया, गो (गाय) सदृश पिण्ड को देखा और 'गो सदृश्य गवय है', इस वाक्यार्थ का स्मरण करता है। और उससे यह 'गवय शब्द वाचक' ज्ञान उत्पन्न होता है। वह ज्ञान की उपमिति है। यहाँ गवय संज्ञा, गो सदृश पिण्ड संज्ञी है। अतः यह पिण्ड 'गवय शब्द वाच्य', यह ज्ञान उपमिति है। प्राचीन मत में अतिदेश वाक्यार्थ स्मरण उपमान प्रमाण है, नवीन मत में सादृश्य ज्ञान उपमान प्रमाण है, और अतिदेश वाक्यार्थ-स्मरण व्यापार है।

## 10.12 शब्द

आप्त वाक्य शब्द है। जो यथार्थ कहता है, वह यथार्थवक्ता ही आप्त है। वही भ्रम आदि दोष से शून्य है। उसका जो वाक्य है, वह शब्द है, वही प्रमाण है। पदसमूह वाक्य है। शक्ति विशिष्ट वर्णात्मक शब्द पद है। पद का उस अर्थ के साथ सम्बन्ध ही शक्ति है, उस पदश्रवण में अर्थस्मृति उत्पन्न होती है। इसीलिए तर्कसंग्रह में उक्त है- ''अस्मात् पदार्थ अयम् अर्थो बौद्धव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः''। मनुष्य इस शक्ति को कैसे जाता है। शक्तिग्रह वृद्ध व्यवहार से होता है। और उत्तमवृद्ध का ''अश्व लाओ'', ''गो को बाँधो'', ये वाक्य सुनकर मध्यम वृद्ध वैसा ही करता है। यह सब बालक देखता है। उससे आवापन और उद्वापन द्वारा गो पद की गाय में तथा अश्व पद की अश्व में शक्ति है, ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। शब्द बोध में आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति,

ये तीन कारण हैं। तात्पर्य भी है। शाब्द बोध का कारण प्राचीनतम में पदार्थज्ञान (स्मरणात्मक) और नवीनतम में पदज्ञान (स्मरणात्मक) है। भाषा परिच्छेद में कहा गया है- 'पदज्ञानन्तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधी:'। प्राचीन न्याय में पदार्थ ज्ञान (स्मरणात्मक) शब्द प्रमाण है, और नवीन न्याय में पदज्ञान (स्मरणात्मक) ज्ञेय है। शब्दप्रमाण दो प्रकार का है- दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। लौकिक विषय में दृष्टार्थ और अलौकिक विषय में अदृष्टार्थ है।

## पाठागत प्रश्न 10.2

1. न्याय शास्त्र में मोक्षनुकूल कितने पदार्थ हैं?
2. अनियत पदार्थवादी कौन हैं?
3. न्याय मत में प्रमाण कितने हैं?
4. प्रत्यक्ष का लक्षण क्या है?
5. प्रत्यक्ष कितने हैं?
6. सन्निकर्ष कितने हैं?
7. लौकिक सन्निकर्ष क्या है?
8. अलौकिक सन्निकर्ष क्या है?
9. घटरूप प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
10. शब्द प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
11. अभाव प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
12. कारण का क्या लक्षण है?
13. कारण कितने प्रकार का है?
14. पट का समवायि कारण क्या है?
15. पट कार्य का निमित्त कारण क्या है?
16. करण क्या है?
17. नव्य न्याय के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?
18. प्राचीन मत में करण का लक्षण क्या है?
19. नव्य मत में करण का लक्षण क्या है?
20. अनुमिति क्या है?

टिप्पणी

21. परामर्श क्या है?
22. प्राचीन मत में अनुमान प्रमाण क्या है?
23. नव्य मत में अनुमान प्रमाण क्या है?
24. अनुमान कितने हैं?
25. पूर्ववत् अनुमान का एक उदाहरण दीजिए।
26. उपमिति क्या है?
27. प्राचीन मत में उपमान प्रमाण क्या है?
28. शब्द प्रमाण क्या है?
29. शब्द प्रमाण कितने हैं?
30. शक्ति क्या है?
31. शक्तिग्रह कैसे होता है?
32. शब्द बोध में तीन कारण क्या हैं?
33. नव्य मत में शब्द प्रमाण क्या है?
34. शाब्द बोध में व्यापार क्या है?

## 10.13 प्रमेय तत्व

न्याय शास्त्र में प्रमेय बारह हैं- आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख और अपवर्ग।

1. **आत्मा** - आत्मा सभी का द्रष्टा, सभी का भोक्ता, सर्वज्ञ और सर्वानुभवी है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख और ज्ञान आत्मा के गुण हैं। और सूत्र है- इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दु:ख-ज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम्।
2. **शरीर** - शरीर आत्मा का भोगायतन है। और वह इन्द्रियार्थों का आश्रय है।
3. **इन्द्रियाँ** - भोग के साधन पञ्चभूत जन्य घ्राण आदि पाँच इन्द्रियाँ हैं।
4. **अर्थ** - 'गन्धरसरूपस्पर्शशब्दा: पृथिव्यादिगुणा: तदर्था:। भोग योग्य विषय अर्थ हैं। रूप आदि।
5. **बुद्धि** - बुद्धि उपलब्ध ज्ञान है। 'बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमिति अनर्थान्तरम्'।
6. **मन** - मन अन्त:करण अतीन्द्रिय है। युगपत् ज्ञान की अनुत्पत्ति मन का अनुमापक है।

टिप्पणी



7. **प्रवृत्ति** – 'प्रवृत्तिवाग्-बुद्धि-शरीराम्भः'। प्रवृत्ति वाचिक, मानसिक और शारीरिक कर्म है।

8. **दोष** – 'प्रवर्तनालक्षणा दोषाः'। राग, द्वेष, मोह प्रवृत्ति के कारण दोष है।

9. **प्रेत्यभाव** – 'पुनरूत्पत्ति प्रेत्यभावः'। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म प्रेत्यभाव है।

10. **फल** – प्रवृत्ति दोष से उत्पन्न अर्थ फल है। वह सुख और दुःख का अनुभव, भोग है।

11. **दुःख** – 'बाधनालक्षणं दुःखम्'। पीड़ा का लक्षण दुःख है। दुःखानुपपन दुःख है।

12. **अपवर्ग** – 'तदत्यन्तविमोक्षः अपवर्गः'। दुःख से उत्पन्न आत्यन्तिक विमुक्ति अपवर्ग है।

यहाँ उक्त बारह प्रमेयों के अतिरिक्त संशय आदि जो जो पदार्थ हैं, उनका भी अर्न्तभाव प्रमेय पदार्थ में होता है। मोक्ष प्राप्ति में आत्मा आदि तत्वों के ज्ञान का साक्षात् उपयोग होता है। अतः उनका प्रमेयसूत्र में पृथक् उल्लेख किया गया है।

## 10.14 संशय

एक धर्मी में विरूद्ध प्रकारक ज्ञान संशय है। यथा आत्मा नित्य है अथवा अनित्य है। यहाँ आत्मा एक धर्मी है। उनमें नित्यत्व और अनित्यत्व विरूद्ध धर्मी के हैं। वे आत्मा में गृहीत है उनका ज्ञान संशय है।

## 10.15 प्रयोजन

'येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्'। अर्थात् जिस अर्थ को आश्रित करके प्रवृत्त अथवा निवृत्त होता है, वह प्रयोजन है।

## 10.16 दृष्टान्त

''लौकिकपरीक्षणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः''। जिस अर्थ में लौकिकों तथा परीक्षकों का बुद्धि साम्य होता है, वह दृष्टान्त है। और वह दृष्टान्त प्रत्यक्ष विषय अर्थ है।

## 10.17 सिद्धान्त

'तन्त्राधिकरणभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः'। शास्त्रों में प्रमाणों के द्वारा पदार्थों को स्वीकार करना सिद्धान्त है। यह स्वक्रियमाण पदार्थ है अथवा नहीं। और वह चार प्रकार का है – सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम।

टिप्पणी

## 10.18 अवयव

'प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि अवयवा:। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन, पाँच अवयव हैं। और ये अनुमान वाक्य हैं।

## 10.19 तर्क

'अविज्ञाततत्वे अर्थे कारणोपपत्तित: तत्वज्ञानार्थम् ऊह: तर्क:। ऊह ज्ञान विशेष है। कारणोपपत्तित ऊह, यह तर्क का लक्षण है। अविज्ञात तत्व रूप अर्थ में तत्व ज्ञानार्थ है, ऐसा प्रयोजन कथन है। कारण पद प्रमाणार्थ है। और उपपत्ति पद सम्भव है। अत: सामान्यत: जिस ज्ञात पदार्थ के तत्व को नहीं माना जाता है, उस पदार्थ में तत्व ज्ञान के लिए प्रमाण सम्भव प्रयुक्त ज्ञान विशेष तर्क है। और वह तर्क न प्रमाण के अन्तर्गत है न प्रमाणान्तर है। वह तो प्रमाणों का अनुग्राहक होकर तत्व ज्ञान के लिए कल्पित है। इसीलिए ''किमिदं जन्म कृतकहेतुकम उत अकृतकहेतुकम् अथवा आकस्मिकहेतुकम्'', इस विज्ञात तत्व के अर्थ में कारण की उत्पत्ति द्वारा ऊह प्रवृत्त होता है। यदि कृतक हेतु जन्म है, तो हेतुच्छेद से उपपन्न जन्मोच्छेद है। अब अकृतक हेतु द्वारा हेतूच्छेद के अशक्यत्व से अनुपपन्न यह जन्मोच्छेद है। आकस्मिक, अकस्माद उत्पन्न पुन: नष्ट नहीं होता, निवृत्ति कारण के अभाव से। एक तर्क विषय में कर्म निमित्त जन्म है, ऐसा प्रर्वतमान प्रमाण तर्क द्वारा अनुगृहीत हैं। और तर्क व्याप्ति ग्राहक है। इसीलिए धूम यदि वह्नि व्यभिचारी हो तो वह्नि जन्य नहीं होगा, इस प्रकार धूम-वह्नि का व्याप्ति निश्चय होता है। उससे प्रमाण आदि तत्व ज्ञन सोपयोगी होता है। अत: प्रमाण के अनुग्राहक होने से तर्क का भी उसमें परक्ष्येण उपयोग है, ऐसा बोधित है। और वह तर्क पाँच प्रकार का है- आत्माश्रय, इतरेतराश्रय, चक्रकाश्रय, अनवस्था और अनिष्ट प्रसन्न।

## 10.21 वाद

वाद, जल, वितण्डा सम्पूर्ण रूप में कथा पद से कहे जाते हैं। पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष के प्रतिपादक न्यायानुगत वाक्य सन्दर्भ कथा है। उसमें तत्व बुभुत्सु की कथा वाद हैं। जो जानने की इच्छा करता है, बुभुत्सु है। तत्व को जानने की इच्छा करने वाला तत्व बुभुत्सु है। उनकी कथा वाद है। उस वाद में प्रमाणों और तर्क द्वारा स्वपक्ष की स्थापना और परपक्ष का उपालम्भ होता है। तत्व के निर्णय के लिए पक्ष-प्रतिपक्ष पञ्चावयव युक्त वाद करते हैं। जैसे गुरू-शिष्य में तत्वालोचन वाद।

## 10.22 जल्प

विजिगीषु कथा जल्प है। जो जीतने की इच्छा करता है, वह विजिगीषु है। जहाँ कथा

टिप्पणी



में पक्ष-प्रतिपक्ष जीतने के लिए अथवा तत्व ज्ञान के लिए छल, जाति, निग्रह स्थान द्वारा प्रवर्तित होता है, वहाँ जल्प होता है।

## 10.23 वितण्डा

'सएव प्रतिपक्ष स्वपक्षज्ञस्थापनहीनो वितण्डा वितण्डा'। जहाँ कथा में प्रतिपक्ष पक्ष के मत को खण्डित करता है, किन्तु स्वमत को स्थापित नहीं करता है, वह कथा वितण्डा होती है।

## 10.24 हेत्वाभास

जिस हेतु में व्याप्ति है और हेतु पक्ष में है, वह सद् हेतु होता है। सद्हेतु है तो अनुमिति होती है। सद्हेतु न हो तो अनुमिति नहीं होती है। जो हेतु सद्हेतु नहीं है, वह असद्हेतु कहा जाता है। वही हेत्वाभास भी कहलाता है।

अनुमिति के करण से अन्यतर प्रतिबन्धक, यथार्थ ज्ञान का विषयत्व हेत्वाभास का लक्षण है। हेत्वाभास की दो प्रकार से व्युत्पत्ति होती है- 'हेतुवत्-आभासन्ते इति हेत्वाभासाः', दृष्टाः हेतवः। अथवा हेतोः आभासाः इति हेत्वाभासाः, हेतुदोषाः। हेत्वाभास विषयक यथार्थ ज्ञान अनुमान की साक्षात् परम्परा के द्वारा प्रतिबन्ध होता है। जहाँ हेत्वाभास होते हैं, वहाँ अनुमिति उत्पन्न नहीं होती। हेत्वाभास (दुष्ट हेतु) पाँच हैं -

सव्यभिचार-विरूद्ध-सत्प्रतिपक्ष-असिद्ध और बाधित के भेद से। सव्यभिचार पुनः साधारण, असाधारण, अनुपसंहारी के भेद से तीन है। असिद्ध हेत्वाभास भी तीन है- आश्रयसिद्ध, स्वरूपसिद्ध और व्याप्यत्वसिद्ध। हेत्वाभास (हेतु दोष) पाँच हैं- व्यभिचार, विरोध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध, बाध के भेद से। जिसका व्यभिचार दोष है, वह सव्यभिचार है। जिसका विरोध दोष है, वह निरूद्ध है। जिसका सत्प्रतिपक्ष दोष है, वह सत्प्रतिपक्ष है। जिसका असिद्धि दोष है, वह असिद्ध है। जिसका बाध दोष है, वह बाधित है।

### 10.24.1 सव्यभिचार

व्यभिचार के साथ वर्तमान सव्यभिचार है। व्यभिचार एकतरफ पक्ष में नियम का अभाव है। हेतु की साध्यधर्म में अनियत अवस्थिति होती है।

1. **साधाारण** - साध्य के अभाववत् वृत्ति साधारण है। जहाँ साध्याभाव के आश्रय में हेतु रहता है, वह साधारण है। यथा पर्वत वह्निमान है, प्रमेयत्व के कारण।
2. **असाधारण** - सर्वपक्ष-विपक्ष से व्यावृत्त पक्ष मात्र वृत्ति असाधारण है। निश्चित साध्यवान् पक्ष है। निश्चित साध्य अभाव वान पक्ष है। जहाँ केवल पक्ष में हेतु रहता है, अन्यत्र सपक्ष आदि में नहीं, वह असाधारण है। यथा शब्द नित्य है, शब्दत्व के कारण।

टिप्पणी

3. **अनुपसंहारी** – अन्वय-व्यतिरेक दृष्टान्त रहित अनुपसंहारी है। जहाँ अन्वय दृष्टान्त और व्यातिरेक दृष्टान्त नहीं है, वहाँ अनुपसंहारी है। यथा सर्व नित्य है, प्रमेयत्व के कारण। यहाँ सभी के पक्षत्व के कारण दृष्टान्त नहीं है।

## 10.24.2 विरूद्ध

साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरूद्ध है। साध्य के अभाव के साथ व्याप्त हेतु विरूद्ध है। यथा-शब्द नित्य है, कृतकत्व के कारण।

## 10.24.3 सत्प्रतिपक्ष (प्रकरणसम)

जिसका साध्याभावसाधक हेतु के अतिरिक्त विद्यमान होता है, सत्प्रतिपक्ष है। यथा शब्द नित्य है, श्रवणत्व के कारण। शब्द अनित्य है, कार्य होने के कारण, घट के समान।

## 10.24.4 असिद्ध (साध्यसम)

असिद्धत्व से युक्त साध्यपदार्थ साध्यतुल्य, साध्यसम अथवा असिद्ध कहलाता है।

1. **आश्रयसिद्ध** – जहाँ पक्ष का आश्रय सिद्ध नहीं है, आश्रय अप्रसिद्ध यथा गगनारविन्द (आकाश कुसुम) की सुरभि, अरविन्दत्व के कारण, सरोज अरविन्द के समान।
2. **स्वरूपासिद्ध** – जहाँ पक्ष में हेतु स्वरूपतः कभी नहीं रहता है। यथा-शब्द गुण है, चाक्षुष होने के कारण।
3. **व्याप्यतासिद्ध** – सोपधिक हेतु व्याप्यता सिद्ध है। जहाँ उपाधियुक्त हेतु रहता है, वह व्याप्यतासिद्ध है। 'साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वम् उपाधिः'। जो साध्य का व्यापक है किन्तु हेतु का अव्यापक है, वह उपाधि है। यथा पर्वत धूमवान है, वह्निमत्व के कारण। यहाँ आद्र ईंधन संयोग उपाधि है।

## 10.24.5 बाधित (कालातीत)

जिस साध्य का अभाव प्रमाणान्तर से निश्चित है, वह बाधित है। जिस साध्य का अभाव अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित है, वह बाधित हेत्वाभास है। यथा-वह्नि अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण।

## 10.25 छल

'वचनविद्यातोऽर्थविकल्पोपच्या छलम्'। अभिमत अर्थ के विरूद्ध अर्थ का ग्रहण करके

वादियों के वचन का विद्यात छल है। और वह तीन है - वाक्छल, सामान्य छल और उपचार छल। यथा नवकम्बलवान यह माणवक (बालक) नवकम्बल अभिप्राय में नौ कम्बल, इसका अर्थ लेकर असम्भव द्वारा प्रतिषेध करता है- इसका एक कम्बल है, नौ कम्बल कहाँ, यह वाक्छल है।

## 10.26 जाति

असत् उत्तर जाति है। न्यायसूत्र में - ''साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जाति:''। साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा हेतु का प्रतिषेध जाति होती है। वादी के द्वारा स्वपक्ष के साधन के लिए हेतु प्रयोग में प्रतिवादी के प्रतिषेध हेतु जाति हैं। और वे जातियाँ साधर्म्यसमादि चौबीस (24) प्रकार के हैं। वैसे ही 'क्रियावान् आत्मौ', द्रव्य के क्रियाहेतुगुणयोग के कारण। द्रव्य क्रियाहेतुगुण युक्त क्रियावान् है, यथा, आत्मा, उससे क्रियावान है। एवं साधर्म्य के द्वारा अवतिष्ठित होता है - निष्क्रिय आत्मा है, विभुद्रव्य होने के कारण, आकाश के समान, यह साधर्म्यसम जाति है।

## 10.27 निग्रहस्थान

निग्रहस्थान पराजय का हेतु है। 'विप्रतिपत्तिरप्रत्तिपतिश्च निग्रहस्थानम्' - न्यायसूत्र में कहा गया है। विपरीत अथवा कुत्सित प्रतिपत्ति का ज्ञान विप्रतिपत्ति है। आरम्भ का विषय में और अनाम्भ अप्रतिपत्ति है। जहाँ अन्य के द्वारा स्थापित पक्ष का प्रतिषेध नहीं होता है, अथवा दोष उद्धृत नहीं होता है, वहाँ अप्रतिपत्ति होती है। विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्ति निग्रह स्थान के भेद नहीं अपितु निग्रह स्थानों के अनुमापक तथा सामान्य लक्षण हैं। प्रतिज्ञा हानि और प्रतिज्ञान्तर आदि 22 निग्रहस्थानों में छः अप्रतिपत्तिमूलक निग्रह स्थान तथा अन्य सोलह (16) विप्रतिपत्तिमूलक निग्रहस्थान हैं।

## 10.28 मोक्ष

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थ चतुष्ट्य है। वहाँ मोक्ष परम पुरूषार्थ है। वह मोक्ष ही नि:श्रेयस, मुक्ति, अपवर्ग, निर्वाण इत्यादि पदों के द्वारा जाना जाता है। न्यायदर्शन की प्रवृत्ति मोक्ष प्राप्ति के लिए ही है। अत: न्याय दर्शन के आदिसूत्र में उक्त प्रमाण आदि पदार्थों के तत्वज्ञान से नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है। और वह नि:श्रेयस बारह प्रमेयों में अन्यतम है। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है। न्याय सूत्र में मोक्ष का स्वरूप उक्त है- ''तदत्यन्तविमोक्षेऽपवर्ग:''। उस पद द्वारा यहाँ दु:ख अवगन्तव्य है। अत: सभी दु:खों का अत्यन्त विमोक्ष निवृत्ति है। वह अपवर्ग है। द्वितीय सूत्र में मोक्ष प्राप्ति का क्रम निर्दिष्ट है- ''दु:ख-जन्म-प्रवृत्ति-दोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायाद् अपवर्ग:''। जन्म अथवा पुनरूत्पत्ति दु:खों का कारण है। अत: पुनर्जन्म के विनाश पर

टिप्पणी

सभी दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव है। जन्म का कारण वैसी प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के द्वारा शुभाशुभ कर्म-फल उत्पन्न होते हैं। उनके भोग के पुनर्जन्म होता है। और प्रवृत्ति राग-द्वेष मोह आदि दोषों के द्वारा उत्पत्ति उत्पन्न है। और दोष देह आदि में आत्माभिमान रूप मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होते हैं। अत: मिथ्याज्ञान के नाश में यथाक्रम जन्मरोध में दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो। इसीलिए न्यायमञ्जरीकार-

**यावदात्मगुणा: सर्वे नोच्छिन्न वासनादय:।**
**तावदात्यन्तिकी दु:खनिवृत्तिर्नावकल्पयते॥**

**धर्माधर्मनिमित्तो हि सम्भव: सुखदु:खयो।**
**मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मन:॥**

**तदुच्छेदे ते तत्कार्यशरीरानुपलम्भनात्।**
**नात्मन: सुखदु:खेस्त इत्यासौ मुक्त उच्यते॥ (न्यायमञ्जरी)**

## 10.29 असत्कार्यवाद

नैयायिक असत्कार्यवादी हैं। उनके मत में उत्पत्ति के पूर्व कार्य है, वह उपादान कारण में असत् है। घटकार्य उत्पत्ति के पूर्व घटकारण मृत्तिका में कभी भी नहीं रहता है। कार्य कारण से भिन्न ही है। असत्कार्यवाद के अनुसार सत् कारण से असत कार्य की उत्पत्ति होती है। कार्य की उत्पत्ति के पूर्व होने पर उपादान कारण में असत् कार्य की जो उत्पत्ति है, वह 'आरम्भ' कहलाता है। जगत का उपादान कारण परमाणु समूह सत् अर्थात् नित्य है। परमाणु से द्वयणुक आदि की उत्पत्ति होती है। द्वयणुक आदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व नहीं है। और अन्य विनाश से नहीं होता है। अत: न्याय मत में सत कारण से ही असत् कारण उत्पन्न होता है। यही असत्कार्यवाद आरम्भवाद का मूल है। महर्षि गौतम ने भी कहा। क्योंकि कार्य की उत्पत्ति-विनाश प्रत्यक्ष सिद्ध है, अत: कार्य असत् ही है। और न्यायसूत्र में है - ''उत्पादव्ययदर्शनात्''।

### पाठगत प्रश्न 10.3

1. न्यायमत में प्रमेय कितने हैं?
2. न्यायमत में आत्मगुण क्या हैं?
3. शरीर क्या है?
4. अर्थ क्या हैं?
5. मन का अनुमापक क्या है?

टिप्पणी



6. दोष क्या है?
7. प्रेत्यभाव क्या है?
8. अपवर्ग क्या है?
9. संशय क्या है?
10. सिद्धान्त कितने हैं?
11. तर्क क्या है?
12. प्रमाणों का फल क्या है?
13. निर्णय लक्षण क्या है?
14. वाद क्या है?
15. जल्प क्या है?
16. किस कथा में स्वपक्ष स्थापना नहीं रहती है?
17. छल आदि का प्रयोग किस कथा में होता है?
18. हेत्वाभास क्या है?
19. हेत्वाभास कितने प्रकार का है?
20. सव्यभिचार हेत्वाभास कितने प्रकार का है?
21. ''गगनारविन्द सुरभि, अरविन्दत्व के कारण'', यहाँ कौन-सा हेत्वाभास विद्यमान है?
22. ''वह्नि अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण'' यहाँ कौन-सा हेत्वाभास विद्यमान है?
23. छल कितने प्रकार के हैं?
24. जाति क्या है?
25. निग्रहस्थान क्या है?
26. निग्रस्थान कितने प्रकार के हैं?
27. विप्रतिपत्तिमूलक निग्रहस्थान कितने हैं?
28. न्यायमत में मोक्ष का स्वरूप क्या है?
29. 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः', यहाँ उस पद का अर्थ क्या है?
30. न्यायमत में निःश्रेयस की प्राप्ति कैसे होती है?
31. दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे हो?

टिप्पणी

32. असत्कार्यवादी कौन हैं?

33. असत्कार्यवाद का सार क्या है?

34. आरम्भवादी कौन हैं?

## पाठसार

गौतम प्रणीत न्यायसूत्र न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस दर्शन में प्रमाण आदि सोलह (16) पदार्थ स्वीकृत हैं। इन पदार्थों के तत्वज्ञान से नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है। न्यायमत में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द के भेद से चार प्रमाण हैं। प्राचीन, नव्य, मध्य के भेद से न्याय सम्प्रदाय त्रिविध है। गंगेश उपाध्याय नव्य न्याय के प्रवर्तक है। नैयायिक मत में 'सत: असत् उत्पद्यते', यह असत्कार्यवादी हैं। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है। और वह मोक्ष का लाभ मिथ्या ज्ञान आदि के नाश में पुर्नजन्म अवरोध से सम्भव होता है।

## पाठान्त प्रश्न

1. न्याय दर्शन की महिमा का वर्णन कीजिए।
2. न्याय शब्द के अर्थ का वर्णन कीजिए।
3. न्यायशास्त्र का बीज लिखिए।
4. कालभेद से न्यायशास्त्र के भेदों को वर्णित कीजिए।
5. प्राचीन-मध्य-नव्य न्याय वैशिष्ट्य कौन से हैं?
6. न्याय मत में प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे होता है?
7. न्यायमत में सन्निकर्षों को व्याख्यायित कीजिए।
8. कारणों का परिचय दीजिए।
9. न्याय मत में अनुमान कैसे उत्पन्न होते हैं?
10. न्याय मत में परार्थानुमान को विस्तृत कीजिए।
11. न्याय मत में उपमान को व्याख्यायित कीजिए।
12. न्याय मत में शब्द प्रमाण का वर्णन कीजिए।
13. न्याय के प्रमेयों का परिचय दीजिए।
14. सव्यभिचार हेत्वाभास सभेद एवं सोदाहरण व्याख्यात कीजिए।

15. साध्यसम हेत्वाभास का परिचय सभेद और सोदाहरण दीजिए।
16. छल स्पष्टीकृत कीजिए।
17. न्याय मत में प्रमेयों की जाति वर्णनीय हैं।
18. न्याय के अनुसार मोक्ष प्रतिपादन कीजिए।
19. न्याय के असत्कार्यवाद का उपपादन कीजिए।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-10.1**

1. दर्शन शब्द का अर्थ तत्व ज्ञान है।
2. नास्तिक दर्शन सम्प्रदाय हैं - चार्वाक, बौद्ध और जैन।
3. न्यायशास्त्र का आन्वीक्षिकी अथवा तर्कशास्त्र अन्य नाम है।
4. भाष्यकार के द्वारा न्याय शब्द का अर्थ किया गया है - ''प्रमाणै: अर्थपरीक्षणं न्याय:''।
5. प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन-अनुमान के पञ्चावयव हैं।
6. न्यायशास्त्र में अनुमान प्रमाण द्वारा वेद का प्रमाण्य उपस्थित है।
7. छान्दोग्योपनिषद् में विहित 'वाकोवाक्य' पद का अर्थ तर्कशास्त्र है।
8. महर्षि गौतम न्यायसूत्र के प्रणेता हैं।
9. गन्नेशोपाध्याय नव्य न्याय के प्रवक्ता हैं।
10. भासर्वज्ञ मध्य न्याय के प्रवक्ता हैं।
11. प्राचीन न्याय में प्रमेयों का प्राधान्य दिखता है किन्तु नव्य-न्याय में प्रमाण प्रधान है।
12. ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी न्यायसूत्र का उद्भवकाल है।
13. न्यायवार्तिक उद्योतकर द्वारा प्रणीत है।
14. न्यायवार्तिक तात्पर्य वाचस्पत्ति मिश्र द्वारा विरचित है।
15. उदयानाचार्य कृत न्यायशास्त्र का ग्रन्थ न्यायनिबन्ध है।
16. न्याय मञ्जरीकार जयन्तभट्ट।
17. नव्य न्याय का प्रामाणिक ग्रन्थ गंगेशउपाध्याय कृत तत्वचिन्तामणि है।

18. बर्धमानोपाध्याय कृत प्रकाशटीका।
19. वादिविनोद शंकरमिश्र द्वारा प्रणीत है।
20. विश्वनापञ्चानन न्यायसूत्रवृत्तिकार है।
21. रघुनाथ शिरोमणि कृत न्यायग्रन्थ तत्वचिन्तामणि दीधिति है।
22. न्यायसार भासर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है।

## उत्तर-10.2

1. न्यायशास्त्र में मोक्षानुकूल सोलह पदार्थ प्रमाण आदि हैं।
2. नैयायिक अनियतपदार्थवादी हैं।
3. न्यायमत में चार प्रमाण हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।
4. 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्ष का लक्षण है।
5. प्रत्यक्ष दो प्रकार का है- सविकल्प और निर्विकल्प।
6. सन्निकर्ष दो प्रकार का है- लौकिक और अलौकिक।
7. संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवाय, समवेत समवाय, विशेष्यविशेषणभाव, ये छः लौकिक सन्निकर्ष है।
8. सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज, ये तीन अलौकिक सन्निकर्ष हैं।
9. घटरूप प्रत्यक्ष में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष होता है।
10. शब्दत्व प्रत्यक्ष में समवेत समवाय सन्निकर्ष होता है।
11. अभावप्रत्यक्ष में विशेष्यविशेषणभाव सन्निकर्ष है।
12. 'कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्' यह कारण का लक्षण है।
13. कारण तीन हैं- समवायी, असमवायी और निमित्त।
14. तन्तु पट का समवायिकारण है।
15. तुरीय, वेमा आदि पट कार्य का निमित्त करण है।
16. असाधारण कारण करण है।
17. नव्य न्याय मत में चक्षु आदि इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण।
18. 'फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणं करणम्' नव्य मत में करण लक्षण है।
19. 'व्यापारवत् कारणं करणम्' नव्य मत में करण का लक्षण है।

टिप्पणी



20. परामर्श जन्य ज्ञान अनुमिति है।
21. व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान परामर्श है।
22. प्राचीन मत में परामर्श ज्ञान अनुमान प्रमाण है।
23. नव्य मत में व्याप्ति स्मृति अनुमान प्रमाण है।
24. अनुमान दो प्रकार का है- स्वार्थानुमान और परार्थानुमान।
25. मेघों को देखकर वृष्टि होगी, वृष्टि का अनुमान है।
26. संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध का ज्ञान उपमिति है।
27. प्राचीन मत में अतदेश वाक्यार्थ स्मरण उपमान प्रमाण।
28. आप्त वाक्य शब्द प्रमाण है।
29. शब्द प्रमाण दो प्रकार का है। दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ।
30. 'अस्मात् पदात् अयम् अर्थः बोधव्यः', यह ईश्वर संकेत शक्ति है।
31. वृद्ध व्यवहार के द्वारा शक्तिग्रह होता है।
32. आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, शाब्दबोध में तीन कारण है।
33. नव्य मत में शब्द प्रमाण पद ज्ञान हैं
34. पदार्थ स्मृति शब्द बोध में व्यापार है।

## उत्तर-10.3

1. न्याय मत में प्रमेय बारह हैं।
2. न्याय मत में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान आत्मा के गुण हैं।
3. भोगायतन शरीर हैं।
4. भोग योग्य विषय अर्थ हैं।
5. युगपत् ज्ञान की मन से अनुत्पत्ति मन का अनुमापक है।
6. प्रवृत्ति कारण दोष हैं।
7. पुनः उत्पत्ति प्रेत्यभाव है।
8. दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति अपवर्ग है।
9. एक धर्मी में विरूद्ध प्रकार का ज्ञान संशय है। यथा आत्मा नित्य अथवा अनित्य है।

टिप्पणी

10. सिद्धान्त चार प्रकार का है- सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम।
11. सामान्यतः जिस ज्ञात पदार्थ का तत्व अविज्ञात है, उस पदार्थ में तत्व ज्ञानार्थ में प्रमाणसम्भव प्रयुक्त ज्ञान विशेष तर्क है।
12. निर्णय अथवा तत्वज्ञान प्रमाणों का फल है।
13. 'विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्याम् अर्थावधारणं निर्णयः'।
14. तत्व बुभुत्सु की कथा वाद है।
15. विजिगीषु कथा जल्प है।
16. वितण्डा में स्वपक्ष स्थापना नहीं रहती हैं।
17. जल्प कथा में छल आदि का प्रयोग होता है।
18. हेतु का आभास अथवा दोष हेत्वाभास है। जो हेतुवत् आभास होते हैं, वे हेत्वाभास हैं।
19. हेत्वाभास पाँच प्रकार के हैं।
20. सव्यभिचार हेत्वाभास तीन प्रकार का है- साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी।
21. गगनारविन्द की सुरभि, अरविन्द होने के कारण, यहाँ आश्रयसिद्ध हेत्वाभास विद्यमान है।
22. वह्नि (अग्नि) अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण, यहाँ बाध हेत्वाभास है।
23. छल त्रिविध हैं- वाक् छल, सामान्य छल, और उपचार छल।
24. असत् उत्तर जाति है।
25. पराजय प्राप्ति हेतु निग्रह स्थान है।
26. बाईस (22) निग्रह स्थान हैं।
27. विप्रतिपत्तिमूलक सोलह (16) निग्रहस्थान हैं।
28. न्यायमत में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है।
29. 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः' यहाँ तत् पद का अर्थ दुःख है।
30. न्यायमत में प्रमाण आदि के तत्व ज्ञान से निःश्रेयस प्राप्त होता है।
31. मिथ्या ज्ञान के नाश में दोष नाश होता है, दोष नाश में प्रवृत्तिनाश, प्रवृत्तिनाश में जन्मनाश, और जन्म नाश में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।
32. नैयायिक असत्कार्यवादी हैं।
33. सत् कारण से असत् कार्य उत्पन्न होता है, उत्पत्ति के पूर्व कार्य उपादान कारण में असत् है, यह असत्कार्यवाद का तात्पर्य है।
34. नैयायिक आरम्भवादी है।

**।।दशम पाठ समाप्त।।**

# 11

# वैशेषिक दर्शन

**''योगाचारविभूत्या यस्तोषयित्वा महेश्वरम्।**
**चक्रे वैशेषिकं शास्त्रं तस्मै कणभुजे नमः॥'' (प्रशस्तपादभाष्य)**

## प्रस्तावना

छः आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक दर्शन अन्यतम है। वैशेषिक दर्शन के अन्य नाम भी हैं। यथा- कणाद दर्शन, औलूक्य दर्शन, काश्यपीय दर्शन। इस दर्शन के प्रवक्ता महर्षि कणाद हैं। जो निश्चित स्थानान्तर पर कणभुक्, कर्णभक्ष, उलूक, काश्यप, योगी इत्यादि नामों से जाने जाते हैं। यह वैशेषिक दर्शन न्याय शास्त्र से भी प्राचीनतम है। पदार्थ विभाजन तथा परमाणुवाद प्रवर्तन वैशेषिक दर्शन के विशेष हैं। और भी नव्यन्यायशास्त्र का परिपूरक शास्त्र यह कणाद प्रवर्तित वैशेषिक दर्शन है। इस दर्शन का प्रशंसावाचक प्रवाद भी पण्डित समाज में प्रचलित है- ''काणादं पाणिनीयञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम्''।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन के समान तन्त्र जान पाने में;
- वैशेषिक नाम का तात्पर्य जान पाने में;
- वैशेषिक दर्शन का काल जान पाने में;
- कणाद प्रणीत ग्रन्थ का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वैशेषिक दर्शन की आचार्य परम्परा को जान पाने में;

- वैशेषिक पदार्थतत्व को जान पाने में;
- वैशेषिक प्रमाणतत्व को जान पाने में;
- परमाणुवाद को जान पाने में।

## 11.1 न्यायदर्शन के समान तन्त्र

यह दर्शन न्याय शास्त्र के समान तन्त्र ही है। यहा समान पद सादृश्यार्थक है। और तन्त्रपद सिद्धान्तवाची अथवा शास्त्रवाची है। अमरकोष में उक्त हैं- ''तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रवापे परिच्छदे''। न्यायदर्शन के साथ वैशेषिक दर्शन सिद्धान्तगत सादृश्य ही प्रधान है। और जो दोनों वैजात्य दिखता है, वह गौण है। जैसे न्यायदर्शन में ही प्रमाण तत्व प्रधान है किन्तु वैशेषिक दर्शन में प्रमेय तत्व प्रधान है। न्यायमत में सोलह पदार्थ हैं और वैशेषिक मत में सात पदार्थ हैं। न्यायमत में चार प्रमाण हैं और वैशेषिक दर्शन में दो प्रमाण हैं। इस प्रकार वैसादृश्य होने पर भी दोनों शास्त्रों का सादृश्य अस्वीकार है। वैसे भी वैशेषिकों के सात पदार्थ न्याय सम्प्रदाय में अवान्तर पदार्थ के रूप में स्वीकृत हैं। वैसे ही भाष्य में-

> **''अस्त्यन्यदीप द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः प्रमेयम्, तद्भेदेन चापरिसंख्येयम्।''**

न्याय के सोलह पदार्थ वैशेषिकों द्वारा प्रकारान्तर से स्वीकृत हैं। यथा न्याय का संशय पदार्थ वैशेषिक के गुण के अन्तर्गत है। वैशेषिकों के प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण न्याय के प्रत्यक्ष, अनुमान से अभिन्न है। वैशेषिक उपमान और शब्द, दो प्रमाण भी अनुमान के अन्तर्गत मानते हैं। और भी मुक्ति के विषय में दोनों एकमत हैं। यहाँ दोनों मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति और दु:ख-निवृत्ति स्वीकृत है। परमाणु ही पञ्चमहाभूतों के उपादान है, दोनों सहमत हैं। और दोनों सम्प्रदाय असत्कार्यवाद और आत्मा का बहुत्व एवं सगुणत्व स्वीकार करते हैं। अत: वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन के समानतन्त्र कहलाता है।

## 11.2 वैशेषिक नामकरण

'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे', इस सूत्र द्वारा विशेष शब्द से ठक्-प्रत्यय के योग में निष्पन्न वैशेषिक शब्द कणाद प्रवर्तित शास्त्र का वाचक है। विशेष को अधिकृत किया हुआ ग्रन्थ, यह अर्थ है। और वह विशेष पदार्थ निरूपक ग्रन्थ है। इस शास्त्र का विशेष क्या है? तो कहते हैं- कणाद प्रवर्तित इस शास्त्र में 'विशेष' पदार्थ स्वीकृत है। जो निश्चय ही भेद बुद्धि का जनक है। यह विशेष पदार्थ ही वैशेषिक शास्त्र का विशेष है। कुछ कहते हैं कि परमाणु अथवा कण वैशेषिक दर्शन का विशेष है। और शारीरिकभाष्य में- ''न च अकारेण कार्येण भवितव्यमिति अत: परमाणव: जगत: कारणम् इति

कणभुगभिप्राय:।'' अत: विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से अथवा परमाणुवाद के प्रवर्तन से इस शास्त्र का वैशेषिक अभिधा, ऐसा कहना युक्त है।

## 11.3 वैशेषिक दर्शन का काल

वैशेषिक दर्शन अतीव प्राचीन दर्शन है। इसके आरम्भकाल के विषय में निश्चित रूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्रों में परमाणुवाद आदि वैशेषिक मत खण्डित दिखते हैं। और वैशेषिक शास्त्र में न्याय मत प्राप्त नहीं होता है। किन्तु न्याय भाष्य आदि में वैशेषिक मत सुलभ है। और उसके द्वारा वैशेषिक दर्शन इन दर्शनों से प्राचीनतर प्रतीत होता है। सतीशचन्द्रविद्याभूषण महोदय के मत में वैशेषिकसूत्रों का आनुमानिक काल छठी शताब्दी ईसा पूर्व है।

## 11.4 सूत्रग्रन्थ परिचय

कणाद प्रणीत वैशेषिक-सूत्र ग्रन्थ में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक होते हैं। समग्र ग्रन्थ का मूल उद्देश्य तत्वज्ञान है। और तत्वज्ञान का फल मुक्ति है। और वैशेषिक सूत्र में- ''धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायां पदार्थानां साधर्म्यवैध र्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्नि: श्रेयसम्''।

वैशेषिक मत में जड़ पदार्थ के तत्व ज्ञान को छोड़कर आत्म-तत्व का ज्ञान नहीं होता है। अत: मुक्ति के लिए आत्मतत्व की ज्ञान प्राप्ति के लिए वैशेषिक दर्शन में जड़ पदार्थों की भी विस्तार से आलोचना विहित है। तथा नीचे अध्याय क्रम से वैशेषिक सूत्र ग्रन्थ का विषय संक्षेप में प्रदान किया गया है-

| अध्याय | आह्निक | विषय |
|---|---|---|
| 1. | 1. | धर्मलक्षण, द्रव्य आदि पदार्थ का लक्षण |
| | 2. | कार्यकारणभावविचार, सत्तादि जाति वर्णन |
| 2. | 1. | पृथिवी आदि द्रव्य लक्षण |
| | 2. | कालनिरूपण, शब्दनिरूपण |
| 3. | 1. | आत्मानुमान, हेतात्वाभास |
| | 2. | मनोनिरूपण, प्रकारान्तर द्वारा आत्मानुमान, आत्मा की नित्यता |
| 4. | 1. | परमाणुकारणतावाद, रूप आदि प्रत्यक्ष वर्णन |
| | 2. | कर्मविचार |

टिप्पणी

| | | |
|---|---|---|
| 5. | 1. | अनित्यद्रव्यविभाग |
| | 2. | भूमिकम्पन आदि का हेतु, अन्धकार निरूपण |
| 6. | 1. | वेद का ईश्वर कर्तृत्व |
| | 2. | वैधकर्मफल, धर्माधर्महेतु, पुनर्जन्म, मोक्षोपाय |
| 7. | 1. | रूप आदि की नित्यता और अनित्यता, परिमाण विचार |
| | 2. | संख्यादि विचार, पदपदार्थ सम्बन्ध विचार, समवाय |
| 8. | 1. | ज्ञानप्रकरण, प्रत्यक्ष हेतु निर्देश |
| | 2. | विशिष्ट प्रत्यक्ष हेतु |
| 9. | 1. | अभाव प्रत्यक्ष प्रकरण, योगज प्रत्यक्ष |
| | 2. | अनुमान, शब्दबोध का अनुमानत्व, अविद्या, विद्या |
| 10. | 1. | सुखदु:ख विचार |
| | 2. | कारणत्रय का उपदेश, वेदप्रामाण्य |

## पाठगत प्रश्न 11.1

1. वैशेषिक दर्शन के प्रवक्ता कौन हैं?
2. वैशेषिक दर्शन का विशेषत्व क्या है?
3. महर्षि कणाद् के दो अपर नाम क्या हैं?
4. वैशेषिक दर्शन किस दर्शन के समान तन्त्र है?
5. न्याय-वैशेषिक दर्शनों का एक सादृश्य लिखें।
6. न्याय-वैशेषिक दर्शनों का एक वैशादृश्य लिखें।
7. वैशेषिक दर्शन का 'वैशेषिक' कैसे होता है?
8. वैशेषिक सूत्र का उद्भव किस समय में हुआ?
9. वैशेषिक सूत्र में कितने अध्याय हैं?
10. वैशेषिक शास्त्र का मूल उद्देश्य क्या है?

## 11.5 आचार्य परम्परा

कणाद् प्रणीत जो वैशेषिक दर्शन है, उसके कितने आचार्य थे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ वैशेषिक ग्रन्थों के नाम मात्र सुने गए हैं किन्तु उनके रचयिता कौन हैं, यह ज्ञान नहीं है। यथा 'वैशेषिकवाक्य' वार्तिक और 'वैशेषिक कटन्दी' ग्रन्थ हैं। जब भी हो, अभी कुछ वैशेषिक आचार्यों के नाम तथा उन ग्रन्थों के नाम कालचक्र से उपस्थापित हैं–

| क्रमाङ्क | आचार्य | ग्रन्थ | काल (आनुमानिक) ईशवीय शतक |
|---|---|---|---|
| 1. | कणाद् मुनि | वैशेषिक सूत्र | छठी (ईसा पूर्व) |
| 2. | प्रशस्तपाद | पदार्थधर्मसंग्रह / प्रशस्तपादभाष्य | तृतीय (ईसा पूर्व) |
| 3. | व्योमशिवाचार्य | व्योमवती | सप्त (ईस्वी) |
| 4. | श्रीधरभट्ट | न्यायकन्दली (भाष्यटीका) | दसवीं (ईस्वी) |
| 5. | उदयनाचार्य | किरणावली (भाष्यटीका) | ग्यारहवीं ईस्वी |
| 6. | वल्लभाचार्य | न्यायलीलावती | बारहवीं ईसवी |
| 7 | शिवादित्याचार्य | सप्तपदार्थी | बारहवीं ईस्वी |
| 8. | केशवमिश्र | तर्कभाषा | तेरहवीं ईस्वी |
| 9. | शंकरमिश्र | वैशेषिक सूत्रोपस्कार | पन्द्रहवीं ईस्वी |
| 10. | रघुनाथ शिरोमणि | पदार्थतत्वनिरूपण (दीधिति) | सोलहवीं ईस्वी |
| 11. | प्रगल्भाचार्य | प्रागल्भा (लीलावती) | सोलहवीं ईस्वी |
| 12. | पद्मनाभमिश्र | सेतुटीका | सोलहवीं शताब्दी ईस्वी |
| 13. | अन्नम्भट्ट | तर्कसंग्रह | सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी |
| 14. | विश्वनाथाचार्य | भाषपरिच्छेद | सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी |
| 15. | पञ्चाननतर्क रत्न | परिष्कार (उपस्कारटीका) | बीसवीं शताब्दी ईस्वी |

### पाठगत प्रश्न 11.2

1. प्रशस्तपाद द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम क्या है?
2. व्योमवती किसकी रचना है?
3. किरणावली किसके द्वारा विरचित है?

टिप्पणी

4. न्यायकन्दली के प्रणेता कौन हैं?
5. उपस्कारग्रन्थ किसके द्वारा विरचित है?
6. सेतुटीका के टीकाकार कौन हैं?
7. विश्वनाथ आचार्य के ग्रन्थ का नाम क्या है?
8. अन्नम्भट्ट के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ का नाम क्या है?
9. न्यायलीलावती किसकी रचना है?
10. केशवमिश्र कौन हैं?

### वैशेषिक मत में पदार्थ

वैशेषिक दर्शन में सप्त पदार्थ स्वीकृत हैं, अतः वे वैशेषिक सप्तपदार्थवादी कहे जाते हैं। यद्यपि कणाद्-सूत्र में छः पदार्थों का उल्लेख दिखता है, वहाँ अभाव का उद्देश्य नहीं है, तथापि नवम् अध्याय में प्राग्भाव का स्वरूप उक्त है। और उदयनाचार्य द्वारा अभाव सप्त पदार्थ के रूप में गृहीत है। और भी, यह वक्तव्य है कि अभाव पदार्थ भावपद के ज्ञानाधीन है। उसके कारण अभाव का पृथक् उल्लेख सूत्र में नहीं है। न्यायकन्दलीकार ने कहा है-

**''अभाव पृथगनुपदेशो भावपारतन्त्र्यात्, न त्वभावात्।''**

वैशेषिक मत में सप्त पदार्थ ही है। और वे पदार्थ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। उसमें द्रव्य नौ ही हैं। वे हैं- पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुण चौबिस हैं। और वे हैं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार। कर्म पाँच होते हैं। और वे हैं- उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। सामान्य दो प्रकार का है। और वह पर और अपर है। विशेष अनन्त हैं। समवाय एक ही है। अभाव के चार भेद हैं। और वे प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव।

## 11.7 द्रव्य

सप्त पदार्थों में द्रव्य ही गुण, कर्म आदि के आश्रयत्व द्वारा प्रधान है। उसके कारण उसका प्रथमतः उल्लेख है। ''क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्।'' (1/1/15) कर्माश्रय, गुणाश्रय, अथवा उनका समवायिकारण द्रव्य है। अर्थात् जिस पदार्थ में समवाय द्वारा गुण अथवा कर्म रहता जो भावकार्यमात्र का समवायिकारण होता है, वह द्रव्य है। और वे नव द्रव्य हैं- पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

'तमः खलु चलं नीलं परापरविभागवत्' इस प्रकार मीमांसक तमस् को दसवाँ द्रव्यत्व कहते हैं। किन्तु न्याय मत में तम पृथक् द्रव्य नहीं है, उसके अभाव में ही अन्तर्गत होने के कारण। वस्तुतः तम प्रौढप्रकाशक तेजस का अभाव ही है। 'तम चलता है, यह प्रत्यय तो भ्रम है। जिस द्रव्य में कर्म होता है, वह मूर्त कहलाता है। अथवा जिस द्रव्य का परिमाण परिच्छिन्न होता है, वह द्रव्य मूर्त है। मूर्त से भिन्न द्रव्य विभु है। सर्वमूर्त द्रव्य के साथ जिसका संयोग होता है, वह सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगी विभु द्रव्य है। आकाश, काल, दिक् आत्मा विभु द्रव्य हैं। अन्य सभी मूर्त ही है।

## 11.7.1 पृथिवी

**'गन्धवती पृथिवी'।** गन्धवत्व पृथिवी का लक्षण है। पृथिवीत्व जाति का गन्ध विशेष गुण कहा गया है अथवा जिस द्रव्य में समवाय द्वारा है, वह पृथिवी है। शरीर, इन्द्रिय, विषय, इस भेद से पृथिवी तीन प्रकार की है। शरीर मनुष्य आदि जन्तुओं का है। इन्द्रिय घ्राण है, नासिका के अग्र में वर्तमान और ग्रन्ध-ग्रहण में साधनभूत होता है। विषय मृत्, पाषाण, वृक्ष आदि हैं। कार्यरूप पृथिवी अनित्य है। किन्तु पृथिवी का परमाणु नित्य है। पृथिवी के रूप, रस, गन्ध और स्पर्श चार पाकज विशेष गुण रहते हैं। 'पाक' वेज संयोग है। और संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व और संस्कार दस सामान्य गुण पृथिवी में होते हैं।

## 11.7.2 आप

**'शीतस्पर्शवत्य आपः'।** जिन द्रव्यों में शीतस्पर्श रूपी गुण रहता है, वह आप (जल) है। अप्त्व सामान्य युक्त आप है। शरीर, इन्द्रिय, और विषय के भेद से आप तीन प्रकार के हैं। शरीर जलीय वरूण लोक में है। इन्द्रिय रसना, जिह्वा में होती है और रस ग्रहण में साधनभूत होता है। विषय सरिता, समुद्र आदि हैं। कार्यरूप आप अनित्य है। आप के परमाणु नित्य है। आप में भी पृथिवीवत् चौदह गुण रहते हैं। पृथिवी में जहाँ गन्ध विशेष गुण है यहाँ आप में स्नेह विशेष गुण है, यह भेद है।

## 11.7.3 तेज

**'उष्णस्पर्शवत्तेजः तेजः'।** जिस द्रव्य में 'उष्ण स्पर्श' गुण रहता है, वह तेज है। अथवा तेजस्त्व जाति युक्त तेज है।

शरीर, इन्द्रिय और विषय भेद से तेज तीन प्रकार के हैं। शरीर तैजस आदित्यलोक में है। इन्द्रिय चक्षु, कृष्णतारा अग्रवर्ती है, रूप ग्रहण में साधन होता है। विषय, भौम, दिव्य, औदर्य, आकरज के भेद से चार प्रकार का है। भौम वह्नि (अग्नि) खद्योत आदि है, दिव्य सूर्य, विद्युत आदि, औदर्य भुक्त अन्न आदि के रस आदि के रस आदि रूप

टिप्पणी

में परिणाम हेतु, और आकरज सुवर्ण आदि है। कार्यरूप तेज अनित्य है। तैजस परमाणु नित्य है। तेज में रूप और स्पर्श दो विशेष गुण रहते हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व और संस्कार नौ सामान्य गुण रहते हैं।

## 11.7.4 रूपरहितस्पर्शवान् वायुः

**'रूपरहितस्पर्शवान् वायुः'।** जिस द्रव्य का रूप नहीं है किन्तु स्पर्श होता है वह द्रव्य वायु है अथवा वायुत्व जाति से युक्त वायु है। और वह वायु अनुष्णाशीत स्पर्श आदि द्वारा अनुमेय है। शरीर, इन्द्रिय, और विषय के भेद से वायु त्रिविध है। वायवीय शरीर वायुलोक में है। इन्द्रिय त्वक्, सर्वशरीर में होता है, और स्पर्शग्रहण में साधन होता है। विषय वृक्ष आदि के कम्पन का हेतु है। शरीर की अन्तः सञ्चारी वायु प्राण कहलाती है। और वह उपाधिभेद से प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान पाँच प्रकार का है। कार्यरूप वायु अनित्य है। और परमाणु रूप वायु नित्य है। वायु में स्पर्श, एक विशेष गुण है तथा संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग (संस्कार) आठ सामान्य गुण रहते हैं।

## 11.7.5 आकाश

**'शब्दगुणकम् आकाशम्'।** जिस द्रव्य में 'शब्द' विशेष गुण समवाय में रहता है, वह द्रव्य आकाश है। और वह आकाश नित्य, विभु परिमाण और एक है। नित्य सृष्टि-विनाश रहित है। विभु सर्वमूर्त द्रव्य संयोगी है। परिच्छिन्न परिमाणवत् अथवा क्रियावत् द्रव्य मूर्त है। क्योंकि आकाश के परिमाण की इयत्ता नहीं है, उससे वह विभुपरिमाण, अमूर्त है। विभु होने से आकाश सर्वव्यापी है। आकाश के भेद में प्रमाण नहीं है, अतः वह एक है। आकाश में शब्द विशेष गुण है तथा संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग पाँच सामान्य गुण रहते हैं। शब्दाश्रयत्व के द्वारा परिशेष अनुमान से आकाश की सिद्धि होती है।

## 11.7.6 काल

**'अतीतादिव्यवहारहेतु कालः'।** लोक में अतीत, वर्तमान भविष्य, सम्वत्सर, मास, दिन इत्यादि शब्दों के प्रयोग का हेतु काल है। काल एक होने पर भी उपाधिभेद से अनेक है। और वह काल नित्य, विभु परिमाण विशिष्ट है। काल में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग पाँच सामान्य गुण रहते हैं। दिक्, परत्व, अपरत्व के विपरीत धर्म हेतु द्वारा काल की सिद्धि होती है। काल जगत का आधार है और कार्यमात्र का निमित्त कारण है। जन्यमात्र काल की उपाधि है।

टिप्पणी



## 11.7.7 दिक्

'प्राच्यादिव्यवहारहेतुः दिक्'। लोक में प्राची, प्रतीची, अदीची, अवाची शब्दों के प्रयोग का हेतु दिक् है। और वह दिक् एक भी सूर्यतद्देशसंयोगोपाधि के भेद से प्राची आदि होते हैं। दिक् (दिशा) उत्पत्ति, विनाश से रहित नित्य और विभु है। दिशा में कालवत् संख्या, परिमाण, पृथक्त्व संयोग और विभाग, पाँच सामान्य गुण होते हैं। कालकृत परत्व-अपरत्व के विपरीत धर्म के हेतुत्व द्वारा दिक् की सिद्धि होती है। और दिक् काल के समान कार्यमात्र का निमित्त कारण है। सभी मूर्त दिशा उपाधि है।

## 11.7.8 आत्मा

'ज्ञानाधिकरणम् आत्मा'। ज्ञान का आश्रय आत्मा है। ''ज्ञान समवाय द्वारा जिस द्रव्य में रहता है वह द्रव्य आत्मा है। और वह आत्मा नित्य और विभु है। जीवात्मा और परमात्मा के भेद से आत्मा दो प्रकार का है। सुख, दुःख आदि के वैचित्रय से जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न होती है। किन्तु परमात्मा ईश्वर एक और सर्वज्ञ है। जीवात्मा में संख्या आदि पाँच सामान्य गुण तथा बुद्धि (अनित्य ज्ञान), सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार नौ विशेष गुण रहते हैं। 'क्षिति, अङ्कुर सकर्तृक हैं, कार्य होने से'', इस अनुमान द्वारा पृथिवी सकर्तृक है (पृथिवी का कोई कर्त्ता है), यह सिद्ध होता है। और वह कर्त्ता कौन है, यह जिज्ञासा में परिशेषानुमान से ईश्वर की सिद्धि होती है।

## 11.7.9 मन

'सुखाद्युपलब्धिसाधनम् इन्द्रियं मनः''। सुख, दुःख, ज्ञान, इच्छा इत्यादि की उपलब्धि में जो साधन है, वह इन्द्रिय मन है। चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियाँ हैं। मन तो आन्तरिक इन्द्रिय है। और वह प्रत्येक पुरूष (व्यक्ति) में भिन्न, अणु परिमाण और नित्य होता है। युगपत् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है, और उससे मन का अणु परिमाण सिद्ध होता है। और ज्ञान रूप कार्य की उत्पत्ति में आरम्भ में आत्मा मन से संयुक्त होता है, वह मन इन्द्रिय द्वारा (चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय द्वारा) संयुक्त होता है और वह इन्द्रिय अर्थ द्वारा संयुक्त होता है। उसके बाद ही किसी भी पुरूष का ज्ञान उत्पन्न होता है। यही ज्ञानोत्पत्ति का क्रम है। क्योंकि सुषुप्ति काल में अणु परिमाण मन पूरीतत नाड़ी में प्रवेश करता है। उससे सुषुप्ति में आत्मा मन के साथ तथा मन इन्द्रिय के साथ संयुक्त नहीं होता है। और उसके कारण सुषुप्ति में ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। मन के आठ सामान्य गुण होते हैं। और वे संख्या, परिमाणा, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार है।

## पाठगत प्रश्न 11.3

टिप्पणी

1. वैशेषिक दर्शन में कितने पदार्थ स्वीकृत हैं?
2. वैशेषिक दर्शन के सात पदार्थ क्या हैं?
3. द्रव्य लक्षण क्या है?
4. भाव कार्यमात्र का समवायिकारण क्या है?
5. द्रव्य कितने हैं? उनके नाम लिखें।
6. पृथिवी का विशेष गुण क्या है?
7. 'पाक' शब्द का अर्थ क्या है?
8. पृथिवी के सामान्य गुण कितने हैं?
9. आप (जल) में किस प्रकार का स्पर्श विद्यमान है?
10. तेज में किस प्रकार का स्पर्श विद्यमान है?
11. तेज कितने प्रकार का है?
12. आकरज तेजस का उदाहरण दें।
13. तैजस-इन्द्रिय क्या है?
14. वायु का लक्षण क्या है?
15. प्राण वायु कौन-सी है?
16. उपाधि के भेद से वायु कितने प्रकार का है?
17. नित्य वायु क्या है?
18. आकाश का विशेष गुण क्या है
19. आकाश का वैशिष्ट्य क्या है?
20. आकाश की सिद्धि कैसे होती है?
21. जगत का आधार क्या है?
22. काल के सामान्य गुण क्या हैं?
23. काल कार्यमात्र का किस प्रकार कारण होता है?
24. दिशा का परिमाण क्या है?

25. आत्मा का लक्षण क्या है?

26. आत्मा कितने प्रकार का है?

27. नित्य ज्ञान जीवात्मा का गुण है अथवा परमात्मा का है?

28. जीवात्मा के विशेष गुण क्या है?

29. मनस् का क्या लक्षण है?

30. मन का परिमाण किस प्रकार का है?

31. सुषुप्तिकाल में मन कहाँ प्रवेश करता है?

## 11.8 गुण

'द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः' (द्रव्य, कर्म से भिन्न होने पर सामान्य से युक्त गुण है।) जो न द्रव्य है अथवा न कर्म है किन्तु सामान्यवान् है, वह पदार्थ गुण है। गुणत्व जाति से युक्त गुण है। वस्तुतः सामान्य केवल द्रव्य, गुण, कर्म वृत्तियों वाला होता है। अतः जो सामान्यवान् पदार्थ द्रव्य, कर्म से भिन्न है, वह गुण होता है। और वे गुण द्रव्य पर आश्रित असमवायिकारण स्वरूप होता है। वैशेषिक मत में सम्पूर्ण गुण चौबीस प्रकार के हैं। और वे हैं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार।

### 11.8.1 रूप

चक्षु मात्र ग्राह्य विशेष गुण रूप है। वह भी शुक्ल-नील-पीत-रक्त (लाल)-हरित-कपिश-चित्र भेद से सात प्रकार का है। रूप पृथिवी आदि पदार्थों में तीन वृत्तियों वाला है। पृथिवी में पाकज रूप, और जल, तेज में अपाकज होता है।

### 11.8.2 रस

रसना इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य विशेष गुण रस है। रस छः प्रकार का है- मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त। वह पृथिवी, जल वृत्ति युक्त है। पृथिवी में पाकज छः रस हैं। जल में अपाकज मधुर ही रस होता है। गुड़, शर्करा आदि रस हैं। चिञ्च आदि रस अम्ल हैं। मरीच, मर्मिका, शुण्ठय आदि रस कटु हैं। सेन्धव आदि लवण रस लवण हैं। जम्बू हरीतक्य आदि रस कषाय हैं। निम्ब-कारवेल्ल आदि रस तिक्त हैं।

टिप्पणी

### 11.8.3 गन्ध

घ्राण द्वारा ग्राह्य विशेष गुण गन्ध है। वह दो प्रकार का है- सुरभि और असुरभि। गन्ध पृथिवीमात्र वृत्ति है अर्थात् पृथिवी मात्र में रहता है। जल आदि में जो गन्ध का अनुभव होता है, वह पृथिवी का ही है, जल आदि का नहीं।

### 11.8.4 स्पर्श

त्वक् इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य विशेष गुण 'स्पर्श' है। और वह तीन प्रकार का है- शीत, उष्ण तथा अनुष्णाशीत। स्पर्श पृथिवी आदि चतुष्ट्य वृत्ति युक्त है। शीतस्पर्श जल में, उष्णस्पर्श तेज में, और अनुष्ण शीत स्पर्श पृथिवी-वायु में है।

### 11.8.5 संख्या

'एकत्वादिव्यवहारहेतुः सामान्यगुणः' (अर्थात् एकत्व आदि व्यवहार का हेतु सामान्य गुण (संख्या) है।' एक, दो, इत्यादि संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग का हेतु संख्या है। सभी द्रव्यों में रहता है, अतः संख्या सामान्य गुण है। संख्या नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है। अर्थात् आकाश, काल इत्यादि नित्य द्रव्यों की संख्या नित्य तथा अनित्य घट आदि की संख्या अनित्य है। वह एकत्व आदि परार्ध पर्यन्त है। द्वित्व आदि सर्वत्र अनित्य ही है।

### 11.8.6 परिमाण

मान के व्यवहार का असाधारण कारण परिमाण है। परिमाण नव द्रव्यों में रहने वाला सामान्य गुण है। वह चार प्रकार का है - अणु, महत्, ह्रस्व और दीर्घ। पृथिवी आदि के परमाणुओं और मनस का अणु परिमाण है। महत् परिमाण दो प्रकार का है - मध्यम महत् और परम महत्। अनित्य द्रव्यों का मध्यम महत् परिमाण होता है, आकाश, काल, दिक् और आत्मा, इन नित्य द्रव्यों का परम महत् परिमाण होता है। ह्रस्वत्व परिमाण विशिष्ट ह्रस्व और दीर्घत्व परिमाण विशिष्ट दीर्घ है।

### 11.8.7 पृथक्त्व

'यह इससे पृथक् है' इत्यादि में पृथक शब्द के प्रयोग का असाधारण कारण पृथक्त्व है। यह सभी द्रव्यों में रहता है। यह सामान्य गुण है।

टिप्पणी



## 11.8.8 संयोग

'संयुक्त व्यवहार का हेतु संयोग है'। 'ये दोनो संयुक्त हैं' इत्यादि में संयुक्त शब्द के प्रयोग का जो हेतु है, वह संयोग है। संयोग दो प्रकार का है- कर्मज और संयोगज। कर्मज भी दो प्रकार का है- अन्यतरकर्मज और उभायकर्मज। क्रिया द्वारा हाथ और पुस्तक का संयोग अन्यतरकर्मज है। उस संयोग के द्वारा उत्पन्न शरीर-पुस्तक का संयोग संयोगज है। करमर्दन काल में दोनों हाथों की क्रिया द्वारा दोनों हाथों का संयोग उभयकर्मज है। युद्धमान दो मेषों (बैल) का संयोग उभयकर्मज है। और वह संयोग सभी द्रव्यों में रहने वाला सामान्य गुण है। संयोग जिस अधिकरण में होता है, उस अधिकरण में उसका अत्यन्ताभाव भी होता है। अतः संयोग को अव्याप्यवृत्ति भी कहते हैं।

## 11.8.9 विभाग

विभक्त व्यवहार का हेतु विभाग है। 'ये दोनों विभक्त हैं, इस उपलब्ध उदाहरण में असाधारण कारण विभाग है। और वे संयोगनाशक सभी द्रव्यों में रहने वाला सामान्य गुण है। विभाग दो प्रकार का है- कर्म और विभागज। कर्मज भी दो प्रकार का है - अन्यतरकर्मज और उभयकर्मज। हस्तक्रिया के द्वारा हस्त-पुस्तक का विभाग अन्यतरकर्मज है, और काय-पुस्तक का विभाग विभागज है। अपनी क्रियाओं का और मल्लयोद्धाओं का विभाग उभयकर्मज विभाग है।

## 11.8.10 परत्व

## 11.8.11 अपरत्व

पर और अपर शब्दों के व्यवहार का असाधारण कारण परत्व और अपरत्व है। ये दो गुण पृथिवी आदि और मन में होते हैं। परत्व और अपरत्व दो प्रकार दिक्कृत और कालकृत में हैं। दूरस्थ दिक्कृत ज्येष्ठ में और कालकृत परत्व होता है। समीपस्थ में दिक्कृत कनिष्ठ में और कालकृत अपरत्व रहता है। कालकृत परत्व-अपरत्व जन्य में ही होते हैं। दिक्कृत परत्व-अपरत्व में मूर्त में ही होते है।

## 11.8.12 गुरूत्व

पृथिवी आदि के आद्यपतन का असमवायिकारण गुरूत्व है। वह पृथिवी और जल में रहने वाला गुण है।

टिप्पणी

## 11.8.13 द्रवत्व

पृथिवी के आद्य स्यन्दन का असमवायिकारण द्रवत्व है। वह पृथिवी, तेज, जल में रहने वाला गुण है। द्रवत्व दो प्रकार का है सांसिद्धिक और नैमित्तिक है। जल में सांसिद्धिक द्रवत्व और पृथिवी-तेज में नैमित्तिक द्रवत्व होता है।

## 11.8.14 स्नेह

''चूर्णादिपिण्डीभावहेतुः गुणः स्नेहः''। जिस गुण के द्वारा चूर्ण पिण्डीभूत होता है, वह स्नेह है। वह केवल जल में रहता है।

## 11.8.15 शब्द

''श्रोत्र के द्वारा ग्राह्य गुण 'शब्द' है। और वह आकाश का विशेष गुण है। शब्द दो प्रकार का है- ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। पहला भेरी आदि में, और द्वितीय संस्कृत भाषा आदि स्वरूप है। उत्पत्ति के भेद से ध्वन्यात्मक शब्द तीन प्रकार का है - संयोगज, विभागज और शब्दज। भेरी-दण्ड संयोग से उत्पन्न शब्द संयोगज है। अंगुली-तन्त्री के विभाग से उत्पन्न विभागज है। वंश पाव्यमान में उत्पन्न शब्द विभागज है। भेरी आदि देश आरम्भ होकर श्रोत्र पर्यन्त द्वितीय आदि शब्द शब्दज हैं। वैशेषिक मत में शब्द अनित्य है। एक उत्पन्न शब्द अन्य शब्द को उत्पन्न कर नष्ट हो जाता है। भेरी देश में उत्पन्न शब्द वीचीतरंग न्याय अथवा कदम्बकोरक न्याय द्वारा शब्दान्तर को उत्पन्न करता है। और वह शब्द शब्दान्तर क्रम से श्रोत्रदेश में उत्पन्न अन्त्य शब्द श्रोत्र द्वारा ग्रहण होता है। और उससे शब्द का प्रत्यक्ष होता है। कर्णशष्कुली अवच्छिन्न नभ श्रोत्र है।

## 11.8.16 बुद्धि

सभी शब्दों का प्रयोग जिस कारण से होता है, वह कारण बुद्धि ज्ञान है। जिससे वस्तु का अर्थ प्रकाश होता है, वह बुद्धि है। यह बुद्धि ही आत्मा का विशेष गुण है। बुद्धि आदि संस्कारान्त आत्मा के विशेष गुण हैं। बुद्धि जीवात्मा में अनित्य और परमात्मा में नित्य है। बुद्धि दो प्रकार की है- स्मृति और अनुभव। बाह्य इन्द्रिय द्वारा अजन्य भावना संस्कार से उत्पन्न बुद्धि स्मृति है। स्मृति से भिन्न बुद्धि अनुभव है। यथार्थ और अयथार्थ के भेद से वह अनुभव भी दो प्रकार का है। तत्प्रकारक अनुभव यथार्थ है। अर्थात् जिसका जो प्रकार हैं, उसमें वही प्रकार गृहीत हो, ऐसा वह ज्ञान यथार्थ है। यथा घट का घटत्व प्रकार। उस घट में घत्व प्रकारत्व से गृहीत हो, वह यथार्थ अनुभव है। 'तदभाववति तत्प्रकारकः अनुभवः अयथार्थः'। अर्थात् जिसका जो प्रकार नहीं है, उसमें ही वह प्रकार गृहीत हो तो वह अनुभव अयथार्थ होता है। यथार्थ अनुभव प्रमा ही कहलाता है। अयथार्थानुभव

अप्रमा कहलाता है। वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमिति दो प्रमा स्वीकृत हैं। यहाँ उपमिति इत्यादि का पृथक् प्रमात्व स्वीकार नहीं है, अनुमिति प्रमा के अन्तर्गत होने के कारण।

## 11.8.17 सुख

प्रीति सुख है। सभी जीवात्माओं के लिए अनुकूलत्व जानना चाहिए। और वह जीवात्मा का विशेष गुण है। जो इच्छा इत्तर इच्छा के अधीन नहीं है, उसका विषय सुख होता है। मिष्टान्न (मिठाई) की इच्छा होती है तो खरीदने हेतु धन की इच्छा होती है। यहाँ मिठाई की इच्छा पर धन की इच्छा अधीन है।

## 11.8.18 दु:ख

पीड़ा दु:ख है। सभी जीवात्माओं के लिए प्रतिकूलत्व जानना चाहिए। यह भी जीवात्मा का विशेष गुण है। जो द्वेष इतर द्वेष के अधीन नहीं है, उसका विषय दु:ख होता है।

## 11.8.19 इच्छा

इच्छा काम है। वह जीवात्मा और परमात्मा का विशेष गुण है। जीव की इच्छा अनित्य और ईश्वर की नित्य होती है।

## 11.8.20 द्वेष

क्रोध द्वेष है। वह जीवात्मा का विशेष गुण है।

## 11.8.21 प्रयत्न

प्रयत्न कृति है। वह आत्मा का विशेष गुण है। प्रयत्न के तीन प्रकार हैं- प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। बुद्धि आदि प्रयत्न के छः गुण मानस प्रत्यक्ष हैं।

## 11.8.22 धर्म

## 11.8.23 अधर्म

सुख, दु:ख के असाधारण कारण में यथाक्रम धर्म और अधर्म है। सुख का हेतु

टिप्पणी

धर्म और दु:ख का हेतु अधर्म है। वेद तथा उसके अनुकूल शास्त्र विहित कर्म जन्य धर्म है, वेद आदि निषिद्ध कर्मजन्य अधर्म है। धर्म और अधर्म अनुमानगम्य (अथवा आगम गम्य) हैं, प्रत्यक्ष नहीं। जो भोगार्थ शरीर आदि जनक आत्मविशेष गुण है, वह धर्म और अधर्म है।

## 11.8.24 संस्कार

संस्कारव्यवहारसाधारणं कारणं संस्कार:। जिस कारण से 'संस्कार' शब्द का प्रयोग होता है, वह कारण संस्कार नामक गुण है। वह त्रिविध है- वेग, भावना और स्थितिस्थापक।

**वेग**- वेग क्रिया हेतु पृथिवी आदि चारों भूतों तथा मन में विद्यमान रहता है। अर्थात् मूर्तद्रव्यवृत्ति।

**भावना** - अपेक्षा, बुद्धि द्वारा जब अनुभव होता है, वह अनुभव आत्मा में संस्कार उत्पन्न करता है।

वह संस्कार भावना कहलाता है। यही भावना है तो स्मृति होती है, अन्यथा नहीं। भावना नामक संस्कार अनुभव से उत्पन्न स्मृति हेतु आत्मा मात्र में रहता है। अनुभव से उत्पन्न जो भावना संस्कार है वह उद्बोधक की सहायता से उद्बुद्ध होकर स्मृति को उत्पन्न करता है। सहकारी संस्कार के सदृश दर्शन आदि हैं। जैसे पूर्व में देवदत्त के साथ साक्षत्कार हुआ। वह देवदत्त विषयक अनुभव है। यह अनुभव अपेक्षा बुद्धि के कारण आत्मा में संस्कार को उत्पन्न करता है। उसके बाद देवदत्त के सदृश्य किसी पुरूष के दर्शन से देवदत्त विषयी स्मृति उत्पन्न होती है। देवदत्त सदृश पुरूष का दर्शन यहाँ उद्बोधक है।

**स्थितिस्थापक**- अन्यथा कृत का पुन: उसी अवस्था में स्थापन होना स्थिति स्थापक है। और वह कट आदि पृथिवी में रहता है। वृक्ष की शाखा आदि मोड़कर मुक्त कर दिये जाने पर पुन: पूर्व अवस्था में चली जाती है, स्थितिस्थापक गुण के कारण।

## पाठगत प्रश्न 11.4

1. गुण का लक्षण क्या है?
2. वैशेषक मत में गुण कितने प्रकार के हैं?
3. रस कितने प्रकार का है?
4. स्पर्श कितने प्रकार का है?
5. गन्ध किस इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होता है?
6. परिमाण कितने प्रकार का है?

7. संयोग कितने प्रकार का है?
8. उभयकर्मज विभाग का एक उदाहरण दें।
9. द्रवत्व कितने प्रकार का है?
10. स्नेह किस द्रव्य का गुण है?
11. शब्द किस न्याय से शब्दान्तर बनता है?
12. बुद्धि कितने प्रकार की है?
13. स्मृति क्या है?
14. अनुभव कितने प्रकार का है?
15. वैशेषिक दर्शन में प्रमा कितने प्रकार की है?
16. अनुभव क्या है?
17. प्रयत्न कितने प्रकार का है?
18. संस्कार कितने प्रकार का है?
19. वेग नामक संस्कार कहाँ रहता है?

## 11.9 कर्म

संयोग से भिन्न होने पर भी संयोग का असमवायिकारण कर्म है। संयोग भिन्न संयोग का असमवायिकारण कर्म है अथवा कर्मत्व जाति से युक्त कर्म है। कर्म द्रव्य मात्र में होता है। वह पाँच प्रकार का है- उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। यहाँ यह पाँच प्रकार के कर्म, वही क्रिया है, कर्ता के द्वारा इप्सित कर्म नहीं। अथवा वेदान्त द्वार उक्त नित्य, नैमित्तिक आदि कर्म नहीं।

1. **उत्क्षेपण** - द्रव्य के उर्द्ध द्वारा संयोग का कारण जो कर्म है, वह उत्क्षेपण है।
2. **अपक्षेपण** - द्रव्य के अधोदेश द्वारा संयोग का कारण जो कर्म है, वह अपक्षेपण है।
3. **आकुञ्चन** - द्रव्य के सन्निकृष्ट संयोग का कारण जो कर्म है, वह आकुञ्चन है।
4. **प्रसारण** - द्रव्य के विप्रकृष्ट संयोग का कारण जो कर्म है, वह प्रसारण है।
5. **गमन** - पूर्वोक्त उत्क्षेपण आदि नियत दिक्-देश संयोग जनक कर्म है। गमन तो अनियत दिग्-देश संयोग जनक कर्म है। अर्थात् उत्क्षेपण आदि कर्म नियत से नियत

टिप्पणी

उर्द्ध आदि में दी गई स्थिति तथा देश के साथ द्रव्य के संयोग में हेतु होता है। किन्तु गमन में उस प्रकार का नियम नहीं है। गमन अनिर्दिष्ट दिशा में स्थिति, देश के साथ द्रव्य के संयोग में हेतु होता है। अतः भ्रमण आदि अन्य सभी कर्म गमन है।

## 11.10 सामान्य

'नित्यम् एकम् अनेकानुगतं सामान्यम्'। 'यह गाय है', इस अनुगत प्रत्यय के कारण गोत्व आदि धर्म सामान्य कहलाता है। सामान्य छिन्नों में भी अच्छिन्न है। अतः वह नित्य कहलाता है। वह भिन्न व्यक्तियों में भी एक अभिन्न है। एकाधिकों में युगमपत् होता है, वह अनेक में समवेत होकर रहता है, यह अर्थ है। और वह सामान्य स्वयं के आश्रय में समवाय सम्बन्ध से होता है। सामान्य पर और अपर भेद से दो प्रकार का है। जिन दोनों सामान्य का कोई भी समान अधिकरण होता है, उनका ही पर-अपर विचार प्रसारण होता है। पर अधिक देशवृत्ति है और सत्ता का न्यून देशवृत्ति है अर्थात् न्यून देश में रहता है। अतः एक से पर और अपर (अन्य) से अपर है। सामान्य में सामान्य नहीं रहता है, अनवस्था के प्रसन्न के कारण। सामान्य ही जाति भी कहलाता है। द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों को व्यक्ति भी कहा जाता है। जाति व्यक्ति में समवाय से होता है।

### 11.10.1 जातिबाधक

बाधक की अनुपस्थिति होने पर अनुगत धर्म जाति होता है। जहाँ बाधक विद्यमान है वहाँ अनुगत धर्म उपाधि हो। यथा अभावत्व। उसी प्रकार जातिबाधक छः हैं - व्यक्ति का भेद, तुल्यत्व, शंकर, अनवस्था, रूपहानि और असम्बन्ध। कारिका है-

**''व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं संकरोथानवस्थितिः।**
**रूपहानिरसंबन्धो जाति बाधकसंग्रहः॥'' (किरणावली, उदयनाचार्य)**

## 11.11 विशेष

''नित्यद्रव्यवृत्तयः व्यावर्तकाः विशेषाः''। व्यावर्तक भेदक विशेष हैं। सावयव द्रव्यों से सावयव द्रव्य अवयव आदि भेद से भिन्न होते हैं। यथा घट घटान्तर से भिन्न होता है, उसके अवयव कपाल का भेद होने के कारण। किन्तु निरवयवों नित्य द्रव्यों से निरवयव नित्य द्रव्य कैसे भिन्न होता है। उसमें कहते है विशेष पदार्थ भेद द्वारा निरवयव, नित्य द्रव्य नित्यद्रव्यान्तर से भिन्न होता है। विशेष नित्य द्रव्य वृत्तियाँ हैं। पृथिवी आदि द्रव्य चतुष्ट्य के परमाणु नित्य हैं। आकाश आदि पञ्चक भी नित्य हैं। अतः पृथिवी आदि के परमाणुओं में आकाश आदि पाँच द्रव्यों में विशेष होते हैं। उसके द्वारा विशेष अनन्त हैं। और वह

विशेष पदार्थ भेद बुद्धि मात्र हेतु वैशेषिक दर्शन का विशेष है। प्रलय काल में पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय परमाणु पृथिवीत्व आदि के भेद से भिन्न होते हैं। किन्तु समान जाति के पार्थिव परमाणुओं का परस्पर भेदक कोई धर्म नहीं रहता है। उससे उस भेद ज्ञान के लिए पार्थिक आदि परमाणुओं में व्यावर्तक धर्म 'विशेष' स्वीकार किया जाता है। शब्द समवायिकारणता अवच्छेदक द्वारा आकाश में विशेष स्वीकार किया जाता हैं और प्रलय काल में गुणों के लोप में दिक्-काल के भेद ज्ञान के लिए उनका भी विशेष स्वीकृत है। मुक्त अवस्था में आत्मा के भेद ज्ञानार्थ और आत्मा का स्वयं भी विशेष पदार्थ स्वीकृत है।

## 11.12 समवाय

'नित्य सम्बन्धः समवायः;। जो सम्बन्ध नित्य है, वह समवाय हैं। और वह सम्बन्ध अयुतसिद्ध पदार्थों में रहता है। जो मिश्रित हों, वे अयुतसिद्ध रूप में सिद्ध हैं। यथा तन्तु-पट मिलकर, तो दोनों भी सिद्ध हैं। यदि न मिलें तो तन्तु सिद्ध है, पट तो नष्ट हो जाता है। कहा गया है ''ययोः द्वयोः मध्ये एकम् अविनश्यद् अपराश्रितम् एव अवतिष्ठते तौ अयुतसिद्धौ''। अमिश्रणार्थक युधातु का क्त प्रत्यय में निष्पन्न युत शब्द असम्बद्ध का वाचक है। युतसिद्ध, असम्बद्ध भी सिद्ध है। असम्बद्धसिद्ध जो नहीं होता है वह अयुतसिद्ध है। अयुतसिद्ध अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान, जाति-व्यक्ति और विशेष-नित्य द्रव्य, ये पाँच है। अतः अयुतसिद्धों का सम्बन्ध समवाय है। और इसके द्वारा समवाय का आश्रय जाना जाता है। समवाय एक भी उपाधि भेद से अनेक प्रकार का है। जो समवाय द्वारा विद्यमान होता है, उसे समवेत कहा जाता है। जिसमें समवाय द्वारा विद्यमान रहता है, वह समवायी कहलाता है।

## 11.13 संयोग-समवाय का भेद

| क्र.सं. | संयोग | समवाय |
|---|---|---|
| 1. | संयोग युतसिद्धों में ही होता है | समवाय अयुतसिद्धों में ही होता है |
| 2. | संयोग गुण विशेष है | समवाय पदार्थ विशेष है, गुण नहीं |
| 3. | संयोग अनित्य और बहुत प्रकार का है | समवाय नित्य और एक है |
| 4. | संयोग सर्वदा वृत्तिनियामक नहीं होता है। संयोग के दोनों सम्बन्धी सर्वदा रूप आधार-आधेय रूप में प्रतीत नहीं होते हैं | समवाय सर्वदा वृत्ति नियामक होता है। समवाय के दोनों सम्बन्धी सर्वदा आधार-आधेय के में प्रतीत होते हैं। |

टिप्पणी

| | | |
|---|---|---|
| 5. | संयोग सर्वदा द्रव्यों के मध्य में होता है | समवाय सर्वदा द्रव्यों के मध्य में नहीं होता है। यथा द्रव्य-गुण घट-घटरूप का सम्बन्ध |
| 6. | एक द्रव्य एकाधिक द्रव्यों में एककाल में संयोग द्वारा रह सकता है। यहाँ प्रत्येक द्रव्य संयोग भिन्न होता है। | समवाय का एक प्रतियोगी में एकाधिक अनुयोगियों में एक समय पर समवाय द्वारा रह सकता है। यहाँ एक का बहुत के साथ समवाय एक ही है। |
| 7. | संयोग अव्याप्यवृत्ति है। | समवाय व्याप्यवृत्ति है। |

## 11.14 अभाव

वैशेषिक दर्शन में पदार्थ दो प्रकार के हैं- भाव पदार्थ और अभाव पदार्थ। भाव द्रव्य आदि छः हैं। अभाव 'घट' नहीं है, 'पट' नहीं है, इत्यादि निषेध ज्ञान का विषय है। अभाव का कोई भी निर्दिष्ट लक्षण नहीं है। अभावत्व उपाधि जिसमें होती है, वह अभाव है, अथवा भाव से भिन्न अभाव है, ऐसा कह सकते हैं। अभाव स्वरूप सम्बन्ध से उसके अधिकरण में रहता है। जिसका अभाव है, वह प्रतियोगी कहलाता है। यथा भूतल पर घटाभाव है, यहाँ भूतल पर घट का अभाव स्वरूप रहता है। और घट घटाभाव का प्रतियोगी है।

अभाव दो प्रकार का है- संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। संसर्गाभाव पुनः तीन प्रकार का है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। अतः सकल रूप में अभाव चार हैं।

1. **प्रागभाव**- 'अनादि सान्त प्रागभावः। कार्य की उत्पत्ति के प्राक् (पहले) जो अभाव होता है, वह प्रागभाव है। यथा किसी घट की उत्पत्ति के पूर्व उस घट का अभाव प्रागभाव है। और उस अभाव की उत्पत्ति नहीं है किन्तु अन्त है। घट की उत्पत्ति से पूर्व 'इह कपाले घटो भविष्यति' (यहाँ कपाल में घट होगा) ऐसी जो प्रतीति उत्पन्न होती है, उस प्रतीति के द्वारा विषयीकृत अभाव प्रागभाव होता है। यह प्रतियोगी का जनक है।

2. **प्रध्वंसाभाव**- ''सादि अनन्त प्रध्वंसः''। कार्य के विनाश के पश्चात् उस कार्य का जो अभाव उस अधिकरण में प्रतीत होता है, वह प्रध्वंसाभाव है। यथा दण्ड द्वारा घट के नाश होने के पश्चात् उस घट का अभाव प्रध्वंसाभाव है। प्रध्वंसाभाव की उत्पत्ति होती है किन्तु अन्त नहीं होता। यह अभाव 'घट ध्वस्त है' इस प्रतीति के द्वारा विषयीकृत होता है। यह अभाव प्रतियोगी जन्य है।

3. **अत्यन्ताभाव** - ''त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकः अत्यन्ताभावः''। जो अभाव त्रैकालिक है अर्थात् नित्य है, वह अत्यन्ताभाव है। अतीत, वर्तमान और भविष्यत्,

तीन काल हैं। तीनों कालों में विद्यमान अत्यन्ताभाव है। यथा 'वायु में रूपाभाव'। और भी जहाँ कहीं भी भूतल आदि में घट आदि की अवर्तमानत्व दशा में 'इह भूतले घटो नास्ति', यह कारिका जो प्रतीति उत्पन्न करती है, उस प्रतीति के द्वारा विषयीकृत अभाव अत्यन्ताभाव कहलाता है।

4. **अन्योन्याभाव**- ''तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः अन्योन्याभावः''। तादात्म्य सम्बन्ध द्वारा पदार्थ नहीं होगा तो उसके अभाव के प्रतियोगी में विद्यमान प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध द्वारा अवच्छिन्न होती है। तादात्म्य सम्बन्ध अभेद सम्बन्ध है। 'घटः पटः न भवति', यहाँ घट में पट अभेद सम्बन्ध से नहीं होता है। अतः यह अन्योन्याभव है। वस्तुतः किसी भी पदार्थ का जो निषेध (अभाव) है, वह अन्योन्याभाव है। अर्थात् अभाव की प्रतियोगिता यदि तादात्म्य सम्बन्ध अवच्छिन्न होती है, तब उसके समान अभाव अन्योन्याभाव कहलाता है। 'घट पट नहीं होता', यहाँ घट में तादात्म्य से पट निषिद्ध है। उसके द्वारा पटाभाव प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध अवच्छिन्न होती है। अतः यह अन्योन्याभाव है। यह अन्योन्याभाव भी नित्य है। सामान्यतः घट नहीं है, इस रूप में प्रकट होता है। अन्योन्याभाव भेद भी समाख्यात है।

## पाठगत प्रश्न 11.5

1. कर्म का लक्षण क्या है?
2. कर्म कितने प्रकार का है?
3. गमन किस प्रकार का कर्म है?
4. अपक्षेपण क्या है?
5. प्रसारण क्या है?
6. सामान्य का लक्षण क्या है?
7. सामान्य किस सम्बन्ध से होता है?
8. सामान्य कितने प्रकार का है?
9. सत्ता किस प्रकार का सामान्य है?
10. सामान्य में कैसा सामान्य स्वीकार नहीं किया जाता?
11. जाति बाधक कितने प्रकार के हैं?
12. जाति बाधकों के नाम लिखिए?
13. आकाशत्व जाति कैसे नहीं है?

टिप्पणी

14. भूतत्व जाति कैसे नहीं है?
15. विशेष में विशेषत्व 'जाति स्वीकार करने में क्या दोष है?
16. समवाय में कैसे समवायत्व जाति स्वीकार नहीं किया जाता?
17. विशेष पदार्थ क्या है?
18. विशेष कहाँ रहते हैं?
19. पार्थिव आदि परमाणुओं में कैसे विशेष स्वीकृत हैं?
20. आकाश में कैसा विशेष स्वीकृत है?
21. आत्माओं में कैसे विशेष स्वीकृत है?
22. समवाय क्या है?
23. अयुतसिद्ध शब्द का अर्थ क्या है?
24. अयुतसिद्ध पदार्थ क्या है?
25. संयोग-समवाय के दो भेद लिखें।
26. प्रतियोगी क्या है?
27. अभाव कितने प्रकार का है?
28. प्रागभाव क्या है?
29. प्रध्वंसाभाव क्या है?
30. 'वायु में रूपाभाव है', यहाँ किस प्रकार का अभाव है?
31. 'घट पट नहीं होता', यहाँ किस प्रकार का अभाव है?
32. अन्योन्याभाव क्या है?

## 11.15 प्रमाण तत्व

वैशेषिक दर्शन में प्रमाण दो हैं- प्रत्यक्ष और अनुमान। वैशेषिक मत में 'सभी पदार्थों में सन्निकर्ष से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह प्रत्यक्ष है। 'अक्षम् अक्षं प्रतीत्य यत् ज्ञानं जायते तत् प्रत्यक्षं वा'। अक्ष इन्द्रियाँ छः हैं- चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक्, श्रोत्र और मन। और प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँ इन्द्रिय है। प्रत्यक्ष सर्वज्ञीय और असर्वज्ञीय के भेद से दो प्रकार का है। असर्वज्ञीय प्रत्यक्ष पुनः दो प्रकार का है- सविकल्पक और निर्विकल्पक।

लिङ्ग दर्शन से होने वाला ज्ञान लैङ्गिक है। वह लैङ्गिक ज्ञान अनुमिति है। व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्म लिङ्ग है। और लिङ्ग अनुमापक है। भाष्य में उक्त है-

टिप्पणी

**यदनुमेयेन सम्बद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।**
**तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमानकम्॥**

यहाँ 'यद', पद द्वारा हेतु अथवा लिङ्ग का बोध होता है, और 'तत्' पद द्वारा साध्य का। वैशेषिक मत में लिङ्ग का दर्शन ही अनुमान प्रमाण है। और वह अनुमान दो प्रकार का है - दृष्ट और सामान्यतो दृष्ट। प्रसिद्ध साध्यों के अत्यन्त जाति भेद में दृष्ट अनुमान है। यथा गाय में सास्नामात्र (गलकंबल) उपलब्ध होने पर देशान्तर में सास्नामात्र के दर्शन से गाय की प्रतिपत्ति होती है। प्रसिद्ध साध्यों के अत्यन्त जाति भेद में सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। यथा किसान, वाणिक् आदि पुरूषों की प्रवृत्ति के लिए फलवत्व उपलब्ध होने रूप दृष्ट प्रयोजन को अनुद्देश्य करके प्रवर्तमान वर्ण श्रमिकों का भी फलानुमान किया जाना।

इस मत में शब्द का तथा उपमान का पृथक् प्रामाण्य नहीं है, उनका अनुमान में ही अन्तर्भाव सम्भव होने से। और भाषा परिच्छेद में उक्त है-

**शब्दोपमानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमिष्यते।**
**अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिक मतम्॥**

## 11.16 परमाणुवाद (चारों भूतों के उत्पत्ति नाश का क्रम)

वैशेषिक मत में पृथिवी, जल (आप), तेज (अग्नि) और वायु, इन चारों द्रव्यों के परमाणु नित्य हैं। उन परमाणुओं के द्वारा कार्यरूप स्थूल पृथिवी आदि उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में उनके परमाणु निष्क्रिय रहते हैं। और वे अतीन्द्रियाँ नित्य और अणुपरिमाण युक्त हैं। ईश्वर के ज्ञान से इच्छा, इच्छा से प्रयत्न (और) प्रयत्न से निष्क्रिय परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होती है। और वहाँ वे दो परमाणुओं का संयोग होने पर अनित्य, कार्यरूप अणु परिमाण द्वयणुक उत्पन्न होता है। तीन द्वयणुकों के संयोग होने पर त्रयणुक, चार त्रयणुकों द्वारा चतुरणुक होता है। और इसी क्रम से स्थूल से स्थूलतर पृथिवी आदि उत्पन्न होते हैं। और उससे महत् पृथिवी, महत् आप (जल), महत् तेज और महत् वायु होते हैं। त्रयणुक आदि सभी महत् परिमाण से युक्त है। और पुनः ईश्वर की इच्छा वश परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होती है। और उस क्रिया द्वारा दो परमाणुओं के संयोग-नाश से द्वयणुक नाश होता है। और उसके द्वारा त्रयणुक आदि के नाश के क्रम से महापृथिवी आदि का नाश होता है। प्राचीन मत में असवायिकारण के नाश से (परमाणुद्वय के संयोग नाश से) द्वयणुकनाश तथा समवायिकारण के नाश से (द्वयणुाकद्वय के नाश से) त्रयणुक नाश होता है। नवीन मत में तो सभी जगह ही असमवायिकारण के नाश से द्वयणुक आदि कार्यों का नाश होता है।

1. अतीन्द्रिय नित्य निष्क्रिय परमाणु
2. ईश्वर की इच्छा से परमाणुओं में क्रिया

टिप्पणी

3. दो परमाणुओं के संयोग से कार्यरूप, अनित्य द्वयणुक की उत्पत्ति
4. तीन द्वयणुकां के संयोग से त्रयणुक की उत्पत्ति
5. चार त्रयणुकों के संयोग से चतुरणुक की उत्पत्ति
6. इसी क्रम द्वारा महापृथिवी आदि की उत्पत्ति

## पाठगत प्रश्न 11.6

1. वैशेषिक मत में प्रमाण कितने हैं?
2. वैशेषिक मत में प्रत्यक्ष का लक्षण क्या है?
3. इन्द्रियाँ कौन सी हैं?
4. लैङ्गिक ज्ञान क्या है?
5. वैशेषिक मत में अनुमान प्रमाण क्या है?
6. वैशेषिक मत में शब्द और अनुमान का कहाँ अन्तर्भाव होता है?
7. सृष्टि के पूर्व निष्क्रिय परमाणुओं में कैसे क्रिया उत्पन्न होती है?
8. द्वयणुक क्या है?
9. त्रयणुक का परिमाण क्या है?
10. एक चतुरणुक में कितने परमाणु रहते हैं?
11. द्वयणुक का नाश कैसे होता है?

## पाठसार

कणाद प्रणीत वैशेषिक सूत्र वैशेषिक दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ है। विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से इसकी अभिधा वैशेषिक है। वैशेषिक मत में पदार्थ सात द्रव्य आदि हैं। नौ द्रव्यों में आत्मा अन्यतम है। और वह आत्मा दो प्रकार की है - जीवात्मा और परमात्मा। परमात्मा सर्वज्ञ ईश्वर है। वैशेषिक दर्शन में दो प्रमाण स्वीकृत हैं- प्रत्यक्ष और अनुमान। उपमान्-शब्द का ग्रहण यहाँ अनुमान में ही होता है। असत्कार्यवाद, मोक्षस्वरूप इत्यादि सिद्धान्तों में उन दोनों दर्शनों का सादृश्य दिखता है। परमाणुवाद वैशेषिक सम्प्रदाय का अन्यतम विशेष सिद्धान्त है।

## पाठान्त प्रश्न

1. वैशेषिक दर्शन कैसे न्याय के समान तन्त्र है?
2. वैशेषिक दर्शन के नामकरण में किसकी मुख्य भूमिका है?
3. वैशेषिक दर्शन के सूत्रग्रन्थ का परिचय दें।
4. वैशेषिक मत में पदार्थों का उद्देश करें।
5. वैशेषिक मत में द्रव्य का परिचय दें।
6. वैशेषिक मत में पृथिवी का परिचय दें।
7. वैशेषिक मत में जल का परिचय दें।
8. वैशेषिक मत में तेज का परिचय दें।
9. वैशेषिक मत में वायु का परिचय दें।
10. वैशेषिक मत में आकाश का परिचय दें।
11. वैशेषिक मत में दिशा का परिचय दें।
12. वैशेषिक मत में आत्मा का परिचय दें।
13. वैशेषिक मत में मन का परिचय दें।
14. वैशेषिक मत में पृथिवी का परिचय दें।
15. वैशेषिक मत में परिमाण का परिचय दें।
16. वैशेषिक मत में संयोग का परिचय दें।
17. वैशेषिक मत में शब्द का परिचय दें।
18. वैशेषिक मत में बुद्धि को प्रतिपादित करें।
19. वैशेषिक मत में संस्कारों को परिचित कराएँ।
20. वैशेषिक मत में कर्मों को प्रतिपादित करें।
21. वैशेषिक मत में सामान्य को विशदीकृत करें।
22. वैशेषिक को अवलम्बित कर प्रबन्ध लिखें।
23. वैशेषिक मत में समवाय का परिचय दें।
24. संयोग और समवाय का भेद वर्णित करें।

टिप्पणी

25. वैशेषिक मत में अभाव का प्रतिपादन करें।

26. वैशेषिक मत में स्वीकृत प्रमाणों का परिचय दें।

27. वैशेषिक मत में सृष्टि-प्रलय के क्रम का उपपादन करें।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-11.1

1. वैशेषिक दर्शन के प्रवक्ता महर्षि कणाद् हैं।
2. वैशेषिक पदार्थ और परमाणुवाद वैशेषिक दर्शन का विशेषत्व है।
3. महर्षि कणाद् के अपर दो नाम कणभूक् और कणभक्ष हैं।
4. वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन के समान तन्त्र है।
5. दोनों ही असत्कार्यवादी है, यह न्याय-वैशेषिक दर्शन का एक सादृश्य है।
6. न्याय दर्शन में चार प्रमाण हैं, वैशेषिक दर्शन में दो प्रमाण हैं, यह न्याय वैशेषिक दर्शनों का एक वैशादृश्य है।
7. इस दर्शन में विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से वैशेषिक नाम होता है।
8. वैशेषिक सूत्र का उद्भव छठी शताब्दी ईसापूर्व में हुआ।
9. वैशेषिक सूत्र में दस अध्याय हैं।
10. तत्व ज्ञान द्वारा मुक्ति वैशेषिक शास्त्र का मूल उद्देश्य है।

### उत्तर-11.2

1. प्रशस्तपाद द्वारा रचित ग्रन्थ पदार्थधर्मसंग्रह है।
2. व्योमवती व्योमशिवाचार्य की रचना है।
3. किरणावली उदयनाचार्य द्वारा विरचित है।
4. श्रीधरभट्ट ने न्यायकन्दली को रचा।
5. उपस्कारग्रन्थ शंकरमिश्र द्वारा विरचित है।
6. पद्मनाभमिश्र सेतुटीका के टीकाकार हैं।
7. विश्वनाथ आचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ भाषापरिच्छेद है।
8. अन्नम्भट्ट द्वारा प्रणीत ग्रन्थ तर्कसंग्रह है।

9. वल्लभाचार्य की रचना न्यायलीलावती है।

10. केशवमिश्र तर्कभाषा ग्रन्थ के प्रणेता है।

**उत्तर-11.3**

1. वैशेषक दर्शन में सात पदार्थ स्वीकृत हैं।

2. द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव वैशेषिक दर्शन के सात पदार्थ हैं।

3. 'क्रियागुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम्', यह द्रव्य का लक्षण है।

4. भावकार्य मात्र का समवायिकारण द्रव्य है।

5. नौ द्रव्य हैं। और वे हैं- पृथिवी, आप (जल), तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन है।

6. पृथिवी का विशेष गुण गन्ध है।

7. पाक शब्द का अर्थ तेजः संयोग है।

8. पृथिवी के सामान्य गुण संख्या आदि दस हैं।

9. आप (जल) में शीतस्पर्श विद्यमान है।

10. तेज में उष्णस्पर्श विद्यमान है।

11. तेज चार प्रकार का है।

12. आकरज तेज का उदाहरण है- स्वर्ण।

13. चक्षु तैजस इन्द्रिय है।

14. वायु अरूपस्पर्शवान् है।

15. शरीरान्तः सञ्चारी वायु प्राण है।

16. उपाधि भेद से वायु पाँच प्रकार का है।

17. परमाणु रूप वायु नित्य है।

18. आकाश का विशेष गुण शब्द है।

19. आकाश नित्य, एक और विभु है।

20. शब्द के आश्रयत्व से परिशेषानुमान के कारण आकाश की सिद्धि होती है।

21. काल जगत का आधार है।

टिप्पणी

22. संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग काल के सामान्य गुण हैं।
23. काल कार्यमात्र का निमित्त कारण होता है।
24. दिक् विभु परिमाण है।
25. ज्ञान का अधिकरण आत्मा है।
26. आत्मा दो प्रकार की है- जीवात्मा और परमात्मा।
27. नित्य ज्ञान परमात्मा का गुण है।
28. बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार जीवात्मा के विशेष गुण है।
29. सुख आदि की उपलब्धि का साधनभूत इन्द्रिय मन है।
30. मन अणु परिमाण है।
31. सुषुप्ति काल में मन पूरीतत् नाड़ी में प्रवेश करता है।

**उत्तर-11.4**

1. द्रव्य, कर्म से भिन्न होने पर भी सामान्यवान् गुण है।
2. वैशेषिक मत में चौबीस गुण हैं।
3. रस छः प्रकार के हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त है।
4. स्पर्श तीन प्रकार का है। शीत, ऊष्ण और अनुष्णाशीत।
5. गन्ध घ्राण इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होता है।
6. परिमाण चार प्रकार का है- अणु, महत् ह्रस्व और दीर्घ।
7. संयोग तीन प्रकार का है- अन्यतर, कर्मज, उभयकर्मज और संयोगज।
8. सक्रिय मल्लों का विभाग उभयकर्मज विभाग का उदाहरण है।
9. द्रवत्व दो प्रकार का है- सांसिद्धिक और नैमित्तिक।
10. स्नेह जल का गुण हैं
11. शब्द वीचीतरंग न्याय अथवा कदम्बकोरक न्याय द्वारा शब्दान्तर में बदलता है।
12. बुद्धि दो प्रकार की है- स्मृति और अनुभव।
13. केवल भावना नामक संस्कार से उत्पन्न ज्ञान स्मृति है।
14. अनुभव दो प्रकार का है- यथार्थ और अयथार्थ।

15. वैशेषिक दर्शन में प्रमा दो प्रकार की है- प्रत्यक्ष और अनुमिति।
16. स्मृति से भिन्न ज्ञान अनुभव है।
17. प्रयत्न तीन प्रकार का है- प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि।
18. संस्कार तीन प्रकार का है- भावना, वेग और स्थितिस्थापक।
19. पृथिवी आदि चार भूतों में तथा मन में वेग नामक संस्कार रहता है।

## उत्तर-11.5

1. जो संयोग से भिन्न है किन्तु संयोग का असमवायिकारण है वह कर्म है अथवा कर्मत्व जाति से युक्त है।
2. कर्म पाँच प्रकार का है। उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन।
3. गमन अनियत दिग्देश का जनक है। यथा भ्रमण आदि।
4. द्रव्य के अधोदेश संयोग का कारण अपक्षेपण है।
5. द्रव्य के विप्रकृष्ट संयोग का कारण प्रसारण है।
6. नित्य एक और अनेक में रहने वाला सामान्य है।
7. सामान्य स्वयं के आश्रय में समवाय सम्बन्ध से रहता है।
8. सामान्य दो प्रकार का है- पर और अपर।
9. सत्ता पर सामान्य है।
10. अनवस्था दोष से सामान्य में सामान्य स्वीकार नहीं होता है।
11. जातिबाधक छः प्रकार के हैं।
12. व्यक्ति का अभेद, तुल्यत्व, संकर, अनवस्था, रूपहानि, और असम्बन्ध जातिबाधक है।
13. आपने आश्रय आकाश के अभिन्न होने के कारण आकाशत्व जाति नहीं है।
14. संकर जातिबाधक के होने के कारण भूतत्व जाति नहीं है।
15. विशेष में विशेषत्व जाति स्वीकार करने पर स्वतोव्यावर्तकत्व धर्म की हानि होगी।
16. असम्बन्ध के कारण समवाय में समवायत्व जाति स्वीकार नहीं की जाती है।
17. नित्य द्रव्य वृत्तियाँ व्यावर्तक विशेष है।
18. पृथिवी आदि चारों भूतों के परमाणुओं में, और नित्य आकाश आदि पाँच द्रव्यों में विशेष रहते हैं।

टिप्पणी

19. प्रलयकाल में समान जाती पार्थिव परमाणुओं के भेदकत्व से उसमें विशेष स्वीकृत हैं।
20. शब्द की समवायिकारणता के अवच्छेदकता द्वारा आकाश में विशेष स्वीकृत है।
21. मुक्त अवस्था में आत्मा के भेद-ज्ञान के लिए आत्मा में विशेष स्वीकृत हैं।
22. समवाय नित्य सम्बन्ध है, वह अयुतसिद्धवृत्ति है।
23. जिन दोनों के मध्य में एक अविनाशी, अपराश्रित होने तक ही रहता है, वे अयुतसिद्ध हैं।
24. अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान, जाति-व्यक्ति और विशेष-नित्यद्रव्य अयुतसिद्ध पदार्थ हैं।
25. संयोग अनित्य गुण विशेष है, समवाय नित्य पदार्थ विशेष हैं, संयोग-समवाय का भेद है।
26. जिसका अभाव है, वह प्रतियोगी है। यथा घटाभाव का घट प्रतियोगी है।
27. अभाव दो प्रकार का है- संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। संसर्गाभाव तीन प्रकार का है- प्रागभाव, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव।
28. उत्पत्ति के पहले कार्य का जो अभाव होता है, वह प्रागभाव है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती है किन्तु विनाश होता है।
29. कार्य के विनाश के पश्चात् उसके कार्य का जो अभाव होता है, वह उस अधि करण में होता है, वह ध्वंसाभाव है। ध्वंसाभाव की उत्पत्ति होती है किन्तु नाश नहीं होता है।
30. 'वायु में रूपाभाव है', यहाँ अत्यन्ताभाव है।
31. 'घट पट नहीं होता है', यहाँ अन्योन्याभाव है।
32. तादात्म्य सम्बन्ध अवच्छिन्न अभाव अन्योन्याभाव है।

## उत्तर-11.6

1. वैशेषिक मत में प्रमाण दो हैं- प्रत्यक्ष और अनुमान।
2. वैशेषिक मत में सभी पदार्थों में चतुष्ट्य के सन्निकर्ष से अव्यपदिष्ट जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह प्रत्यक्ष है।
3. चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक्, श्रोत्र और मन ये छः इन्द्रियाँ हैं।
4. लिङ्ग दर्शन से सञ्जायमान ज्ञान लिङ्गक है। और लिङ्ग अनुमापक है।
5. वैशेषिक मत में लिङ्ग दर्शन अनुमान प्रमाण है।

6. वैशेषिक मत में शब्द और उपमान का अनुमान प्रमाण में अन्तर्भाव होता है।
7. सृष्टि के प्राक् (पहले) निष्क्रिय परमाणुओं में ईश्वर की इच्छा के कारण क्रिया उत्पन्न होती है।
8. दो परमाणुओं के संयोग से अनित्य कार्यरूप अणु परिमाण द्वयणुक उत्पन्न होता है।
9. त्रयणुक महत् परिमाण है।
10. एक चतुरणुक में चौबीस परमाणु रहते हैं।
11. दो परमाणुओं के संयोग के नाश से द्वयणुक नाश होता है।

**।।ग्यारहवाँ पाठ समाप्त।।**

# 12

# सांख्य दर्शन

## प्रस्तावना

इस जगत् में सभी सुख की इच्छा करते हैं और दु:ख के नाश के लिए प्रवृत्त होते हैं। सुख सविषयक और निर्विषयक होता है। स्वादिष्ट भोजन से उत्पन्न सुख सविषयक है, वहाँ भोज्य पदार्थ विषय हैं। सुषुप्तिकाल में जो सुख उत्पन्न होता है, वह निर्विषयक सुख है। न ही सुषुप्ति में कोई विषय आभसित होता है। जाग्रतकाल में बाह्य स्थूल घट आदि विषय अनुभूत होते हैं, और स्वप्नकाल में मन द्वारा निर्मित गृह, घट आदि अनुभूत होते हैं। परन्तु सुषुप्ति में बाह्य विषय इन्द्रियाँ और मन होते हैं। अत: तब आयासाभाव से जीव सुख का अनुभव करता है। सविषयक सुख ही काम है, और निर्विषयक, निरतिशय सुख ही मोक्ष है। सुख-लाभ के लिए धन-ऐश्वर्य अपेक्षित है और कुछ नियम अनुसर्तव्य हैं। धन-ऐश्वर्य ही अर्थ पद द्वारा कहा जाता है। जो नियम मनुष्य जीवन में सुख को उत्पन्न करते हैं, वे ही धर्म पद द्वारा कहे जाते हैं। एवं पुरूष का अर्थ प्रयोजन सुख है, उसके सुख के उपाय धर्म और अर्थ हैं।

अत: धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार पुरूषार्थ हैं। इनमें काम और मोक्ष मुख्य पुरूषार्थ हैं और धर्म और अर्थ उपायभूत होने से गौण पुरूषार्थ हैं। प्रत्येक पुरूषार्थ के प्रतिपादन के लिए शास्त्र प्रणीत हैं। अत: मनु आदि प्रणीत धर्मशास्त्र, कौटिल्य आदि प्रणीत अर्थशास्त्र और वात्स्यायन आदि प्रणीत कामशास्त्र लोक में दिखते हैं। भारतीय दर्शन ही मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र हैं। भारतीय दर्शन आस्तिक और नास्तिक के भेद से दो प्रकार के हैं। न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, अत: ये आस्तिक दर्शन हैं। इनमें पुन: न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, और पूर्व उत्तर मीमांसा के सिद्धान्त प्रतिपादन में साम्य दिखाई देता है। अत: प्रत्येक युगल समान तन्त्र कहलाता है।

सांख्य मत में दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति मोक्ष है। दु:ख की आात्यन्तिक

निवृत्ति अर्थात् दु:ख के नाश के बाद पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, दु:ख की ऐकान्तिक निवृत्ति अर्थात् दु:ख का नाश अवश्य ही होता है। दु:ख तीन प्रकार का है- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। शरीर में वात, पित्त, कफ के वैषम्य के कारण रोग आदि की उत्पत्ति होती है, रोगों के द्वारा दु:ख उत्पन्न होता है। काम, क्रोध, लोभ आदि के कारण मानसिक दु:ख उत्पन्न होता है। शारीरिक और मानसिक दु:ख आध्यात्मिक है, मनुष्य-पशु-स्थावर आदि द्वारा उत्पन्न दु:ख आधिभौतिक है, यक्ष-राक्षस-ग्रह आदि के कारण जो दु:ख उत्पन्न होता है, वह आधिदैविक है। उक्त दु:ख त्रय की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति पान-भोजन-मणि-मन्त्र आदि द्वारा नहीं होती है। दु:ख का सामयिक नाश इनके द्वारा होता है, परन्तु पुन: कालान्तर में दु:ख उत्पन्न होता है। वेद प्रतिपादित याग आदि के द्वारा भी दु:ख की निवृत्ति नहीं होती है। याग आदि में पशुवध होता है, और उसके द्वारा पाप उत्पन्न होता है। याग (यज्ञ) से जो फल उत्पन्न होता है, और उसका नाश होता है। स्वर्ग जाने पर भी पुण्य के नाश होने पर स्वर्ग से पुन: वापसी श्रुतियों और भगवद्गीता में सुने गये है। यज्ञ द्वारा जो फल उत्पन्न होता है, वह निरतिशय नहीं होता है, याग के फलों में भी कुछ उत्कृष्ट और कुछ निकृष्ट हैं। अत: लौकिक उपायों के द्वारा और वैदिक कर्मकाण्ड द्वारा दु:ख का एकान्त और अत्यन्त नाश नहीं होता है। अत: प्रकृति पुरूष के विवेक ज्ञान का प्रतिपादक सांख्यशास्त्र पुरूष का दु:ख निवृत्ति के लिए आचार्य कपिल द्वारा उपदिष्ट है।

इस पाठ में हम आदि में सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा की आलोचना करते हैं। वहाँ से सांख्य सम्मत पदार्थों प्रमाणों और प्रपञ्च का अवलोकन करते हैं। कार्य कारण के विषय में प्रसिद्ध सांख्यों का सिद्धान्त सत्कार्यवाद की भी यहाँ आलोचना की जायेगी।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- सांख्य दर्शन के आलोचना की आवश्यकता को जान पाने में;
- सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- सांख्य मत में बन्ध-मोक्ष को जान पाने में;
- सांख्य मत में प्रकृति सत्व में प्रमाण और प्रकृति स्वरूप को जान पाने में;
- प्रकृति स्वरूपभूत गुणत्रय को जान पाने में;
- पुरूष के होने में प्रमाण, पुरूष-स्वरूप और पुरूष बहुत्व को जान पाने में;
- सांख्य सम्मत पच्चीस तत्व और उनके वर्गीकरण को जान पाने में;
- सांख्य अभिमत प्रमाण को जान पाने में;
- सत्कार्यवाद को जान पाने में।

टिप्पणी

## 12.1 सांख्य पद का अर्थ-

'संख्यायते अनया' इस विग्रह में सम् उपसर्गपूर्वक व्यक्तायां वाचि विद्यमान होने के कारण चक्ष् धातु के कारण में अङ् प्रत्यय में, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् संख्या शब्द निष्पन्न होता है। संख्या शब्द का अर्थ ही सम्यक् विचार है। अमरकोश में कहा गया है- ''चित्रभोगा मनस्करश्चर्चा संख्या विचारणा'', और ''संख्यावान् पण्डितः कविः''। संख्या इसमें सम्यक् विचार है, यह विग्रह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य शब्द निष्पन्न होता है। सम्यक् विचार इतर दर्शनों में भी सुलभ है, यह कहा जाता है कि यह सांख्य शब्द योगरूढ़ है, इस शब्द से सम्यक्-विचारयुक्त कपिल प्रणीत शास्त्र ही बोधित है। 'सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुतत्वम् अनया इति संख्या', इस विग्रह में निष्पन्न संख्या शब्द का सम्यक् ज्ञान, यह अर्थ भी श्रीधर स्वामी आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा कल्पित है। अतः संख्या सम्यक् ज्ञानं, सा अस्ति यत्र तत् सांख्यम्', यह अर्थ भी सम्भव है। और यहाँ सम्यक् ज्ञान से प्रकृति-पुरूष का विवेक, विवेक-ख्याति, विवेक बुद्धि अथवा सत्व पुरूषान्यताख्याति का बोध होता है। सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्व प्रपञ्चित हैं। एवम् पच्चीस संख्या के साथ सम्बन्ध होने के कारण इस शास्त्र का सांख्य नाम है, ऐसा कुछ मानते हैं। महाभारत में कहा गया है- संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते। तत्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्।। इस पक्ष में संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य शब्द निष्पन्न होता है। इतर दर्शनों में भी विविध संख्यक तत्व प्रतिपादित है, अतः यहाँ सांख्य पद योगरूढ़ कपिल द्वारा प्रणीत शास्त्र का ही बोधक है, यह वक्तव्य है।

## 12.2 सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा

महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रवक्ता है। कपिल ने सांख्यसूत्र लिखा। आज जो सांख्य सूत्र प्राप्त होते हैं, वे कपिल विरचित नहीं है, ऐसा विद्वान कहते हैं। कपिल प्रणीत सूत्रग्रन्थ ही लुप्त हो गया है। सांख्य शास्त्र के प्रणेता के रूप में कपिल का नाम श्रुति, महाभारत और भागवत में प्राप्त होता है। कपिल ने अपने शिष्य आसुरि को और आसुरि ने अपने शिष्य पञ्चशिख को सांख्य तत्व का उपदेश दिया। इनके ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते हैं। ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्यसप्तति अथवा सांख्यकारिका अभी सुलभ है, उसमें सांख्यमत कारिका द्वारा समुस्थित हैं। एवम् गौड़पाद की सांख्यकारिका भाष्य, विज्ञानभिक्षु कृत सांख्यप्रवचन भाष्य और सांख्य सार, अनिरूद्ध की सांख्यप्रवचनसूत्रवत्ति, माठराचार्य की माठरवृत्ति, अज्ञात द्वारा लिखित युक्ति दीपिका, सीमानन्द का सांख्यतत्वविवेचन, भावगणेश का सांख्यतत्वयथार्थदीपन, वाचस्पति मिश्र की सांख्यतत्वकौमुदी इत्यादि ग्रन्थ अभी समुपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत से सांख्यशास्त्रकारों के नाम स्मृतियों, महाभारत के शान्तिपर्व द्वारा ज्ञात होते हैं। इनके सांख्यशास्त्र अब लुप्त हैं। वे हैं- विन्ध्यवासी, वार्षगण्य, जैगीषण्य,

वोदु, असितदेवल, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, भृगु, शुक्र, काश्यप, पराशर, गर्ग, हारीत, अगस्त्य, पुलस्त्य इत्यादि।

## पाठगत प्रश्न 12.1

1. सांख्य दर्शन का समानतन्त्र दर्शन क्या है?
2. सांख्य दर्शन में मोक्ष का क्या नाम है?
3. दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति नाम क्या है?
4. दु:ख कितने प्रकार का है, और वह क्या है?
5. आध्यात्मिक दु:ख क्या है?
6. सांख्य पद की व्युत्पत्ति क्या है?
7. सांख्य पद का क्या अर्थ है?
8. सांख्य दर्शन के प्रवक्ता कौन हैं?
9. कपिल के शिष्य कौन, और उनके शिष्य कौन हुए?
10. सांख्यकारिका का अपर नाम क्या है?
11. सांख्य प्रवचन भाष्य किसके द्वारा लिखा गया है?
12. अनिरूद्ध कृत ग्रन्थ का नाम क्या है?

## 12.3 सांख्य मत में बन्ध और मोक्ष

सांख्य मत में प्रकृति और पुरूष दो तत्व होते हैं। और जो अनादि विनाश रहित है, वह नित्य है। पुरूष असन्न, चेतन और निष्क्रय है। पुरूष दो प्रकार है- बद्ध और मुक्त। प्रकृति जड़ है, वह ही जड़ प्रकृति का उपादान है। प्रकृति से बुद्धि तत्व उत्पन्न होता है। बुद्धि भी जड़ है। प्रकृति के कार्य बुद्धि में धर्म, अधर्म विद्यमान होते हैं, धर्म-अधर्म जनित सुख-दु:ख भी बुद्धि में ही होते हैं। एवम् दु:ख सम्बन्ध रूप बन्ध और दु:खाभावरूप मोक्ष बुद्धि में ही सम्भव होता है। जब पुरूष भ्रम के कारण बुद्धि तत्व के साथ अपना तादात्म्य अनुभव करता है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख स्वयं में आरोपित करके 'मैं दु:खी', 'मैं सुखी हूँ', ऐसा चिन्तन करता है। तब पुरूष आत्मा को बद्ध मानता हैं। और बुद्धि तत्व के साथ पुरूष का सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। स्वच्छ बुद्धि पर चेतन पुरूष का प्रतिबिम्ब मात्र ही सम्बन्ध बोध्य होता है। जब पुरूष बुद्धि के साथ आत्मा का भेद जानता है, तब बुद्धि निवृत्त होती है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख

टिप्पणी

पुरूष अनुभव नहीं करता है। पुरूष तब स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। पुरूष नित्य मुक्त है, उसकी स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है। और मोक्ष में कारण बुद्धि-पुरूष का विवेक ज्ञान है। वही सत्वपुरूष अन्यताख्याति, सत् असत्ख्याति, विवेकी इत्यादि पदों द्वारा कहा जाता है।

## 12.4 प्रकृति के होने में प्रमाण

'प्रकरोति इति प्रकृति'। प्रकृति ही अखिल प्रपञ्च का कारण है। सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है, ऐसा सांख्यसूत्र में कहा गया है। सत्व, रजस् और तमस्, इन तीनों गुणों से विशिष्ट यह प्रकृति कारण रहित है। प्रकृति के भी कारण की कल्पना में, प्रकृति रूपी कारण का भी क्या कारण है, उस कारण का भी पुनः क्या कारण है, ऐसी अनवस्था होगी। अतः यह मूल प्रकृति कही जाती है, इसका कारण नहीं है। मूल में मूलाभाव के कारण अमूल मूल है, सांख्यसूत्र इसमें प्रमाण है। प्रकृति है तो उसकी उपलब्धि कैसे नहीं होती है, इस पर कहा जाता है कि प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु प्रत्यक्ष गोचर नहीं होते हैं उसी प्रकार। प्रकृति ही गुणत्रयात्मक प्रपञ्च के कारण रूप में सामान्यतोदृष्ट अनुमान द्वारा सिद्ध होती है। और सांख्यकारिका में उक्त है- सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।

प्रकृति की सिद्धि के लिए ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कुछ हेतु समुपस्थित किये गए हैं। वे हैं- भेदों के परिमाण से, समन्वय से, शक्ति की प्रवृत्ति से, कारण-कार्य विभाग से, अविभाग से और वैश्वरूप का। बुद्धितत्व कार्य परिमित और अव्यापी है। अतः उनके कारण अव्यक्त है, जो व्यापी होता है। दृश्यमान सभी कार्य सुख, दुःख, मोहात्मक होने से सत्व, रजस् और तमस् गुणात्मक होते है, अतः इस कार्य का कोई भी सजातीय कारण है, यह सिद्ध होता है। सांख्य मत में शक्ति विशिष्ट कारण से ही कार्य की अभिव्यक्ति होती है। यथा तिल से तैल उत्पन्न होता है क्योंकि तिल में तेल उत्पादन करने की शक्ति है। बालु (रेत) द्वारा तेल की उत्पत्ति नहीं होती है, बालु में तैलोत्पादन की शक्ति के अभाव के कारण। महत् आदि कार्य के दर्शन से कार्योत्पादानुकूल शक्ति विशिष्ट कारण अव्यक्त है, यह आपत्ति है। उत्पत्तिकला में सत् के ही कार्य का कारण से विभाग का आविर्भाव होता है। विश्व रूप ही वैश्वरूप है। और प्रलयकाल में विश्वरूप का (सकल कार्य का) कारण में अविभाग (तिरोभाव) होता है। अतः कार्य महत् आदि का आविर्भाव-तिरोभाव दर्शन से होता है, वह कारण अव्यक्त है, ऐसा अनुमित होता है। ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कहा जाता है-

**''भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च।**
**कार्यकारणविभागाद् वैश्वरूप्यस्य॥**

## 12.5 प्रकृति स्वरूप

सांख्य दर्शन में प्रकृति ही कारण होने से 'अव्यक्त' कही जाती है। प्रकृति के कार्य

बुद्धि तत्व आदि का प्रकृति की अपेक्षा स्थूल होने से 'व्यक्त', यह अभिधा है। सांख्यकारिका में व्यक्तों और अव्यक्त के सादृश्य-वैसादृश्य-निरूपण काल में प्रकृति के स्वरूप की आलोचना है। प्रकृति नित्य कारण रहित है। स्वयं से उत्पन्न बुद्धि आदि में व्याप्त रहती है। अतः प्रकृति व्यापिनी है। प्रकृति में परिणामरूप क्रिया होती है, परन्तु परिस्पन्द रूप क्रिया नहीं होती है। अतः प्रकृति क्रियारहित है, ऐसा सांख्यवृद्ध कहते हैं। और वह प्रकृति एक सकल कार्य की आधारभूत है। प्रकृति का अनुमान उसके कार्य के दर्शन से सम्भव होता है, अतः प्रकृति अनुमेय है। प्रकृति कारणान्तर के अनुमान में लीन नहीं होती है। और प्रकृति अवयव संयोग विशिष्ट सावयवी भी नहीं होती है। महत् आदि के द्वारा प्रकृति का संयोग नहीं होता, महत् आदि के साथ प्रकृति का तादात्म्य होने के कारण। कार्य-कारण का संयोग नहीं होता है। प्रकृति में सत्व-रजस्-तमस् का संयोग होता है, ऐसा कहा गया है। संयोग अप्राप्त पूर्विका प्राप्ति है, जैसे हाथ-पुस्तक भिन्न है, उनका संयोग सम्भव होता है। प्रकृति में सत्व-रजस्-तमस् का सम्बन्ध नित्य है, अतः उनका परस्पर अन्विततता का अभाव सम्भव नहीं होता है, अतः अनित्य संयोग भी प्रतिपादित नहीं हो सकता। उसके कारण प्रकृति का सावयवत्व नहीं है। और प्रकृति कार्य जनन (उत्पन्न) में स्वतन्त्र है। उससे सांख्यकारिका में कहा जाता है-

**''हेतुमदनित्यमव्यापी सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।**
**सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥''**

और वह अव्यक्त सुख, दुःख, मोहात्मक है। सत्व गुण से सुख, रजोगुण से दुःख और तमो गुण से मोह उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त का स्वयं से भेद नहीं है। न ही राम राम से भिन्न होता है। अव्यक्त समुत्पन्न महत् आदि भी अव्यक्त से भिन्न नहीं होते हैं। सांख्य मत में कार्य-कारण का तादात्म्य (अभेद) स्वीकार किया जाता है। उससे कारण अव्यक्त का कार्य महत् आदि से भेद नहीं होता है। अतः अव्यक्त अविवेकी है। और अव्यक्त ग्राह्य बाह्य विषय नहीं है, न ही आन्तरिक विज्ञानकार है, ऐसा चिन्तनीय है। उस अव्यक्त और उसके कार्यों का ज्ञान अनेक पुरूषों का होता है, वह ही सामान्य (साधारण) है। अव्यक्त ही अचेतन और अखिल जगत का कारण है। अतः अव्यक्त प्रसवधर्मी भी होता है। अतः ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कहा गया है-

**''त्रिगुणम् अविवेकि विषयः सामान्यम् अचेतनं प्रसवधर्मि।**
**व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥''**

## 12.6 प्रकृति के गुणत्रय

प्रकृति गुणत्रयात्मिका है। सत्व-रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है। सत्व, रज और तम यहाँ गुण हैं, ऐसा पूर्व में प्रतिपादित है। सत्व गुण से सुख, रजो गुण से दुःख और तमो गुण से मोह उत्पन्न होते है, ऐसा भी पहले कहा गया है। सांख्यवृद्धों के द्वारा कहा जाता है -

टिप्पणी

**गुणसाम्यं प्रधानं स्याद् गुणाः सत्वं सजस्तमः।**
**सुख दुःखमोहरूपं दृश्यते हि स्फुटं जगत्॥**

यह यहाँ अवधेय है कि प्रकृति इन गुणों का आधार नहीं है। नैयायिक स्वीकार करते हैं कि द्रव्य में गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। सत्व आदि उस प्रकार के गुण नहीं है। प्रकृति रूप द्रव्य में गुण समवाय सम्बन्ध से नहीं रहते हैं, यह चिन्तनीय है। वे प्रकति के धर्म नहीं है। सत्व-रजस-तमस् प्रकृति के स्वरूपभूत हैं, प्रकृति सत्व-रजस्-तमस् व्यतिरेक से नहीं है। इसीलिए सांख्यसूत्र में- 'सत्वादीनाम् अतद्धर्मत्वं तद्-रूपत्वात्'। सत्व आदि नैयायिक सम्मत गुणवत् नहीं होते हैं। सत्व-रजस्-तमस् के संयोग, विभाग आदि सम्भव हैं, इनमें लघुत्व-चलत्व-गुरूत्व आदि धर्म हैं। गुणों में संयोग आदि गुण अथवा लघुत्व आदि गुण नैयायिक स्वीकार नहीं करते हैं। अतः सत्व-रजस्-तमस् द्रव्य ही हैं। पुरूष को बन्धन में करते हैं, यह हेतु के वे गुण हैं, ऐसा कहते हैं, यथा गुणों के द्वारा (रज्जु के द्वारा) हाथी, गाय आदि का बन्धन होता है, उसी प्रकार। गुणों में सत्व ही लघु प्रकाशक है। अधोगमन से व्यतिरिक्त ऊर्ध्व (ऊपर जाना) गमन और तिर्यग्गमन (टेढ़ा चलना) लघुता के कारण से होता है।

अतः अन्त स्थित सात्विक ज्ञानेन्द्रियाँ विषय देश को जाकर भी विषय को प्रकाशित करने में समर्थ होती हैं। रजो उपष्टम्भक (संल्लेयजनक) और चल होता है। रजो गुण ही अवसन्न शिथिल निष्क्रिय सत्व, तमस को स्व-स्व कार्य में प्रवृत्त करता है। उपष्टम्भक का अर्थ प्रवर्तक है। और रजस् सक्रिय होने से चल है। तमस् गुरूत्व विशिष्ट और आवरक है। रजस् के चलत्व में और सत्व के प्रकाशकत्व में तमस् ही बाधक है। अन्यथा सभी वस्तुएँ रजस् के कारण सदा सक्रिय ही होंगी, और सत्व गुण वश सभी सर्वज्ञ होंगे। ये गुण भिन्न धर्मी तथा परस्पर विरोधी हैं। तथापि ये गुण पुरूष के भोग और अपवर्ग के लिए मिलकर कार्य को उत्पन्न करते हैं। यथा दीप में बत्ती, तेल और अग्नि परस्पर विरूद्ध होते है, तथापि वे मिलकर प्रकाश रूप कार्य को सम्पादित करते हैं, वैसे ही सत्व, रजस्, तमस् परस्पर विरूद्ध होने पर भी मिलकर रूप, प्रकाश कार्य को करते हैं। इसीलिए सांख्यकारिका में कहा जाता है-

**''सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टम् उपष्टम्भकं चलं च रजः।**
**गुरू वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥''**

एवम् गुणत्रयात्मिका प्रकृति से गुणत्रयात्मक जगत् उत्पन्न होता है। सत्व, रजस्, तमस् परस्पर विरोधी हैं फिर एक पदार्थ में उनका होना कैसे सम्भव है तो कहा जाता है, एक ही रमणी (सुन्दरी) उसके पति के सुख का कारण होती है, उसकी सपत्नी के दुःख का करण होती है और जो उसकी अभिलाषा करता है परन्तु प्राप्त नहीं करता, उसके मोह का कारण होती है। इसी प्रकार एक ही वस्तु गुणत्रयात्मक होने से किसी के सुख का कारण, किसी के दुःख का कारण अथवा किसी के मोह का कारण होती है। ये गुण ही परस्पर अभिभूत होकर कार्य को उत्पन्न करते हैं। जब सत्व रजस् और तमस् से प्रबल होता है तब शान्तवृत्ति, जब रजस् सत्व और तमस् से प्रबल होता है

तब घोर वृत्ति और जब तमस् सत्व और रजस् से प्रबल होता है तब मूढ़ वृत्ति उत्पन्न होती है। ये गुण एक दूसरे की अपेक्षा करके कार्य को उत्पन्न करते हैं।

अत: ये एक-दूसरे पर (अन्योन्य) आश्रित होते हैं। सत्व ही प्रवृत्ति और नियम पर आश्रित होकर प्रकाश रूपी कार्य को सम्पन्न करता है, रजस् प्रकाश और नियम पर आश्रित होकर प्रवर्तन रूप कार्य करता है और तमस् ही प्रकाश और प्रवृत्ति पर आश्रित होकर नियम रूप कार्य करता है। परिणाम दो प्रकार है- सरूप परिणाम और विरूप परिणाम। सृष्टिकाल में विरूप परिणाम होता है तब गुण अन्योन्य आश्रित होकर कार्य उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादित है। प्रलयकाल में तो सरूप परिणाम होता है। सरूप परिणाम में कारण रूप द्वारा तत्वान्तर की अपेक्षा नहीं होती है। सदृश-परिणाम स्थल पर ये गुण परस्पर सहकारी होते है। सत्व, रजस्, तमस् गुण ही अन्योन्य सहचर है, कभी भी इनका परस्पर व्यभिचार दृष्ट है। अत: कहा जाता है-

**प्रीत्यप्रीतिविषादात्मका: प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्था:।**
**अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणा:॥**

## पाठगत प्रश्न 12.2

1. सांख्य मत में दो नित्य तत्व क्या हैं?
2. कब नित्य मुक्त पुरूष आत्मा सुखी है अथवा दु:खी, ऐसा सोचता है?
3. मोक्ष का कारण क्या है?
4. प्रकृति क्या है? किसका नाम प्रकृति है?
5. कैसे प्रकृति प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण नहीं होती?
6. प्रकृति की सिद्धि के लिए सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण द्वारा कौन से हेतु समुपस्थित हैं?
7. अव्यक्त कैसे व्यापी है?
8. कौन सा लिप्त प्रकृति को अनुमापता है?
9. क्या सत्व, रजस्, तमस् प्रकृति में आधार-आधेय भाव से रहते हैं?
10. सत्व गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
11. रजा गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
12. तमो गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
13. परस्पर विरोधियों का भी सम्भूत होकर एक कार्यकारित्व में क्या उदाहरण है?

टिप्पणी

## 12.7 पुरूष सत्व में प्रमाण

प्रकृति के अस्तित्व के प्रति जैसे सांख्य दार्शनिकों के द्वारा प्रमाण प्रदर्शित हैं वैसे पुरूष की सिद्ध के लिए भी उन्होंने हेतुओं को उपस्थित किया। प्रकृति और उसके कार्यों से भिन्न पुरूष होता है क्योंकि प्रकृति और उसके कार्य सुख, दु:ख, मोहात्मक होने के कारण संघातरूप है। जगत् में दृश्यमान सभी संघात भी परार्थ ही होते हैं। जैसे शय्या, आसन इत्यादि संघात शरीर के प्रयोजन को साधते हैं। वैसे ही प्रकृति और उसके कार्य भिन्न हैं किन्तु अचेतन भिन्न के अनुमापक होते हैं। और यह पर: संघातरूप नहीं है, तथा कहा जाता है कि उस संघात की पुन: अपरार्थता, अपर (अन्य) की भी संघातत्व में उसकी भी परार्थता, यह अनवस्था होगी। अत: संघात से व्यतिरिक्त गुणत्रयहीन चेतन प्रकृति से विभिक्त कोई पुरूष नामक तत्व है। प्रकृति जड़ है। उसके अधिष्ठान रूप में भी पुरूष की सिद्धि होती है। पुरूष के सम्बन्ध के कारण ही प्रकृति सृजन करती है। प्रकृति के परिणाम के प्रति पुरूष का सम्बन्ध मात्र अपेक्षित है, वहाँ पुरूष का कर्तृत्व नहीं है। प्रकृति से आरम्भ होकर सभी कार्यों के सुख, दु:ख, मोहात्मक होने से सुख-दु:ख-मोह के भोक्ता के रूप में चेतन पुरूष स्वीकार्य है। शास्त्र कैवल्य के लिए ही प्रवृत्त हैं, शास्त्रकार और महर्षि में कैवल्य के लिए प्रवर्तित होते हैं। कैवल्य दु:खत्रय का अभाव है। प्रकृति अथवा उसके कार्यों का कैवल्य सम्भव नहीं होता है, उनके सुख-दु:ख-मोह स्वरूप के कारण। अत: कैवल्य उसे अतिरिक्त पुरूष का ही सम्भव है, अत: पुरूष स्वीकार करने योग्य है। सांख्यकारिका में उक्त है-

**'संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययाद् अधिष्ठानात्।**
**पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्य॥''**

## 12.8 पुरूष का स्वरूप

पुरूष नित्य और उत्पत्तिरहित है। पुरूष में गुणत्रय नहीं होते हैं। अत: यह त्रिगुण असंहत है। पुरूष ही चेतन है। उससे प्रकृति और उसके कार्यों से इसका महान भेद है। पुरूष ही विषयी है, पुरूष प्रकृति आदि विषय का साक्षात्कार करता है। प्रत्येक संघात से पुरूष भिन्न है, अत: पुरूष सामान्य है, यह नहीं कहा जा सकता है। पुरूष से कुछ उत्पन्न नहीं होता है। अत: यह प्रसवधर्मी नहीं है। पुरूष निष्क्रिय और स्वतन्त्र है। पुरूष ही चेतन और अविषय है, अत: पुरूष द्रष्टा और साक्षी है। गुणत्रय से रहित होने के कारण इसमें दु:खत्रय के अभाव से कैवल्य सिद्ध होता है। और पुरूष स्वरूप से सुख अथवा दु:खी नहीं होता है। अत: इसका उदासीनत्व अथवा माध्यस्थ सिद्ध होता है। और पुरूष विवेकित्व और अप्रसवधर्मीत्व के कारण अकर्ता है। और कहा जाता है-

**तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरूषस्य।**
**कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वम् अकर्तृभावश्च॥**

## 12.9 पुरूष-बहुत्व

सांख्य मत में पुरूष अनेक हैं। कुछ पुरूष बद्ध हैं और कुछ मुक्त हैं। कैसे एक ही चेतन पुरूष स्वीकार नहीं किया जाता है- अद्वैत वेदान्त आदि के समान तो कहते हैं, एक ही पुरूष के होने पर एक पुरूष की उत्पत्ति में सभी देहधारियों की उत्पत्ति होगी, और एक पुरूष की मृत्यु पर सभी देहधारियों की मृत्यु होगी। एवं एक पुरूष के अन्धे होने पर सभी को अन्धता होगी। ऐसा नहीं होता है। अतः प्रत्येक शरीर में भिन्न पुरूष है, यह स्वीकार करने योग्य है। जन्म-मरण-इन्द्रियों की इस प्रकार की व्यवस्था के दर्शन से पुरूष बहुत्व स्वीकार किया जाता है। एवम् एक ही पुरूष है तो एक शरीर में प्राण रहने पर सभी शरीर प्राण-युक्त होते। वैसी शरीरों की प्रवृत्ति नहीं दिखती। अतः दोनों प्रवृत्तियों के अभाव के कारण से भी प्रत्येक शरीर में पुरूष भेद स्वीकार्य है। देहधारियों में भी मिथ्या भेद है। कुछ ऋषियों अथवा योगियों में सत्व गुण का आधिक्य दिखता है, मनुष्यों में अथवा मर्त्यवासियों में रजोगुण का आधिक्य दिखता है, तथा तिर्यग् योनियों अथवा गौ, अश्व आदि में तमो गुण का आधिक्य दिखता है। अतः गुणों के प्रत्येक शरीर में विपर्यय दर्शन से प्रत्येक शरीर में पुरूष भेद भी कल्पनीय है। अतः पुरूष बहुत्व सिद्धि के लिए ईश्वरकृष्ण द्वार सांख्यकारिका में कहा गया है-

**जन्म मरणकरणानां प्रतिनियमाद् अयुगपत्प्रवृतेश्च।**
**पुरूष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥**

## 12.10 सांख्य सम्मत पच्चीस तत्व

सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्व स्वीकृत हैं। वे हैं- पुरूष, प्रकृति, महत् तत्व, अहंकार, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी, ये पञ्चमहाभूत, श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन।

## 12.11 जगत का सृष्टि-क्रम

त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही भोग्या है। भोग के द्वारा ही प्रकृति सार्थकता को जाती हैं परन्तु प्रकृति स्वयं अपना भोग नहीं कर सकती है। अतः प्रकृति भोक्त पुरूष की अपेक्षा करती है। और पुरूष स्वयं के कैवल्य के लिए प्रकृति की अपेक्षा करता है। प्रकृति-पुरूष के विवेक ज्ञान द्वारा सत्व पुरूष की अन्यताख्याति ही मोक्ष है। ज्ञान बुद्धि तत्व अथवा महत् तत्व का परिणाम है। निरन्तर श्रवण-मनन-निदिध्यासान द्वारा महत् तत्व का परिणाम विशेष ही तत्व ज्ञान विवेक ख्याति पद का वाच्य है। अतः महत् तत्व रूप में परिणति प्रकृति की अपेक्षा पुरूष की है। पुरूष न केवल मोक्ष के लिए, भोग के लिए वह

प्रकृति की अपेक्षा करता है। प्रकृति जब पुरूष की सविधि से आत्मा को भोग्य रूप में उपस्थापित करती है तब पुरूष का भोग होता है। पुरूष अनेक हैं, अतः प्रकृति पुरूष संयोग भी बहुत हैं। कुछ संयोग भोग के लिए कल्पित हैं, कुछ पुनः मोक्ष के लिए। एवं प्रकृति-पुरूष की परस्पर सापेक्षता, अथवा परस्पर उपकार्य-उपकारक-भाव होता है। एवं परस्पर प्रयोजन वश प्रकृति-पुरूष का संयोग होता है, और उस कारण से सृष्टि होती है। गुण त्रय की साम्यावस्था ही प्रकृति है, यह युक्त है। जब पुरूष संयोग के कारण प्रकृति में गुणों का वैषम्य उत्पन्न होता है, तब महत् आदि क्रम से जगत् उत्पन्न होता है। यहाँ उदाहरण रूप में पङ्ग्वम्धन्याय कहा है। अरण्य (वन) में लंगड़ा (व्यक्ति) और अन्धा (व्यक्ति) परिजनों द्वारा परित्याग दिये जाते हैं। लंगड़ा व्यक्ति गमन में असमर्थता वश अरण्य से नहीं आ सकता और अन्धा व्यक्ति मार्ग को देखने में असमर्थ होने पर अरण्य के बाहर जाने में समर्थ नहीं होता। जब अन्धा व्यक्ति लंगड़े व्यक्ति को अपने कंधो पर लेकर/बैठाकर आगे चलता है और पङ्गु ने कन्धे पर स्थित होकर मार्ग निर्दिष्ट किया तब वे वन से आकर गाँव-प्राप्ति में समर्थ हुए। इसी तरह प्रकृति-पुरूष पङ्गु और अन्धे के समान परस्पर सहायता के द्वारा अपने-अपने उद्देश्य के साधने में समर्थ होते हैं। और ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्याकारिका में कहा जाता है-

**पुरूषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।**
**पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।**

प्रकृति-पुरूष के संयोग से आदि में प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। महत् तत्व बुद्धि है, यह अर्थान्तर है। महत् तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है। सात्विक (सत्व गुण प्रधान) अहंकार से चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसन-त्वक् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ कर्मेन्द्रियाँ और उभयात्मक मन उत्पन्न होते हैं। तामस् अहंकार से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। पञ्च तन्मात्राओं द्वारा पुनः पञ्च महाभूत उत्पन्न होते हैं। इसीलिए शब्द तन्मात्र से शब्द गुण विशिष्ट आकाश, शब्द तन्त्रमात्र सहित स्पर्श तन्मात्र से शब्द-स्पर्श गुण विशिष्ट वायु, शब्द, स्पर्श तन्मात्र सहित रूप तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप गुण विशिष्ट तेज, शब्द-स्पर्श, रूप तन्मात्र सहित रस तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुण विशिष्ट आप (जल), शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुण विशिष्ट पृथिवी उत्पन्न होती है। अतः कहा जाता है-

**प्रकृतेर्महाँस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडषकः।**
**तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।।**

## 12.12 पच्चीस तत्वों का वैशिष्टय की दृष्टि से विभाग

पच्चीस तत्वों में प्रकृति, प्रकृति-विकृति, विकृति, अनुभय (न प्रकृति न विकृति), ये

कोटि चतुष्टय होता है। उनमें तत्वों में मूल प्रकृति प्रकृति ही है। उसका कोई कारण नहीं है। महत् तत्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्र, ये सात तत्व प्रकृति-विकृति हैं। इनका कारण है, इनसे कार्य भी उत्पन्न होते हैं। यथा महत् तत्व की मूल प्रकृति कारण है, महत् तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अतः महत् तत्व अहंकार की प्रकृति और मूल तत्व की विकृति होती है। एवं अहंकार पञ्चमात्राओं में भी बोध्य है। ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत विकृति ही है। इनका करण है परन्तु इनके द्वारा कार्य उत्पन्न नहीं होते है। पुरूष तो उदासीन है। उसका कोई कारण नहीं है, अथवा उससे कुछ उत्पन्न नहीं होता। अतः पुरूष न प्रकृति, न विकृति है। वह न ही उभयरूप है, अतः अनुभयरूप है। अतः कहते हैं-

**मूलप्रकृतिरविकृतिः महदादयः प्रकृतिविकृतयः सप्त।**
**षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरूषः॥**

## पाठगत प्रश्न 12.3

1. पुरूष की परार्थ प्रवृत्ति क्यों नहीं है?
2. प्रपञ्च के प्रति पुरूष का क्या कर्तव्य है?
3. कहाँ से पुरूष साक्षी है?
4. पुरूष बहुत्व के हेतु क्या हैं?
5. पञ्चमहाभूत क्या हैं?
6. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ क्या हैं?
7. पञ्च कर्मेन्द्रियाँ क्या हैं?
8. प्रकृति की सृष्टि कैसे होती है?
9. प्रकृति से क्या उत्पन्न होता है?
10. महत् तत्व से क्या उत्पन्न होता है?
11. पञ्च तन्मात्रएँ किससे उत्पन्न होती है?
12. प्रकृति-विकृति अनुसार रूप सांख्य तत्व क्या है?
13. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ किससे उत्पन्न होती हैं?

## 12.13 सत्कार्यवाद

महत् आदि कार्यों से ही उनके कारण प्रकृति का अनुमान होता है, यह पूर्व में प्रतिपादित

टिप्पणी

है। कुछ के मत में कार्यों से कारण मात्र का अनुमान होता है, कारण विशेष का अनुमान नहीं होता है। इसका अर्थ है- घट उत्पन्न हो तो, उसका कारण है, यह जाना जा सकता है परन्तु उसका क्या कारण है, यह नहीं जाना जा सकता। इसीलिए शून्यवादी बौद्ध असत् (शून्य से) से ही कार्य की उत्पत्ति कहते है।। अत: उनके मत में कार्य और करण का सजातीयत्व नहीं है। अत: कार्य से कारण विशेष का अनुमान नहीं किया जा सकता। अद्वैतवेदान्ती एक ही सत् चेतन ब्रह्म का विवर्त यह प्रपञ्च है, ऐसा विजातीय चेतन ब्रह्म ही कारण है। अत: यहाँ भी कार्य से सजातीय कारण का अनुमान नहीं किया जा सकता। सांख्य मत में कार्य से ही उसके सजातीय कारण विशेष का अनुमान सम्भव होता है। क्योंकि ये कारण से सजातीय कार्य की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

कार्यकारण भाव विचारकाल में भारतीय दार्शनिकों ने स्वयं के मत उपस्थापित किये। क्योंकि नैयायिक ही असत्कार्यवादी हैं, उनके मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व अविद्यमान (असत्) ही कार्य कारण-व्यापार द्वारा उत्पन्न होता है। असत्कार्यवाद का अपर नाम आरम्भवाद है। अद्वैतवेदान्ती विवर्तवादी हैं। उनके मत में कार्यरूप अखिल प्रपञ्च कारण ब्रह्म पर आरोपित हैं और उसके कारण मिथ्या है। जैसे भ्रम के कारण शुक्ति में दिखता रजत मिथ्या है, उसी प्रकार। ब्रह्म का विवर्तभूत यह प्रपञ्च है। ये ही सत्कारणवादी हैं। सांख्यों का कार्यकारण सम्बन्धवाद सत्कार्यवाद कहलाता है। इस मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् है (विद्यमान रहता है)। कारण में पूर्व अनभिव्यक्तता द्वारा विद्यमान कार्य की ही कारण व्यापार से अभिव्यक्ति होती है। जैसे तिल में पोषण आदि कारण व्यापार से पूर्व ही तैल होता है। तैल कारण व्यापार से पूर्व तिल में अभिव्यक्त रूप से नहीं रहता है। पोषण आदि व्यापार से तैल अभिव्यक्त होता है। मृत्तिका में भी चक्र भ्रमण आदि कार्य-व्यापार से पहले ही घट होता है, चक्र-भ्रमण आदि कारण व्यापार द्वारा पूर्व में मृत्तिका में अनभिव्यक्त रूप से स्थित घट की अभिव्यक्ति होती है। अत: कारण सजातीय ही कार्य उत्पन्न होता है। और उस कार्य से कारणानुमान अच्छी प्रकार से सम्भव होता है। और उससे सुख-दु:ख-मोहात्मक प्रपञ्च देखकर उसके सजातीय कारण त्रिगुणात्मक प्रधान (प्रकृति) का अनुमान किया जाता है।

सत्कार्य उपपादन करने के लिए पाँच हेतु सांख्यकारिका में उपन्यस्त हैं। (कारण व्यापार से पूर्व) कार्य (कारण में) सत्, असत् करण से, उपादान-ग्रहण से, सर्वसम्भव होने से, शक्त के शक्य करण से और कारणभाव से। सांख्य कहते हैं कि कारण व्यापार से पूर्व कारण में कार्य असत् हो तो वह कभी भी उत्पन्न नहीं किया जा सकता। रेत में कारण व्यापार से पूर्व तैल नहीं होता है, अत: किसी भी प्रकार से रेत से तैल उत्पन्न नहीं होता है। अत: असत् करण के कारण कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् (विद्यमान) होता है। उपादान कारण के साथ ग्रहण सम्बन्ध वश भी कार्य सत् है। कारण के साथ सम्बन्ध युक्त ही कार्य कारण व्यापार से पश्चात् उत्पन्न होता है। यदि कारण व्यापार से पूर्व कार्य कारण का सम्बन्ध कल्पित हो तो ही तब कार्य विद्यमान है, ऐसा सिद्ध होता है। दो सम्बन्धियों के अभाव में सम्बन्ध सम्भव नहीं होता है। अत:

उपादान के साथ सम्बन्ध युक्त कार्य की ही उत्पत्ति के कारण व्यापार से पूर्व कार्य सत् है। न ही सभी कारण से सभी कार्य की उत्पत्ति होती है। न ही तन्तुओं से घट अथवा मृत्तिका से पट उत्पन्न होता है। अत: कारण व्यापार से पूर्व ही कारण का कार्य के साथ सम्बन्ध होता है। अन्यथा जिस किसी कारण से जिस-किसी कार्य की उत्पत्ति है। अत: सर्वसम्भव अभाव रूपी कारण व्यापार से पूर्व कारण में कार्य होता है। शक्ति विशिष्ट कारण से ही कार्य उत्पन्न होता है। जैसे मृत्तिका में घट को उत्पन्न करने की शक्ति है, अत: मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है। मृत्तिका में पट-उत्पादन शक्ति नहीं है, अत: मृत्तिका से पट नहीं उत्पन्न होता। कार्योत्पत्ति के अनुकूल शक्ति विशिष्ट कारण में विद्यमान वह शक्ति सर्वकार्यविषयिणी हो तो सभी वस्तु सभी से सम्भव होते।

मृत्तिका से भी पटोत्पत्ति होती। ऐसा नहीं होता है। यदि वह शक्ति विशिष्ट कार्यविषयिणी है, ऐसा स्वीकार किया जाता है तब प्रश्न होता है कि कारण व्यापार से पूर्व कार्य के अभाव स्वीकारने में कैसे शक्ति के विशिष्ट कार्य से सम्बन्ध प्रतिपादित किये जा सकते हैं। वस्तु के अभाव में सम्बन्ध सम्भव नहीं होता है। कारण व्यापार से पूर्व कार्य के अभाव में कारण में अविद्यमान कार्यविषयिणी शक्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता। अत: कार्य विषयक-शक्ति-विशिष्ट कारण का ही कार्योत्पादन से, कारण व्यापार से पूर्व ही कार्य है, ऐसा स्वीकार्य है। किसी कार्य का कारण अभिन्नत्व से कारण सत् हो (विद्यमान हो) तो उससे अभिन्न कार्य कैसे असत् होगा। अत: कार्य के कारण भाव से भी कार्य सत् है। सांख्यकारिका में कहा गया है-

**असदकरणादुपादानगहणात् सर्वसम्भवाभावात्।**
**शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्॥**

## 12.14 सांख्य अभिमत प्रमाण

सांख्य में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। प्रमाण प्रमा का कारण है। करण कारणविशेष है, जिसके व्यापार से अनन्तर कार्य की उत्पत्ति होती है। कुठार का उद्यमन आदि व्यापार से वृक्षच्छेदन रूप फल की उत्पत्ति होती है, अत: कुठार करण है। काष्ठच्छेदक वृक्ष आदि कारण मात्र है। सांख्य मत में प्रमा पौरूषेय बोध है। चैतन्य प्रतिबिम्बित बुद्धि की वृत्ति अथवा बुद्धि वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य प्रमा शब्द का अर्थ है। और प्रमाण विषयाकार चित्तवृत्ति है। इसीलिए घट के प्रत्यक्ष के समय में जब चक्षु इन्द्रिय घट से संबंधित होता है तब बुद्धि चक्षु द्वारा घट से सम्बन्ध प्राप्त होता है, और घटाकार द्वारा परिमित होता है। यह घटाकार चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। जब स्वच्छचित्तवृत्ति में पुरूष प्रतिबिम्बित होता है तब घटाकार चित्तवृत्ति पुरूष-प्रतिबिम्बिविशिष्ट होती है। वही पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट घटाकार चित्तवृत्ति ही घटविषयी प्रमा है। और उसका स्वरूप है- 'मैं घट को जानता हूँ'। सांख्य मत में प्रमाण और प्रमा दोनों ही ज्ञानात्मक होते हैं। घटाकार चित्तवृत्ति ही घटज्ञान है, वह घटज्ञान तो प्रमाण है। घटज्ञान

के साथ जब पुरूष का सम्बन्ध होता है तब 'घट को जानता हूँ' यह अहम् पदोक्त पुरूष के साथ सम्बद्ध ज्ञान ही प्रमा होती है। अतः वाचस्पति मिश्र द्वारा सांख्यतत्व कौमुदी में प्रमा के विषय में कहा जाता है-

**''बोधश्च पौरूषेयः फलं प्रमा, तत्साधनं प्रमाणम्''।**

**वास्पति मिश्र द्वारा प्रमाण का लक्षण उक्त है-**

''असन्दिग्धविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः''। वृक्ष कपि (वान) के संयोग से युक्त है अथवा नहीं इत्यादि सन्देह में अतिव्याप्ति के वारण के लिए असंदिग्ध है। अविपरीत पद का अर्थ अबाधितत्व है। भ्रमज्ञान में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए यह पद दिया गया है। शुक्ति-रजत आदि भ्रमों में रजत आदि विषय उत्तर ज्ञान से बाधित होते हैं। अतः उनका बाधितत्व, न अबाधितत्व है। अनधिगत पद स्मृति में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए प्रदान किया गया है। घट के प्रत्यक्ष काल में ही घट अधिगत होता है, अधिगत विषय के संस्कार से अधिगत विषय में स्मृति होती है। अतः संशय, भ्रम और स्मृति का प्रमाणत्व नहीं है। प्रमाणों की नीचे संक्षेप से आलोचना की गई है।

पृथिवी सुख आदि विषयों के साथ इन्द्रिय सम्बन्ध होने पर त्रिगुणात्मिका बुद्धि में तमो गुण का अभिभव होता है, और सत्व गुण का समद्रेक होता है। तब इन्द्रिय सन्निकृष्ट-विषयाकारा अन्तः करणवृत्ति उत्पन्न होती है। वही अध्वसाय ज्ञान है, ऐसा कहा जाता है। यह इन्द्रिय-सन्निकृष्ट-विषयाकारा चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट यह चित्तवृत्ति ही प्रमा होती है।

लिङ्ग हेतु है। लिङ्गी लिङ्ग सम्बन्धी साध्य है। लिङ्ग पद से पक्ष का भी ग्रहण होता है। तब इसमें लिङ्ग है, यह लिङ्गी का अर्थ होता है। इसीलिए सभी को ध ूम-वह्नि का सहचर प्रत्यक्ष होता है। धूम व्याप्ति विशिष्ट व्याप्य और वह्नि व्यापक है। धूम-वह्नि की व्याप्ति धूम में होती है। एवं धूम-वह्नि का यह ज्ञान यदि व्याप्य व्यापक रूप है, और धूम पर्वत पर है, ऐसा वह्निविशिष्ट पर्वत का ज्ञान है, इन दोनों ज्ञान के पश्चात् जो ज्ञान अथवा चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है, 'पर्वत वह्निमान है', वह अनुमान है। वहाँ पर उस ज्ञान में पुरूष प्रतिबिम्बि होने पर मैं वह्नि से युक्त पर्वत का अनुमान करता हूँ, ऐसा पुरूष सम्बन्धी जो ज्ञान है, वह ही अनुमिति है। और वह अनुमान तीन प्रकार का है- पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट।

आप्त वाक्य के श्रवण के पश्चात् जो वाक्यार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, वह आगम प्रमाण है। और आप्त यथार्थवक्ता है, और वह भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा- करणपाटव रूप दोष रहित है। इसीलिए ''साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'' इत्यादि वाक्य से निर्गुणाभिन्न-केवलाभिन्न-चेत्रभिन्न-साक्षि-सत्ता रूप वाक्यार्थ का जो ज्ञान है, वाक्यार्थाकार अथवा चित्तवृत्ति है, वही आगम प्रमाण है। जब इस चित्तवृत्ति में पुरूष का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट वह चित्तवृत्ति प्रमा होती है। एवं तीन ही प्रमाण सांख्यों के द्वारा स्वीकार किये जाते हैं।

## पाठगत प्रश्न 12.4

1. शून्यवादियों ने किससे कार्योत्पत्ति को प्रतिपादित किया है?
2. अद्वैतवेदान्तियों के मत में प्रपञ्च किससे उत्पन्न होता है?
3. आरम्भवादी कौन हैं?
4. सांख्यों का कार्यकारणविषयक वाद क्या है?
5. सत्कार्यवाद का क्या सार है?
6. सांख्यकारिका में सत्कार्य को उपपादन करने के लिए कितनी युक्तियाँ समुपस्थित हैं, और वे क्या है?
7. सांख्य मत में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं?
8. सांख्य मत में प्रमाण क्या है?
9. सांख्य मत में प्रमा क्या है?
10. आप्त कौन हैं?

## पाठसार

सांख्यदर्शन ही आस्तिक दर्शन है, सांख्य सूत्रकार कपिल इस दर्शन के प्रवक्ता हैं। आसुरि-पञ्चशिख आदि कुछ प्राचीन सांख्याचार्य थे परन्तु इनके ग्रन्थ अब प्राप्त नहीं। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका ही अब सांख्य दर्शन के आकर ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है। सांख्य ही दैतवादी हैं। इनके मत में मूल तत्व दो हैं- प्रकृति और पुरूष। प्रकृति गुणत्रयात्मिका, जड, और अखिल जगत् का उपादान और निमित्त है। पुरूष चेतन, अकर्ता, उदासीन है। पुरूष बहुत हैं। पुरूष-सम्बन्धवश गुणत्रयात्मिक प्रकृति से बुद्धि तत्व, बुद्धितत्व से अहंकार, सात्विक अहंकार से ग्यारह (11) इन्द्रियाँ, तामस अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ, और पञ्च तन्मात्र, पञ्च महाभूत, ये पच्चीस तत्व अथवा पदार्थ सांख्य में स्वीकृत हैं। इनमें मूल प्रकृति प्रकृतिरूप अथवा कारणरूप हैं। बुद्धि, अहंकार, पञ्च तन्मात्राएँ ही प्रकृति-विकृति हैं। एकादश (11) इन्द्रियाँ, और पञ्च महाभूत केवल विकृति हैं। और पुरूष अनुभयरूप है।

जब पुरूष बुद्धि तत्व के साथ आत्मा से अभिन्न माना जाता है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख आदि आत्मा में ही हैं, ऐसा मानने वाला सुखी और दु:खी होता हुआ बद्ध होता है (बन्धन में पड़ता है)। और जब पुरूष को बुद्धि तत्व के साथ स्वयं के भेद का ज्ञान होता है अर्थात् सत्व-पुरूष की अन्यताख्याति होती है तब बुद्धि का अवसान होता

टिप्पणी

है। और पुरूष स्वरूप में प्रतिष्ठित होता हुआ मुक्त होता है। और जिनका उस प्रकार का प्रकृति-पुरूष का भेद ज्ञान नहीं होता है वे बद्ध ही होकर प्रकृति से उत्पन्न विषयों का भोग करते हैं। अत: पुरूष की मुक्ति और भोग के लिए प्रकृति की अपेक्षा रहती है, पुरूष के भोगापवर्ग रूप प्रयोजन को साधने के लिए प्रकृति की और पुरूष की भी अपेक्षा होती है। अत: प्रकृति-पुरूष पङ्गु-अन्धे के समान परस्पर सहायता से प्रपञ्च सृष्टि रूप कार्य करता है। सृष्टि में पुरूष का अवदान उसी प्रकार प्रकृति के साथ उसके सम्बन्ध मात्र अथवा प्रकृति में उसका प्रतिबिम्ब मात्र है, पुरूष के निष्क्रियत्व और साक्षित्व के कारण।

सांख्य सुख-दु:ख-मोहात्मक प्रपञ्च रूप कार्य को देखकर उसके सजातीय त्रिगुणात्मक प्रकृति तत्व का अनुमान करते हैं। और गुणत्रय सत्व, रजस् और तमस् है। कार्य के कारण सजातीयत्व को प्रदर्शित करने के लिए सांख्यायिक सत्कार्यवाद को स्वीकार करते हैं। सांख्य मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में अनभिव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है, करण व्यापार द्वारा कार्य की अभिव्यक्ति मात्र होती है। एवं लयकाल में कार्य उपादान में अनभिव्यक्त रूप में रहता है। इसीलिए घट मृत्तिका में चक्र भ्रमण-मृत्तिका स्थापन-कुम्भकारकर्तृक घटरूप दान आदि व्यापार से पूर्व ही अनभिव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। चक्रभ्रमण आदि व्यापार द्वारा मृत्तिका से घट की अभिव्यक्ति होती है। कभी दण्ड द्वारा घट का नाश होने पर अपने कारण मृत्तिका में पुन: अनभिव्यक्त रूप से रहता है। सांख्याचार्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, प्रमाणत्रय को स्वीकार करते हैं। इनके मत में इन्द्रिय से घट का सम्बन्ध होने पर जो घटाकार चित्तवृत्ति होती है, वही प्रमाण है। अत: नैयायिक जिसको व्यवसाय ज्ञान अथवा प्रमा कहते हैं, वह सांख्यमत में प्रमाण है, प्रमा नहीं।

घटाकार चित्तवृत्ति में जब पुरूष प्रतिबिम्बित होता है, तब पुरूष सम्बन्धी जो ज्ञान होता है- ''मैं घट को जानता हूँ'', वही प्रमा है। और यह नैयायिकों के द्वारा अनुव्यवसाय कहा जाता है। एवं इन्द्रिय सन्निकृष्ट-विषयाकार चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है। वहाँ पर 'मैं विषय का प्रत्यक्ष करता हूँ', यह पुरूष सम्बन्धी ज्ञान प्रमा है। व्याप्य-व्यापक ज्ञान-और पक्ष ज्ञानपूर्वक जो ज्ञान है वह अनुमान प्रमाण है। उससे उत्पन्न अनुमिति, यह अनुव्यवसाय ही अनुमिति है। आप्त वाक्य से जो वाक्यार्थ ज्ञान होता है, वह आगम प्रमाण है। तद्विषयक पौरूषेय ज्ञान ही आगम प्रमा है।

## पाठांत प्रश्न

1. आधिभौतिक दु:ख क्या है?
2. आधिदैविक दु:ख क्या है?
3. वाचस्पति मिश्र द्वारा लिखित सांख्य ग्रन्थ का नाम क्या है?

4. माठराचार्य द्वारा कौन सा ग्रन्थ रचित है?
5. महाभारत में उल्लिखित कुछ सांख्याचार्यों के नाम लिखिए।
6. पङ्गु-अन्ध-न्याय क्या है?
7. पुरूष के सत्व में क्या हेतु हैं?
8. पञ्च तन्मात्राएँ क्या हैं?
9. पृथिवी में क्या गुण हैं?
10. वायु में क्या गुण हैं?
11. तेज में क्या गुण हैं?
12. करण क्या हैं?
13. लिङ्ग पद का क्या अर्थ है?
14. लिङ्गी पद का क्या अर्थ है?
15. सांख्य में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-12.1**

1. योग दर्शन सांख्य दर्शन का समान तन्त्र दर्शन है।
2. दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति मोक्ष है।
3. दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति का अर्थ दु:ख के नाश के बाद पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, दु:ख की ऐकान्तिक निवृत्ति का अर्थ दु:ख का नाश अवश्य ही होता है।
4. दु:ख त्रिविध हैं- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।
5. वात्त, पित्त, कफ के वैषम्य से होने वाले रोग आदि से उत्पन्न शारीरिक और काम आदि से जन्य मानस दु:ख आध्यात्मिक हैं।
6. सांख्यायते अनया, इस विग्रह में सम् उपसर्गपूर्वक व्यक्तायां वाचि विद्यमानात् चक्ष् धातु के करण अङ् प्रत्यय में, स्त्रीत्व की विवक्षा से टाप् प्रत्यय से संख्या शब्द निष्पन्न होता है। इसमें संख्या है, यह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य है। अथवा सांख्यायाइदम्, यह विग्रह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य है।

टिप्पणी

7. संख्या सम्बन्धी सांख्य है, सम्यक् विचार अथवा सम्यक् ज्ञान इसमें, वह सांख्य है।
8. महर्षि कपिल
9. कपिल के शिष्य आसुरि, आसुरि का शिष्य पञ्चशिख।
10. सांख्य सप्तति
11. विज्ञानभिक्षु द्वारा
12. सांख्य प्रवचन सूत्र वृत्ति

## उत्तर-12.2

1. प्रकृति और पुरूष सांख्य मत में नित्य दो तत्व हैं।
2. जब पुरूष भ्रमवश बुद्धितत्व के साथ स्वयं के तादात्म्य का अनुभव करता है तब बुद्धिगत सुख, दु:ख को स्वयं में आरोपित करके मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ, ऐसा चिन्तन करता है।
3. सत्वपुरूषान्यताख्याति ही पुरूष के दु:ख ध्वंस रूप मोक्ष का कारण है।
4. सत्व, रजस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है।
5. सूक्ष्म होने के कारण।
6. भेदों के परिमाण से, समन्वय से, शक्ति की प्रवृत्ति के कारण, कारण कार्य के विभाग से, अविभाग से और वैश्व रूप का।
7. अव्यक्त स्वयं से उत्पन्न बुद्धि आदि में व्याप्य होकर रहता है, अत: अव्यक्त व्यापी है।
8. प्रकृति के कार्य की प्रकृति के अनुमान में लिङ्ग है।
9. नहीं, सत्व, रजस्, तमस् प्रकृति में तादात्म्य से रहते हैं। उन गुणें के प्रकृति स्वरूप के कारण।
10. सत्व गुण ही लघु और प्रकाशक है।
11. रजो गुण उपष्टम्भक और चल है।
12. तमो गुण गुरू और आवरणकर्ता है।
13. प्रदीप यहाँ उदाहरण है।

## उत्तर-12.3

1. पुरूष के संघाताभाव से, संघात के ही परार्थत्व से।

2. नहीं, प्रपञ्च-उत्पत्ति में पुरूष का सम्बन्ध मात्र अपेक्षित है।
3. चेतन और अविषय होने के कारण पुरूष साक्षी है।
4. जनन-मरण के प्रतिनियम से, अयुगवत् प्रवृत्ति से और त्रैगुण्यविपर्यय से।
5. आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, पञ्च महाभूत हैं।
6. वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ है।
7. पुरूष के संयोग वश जब प्रकृति में गुणों का वैषम्य होता है तब प्रकृति के महत् आदि क्रम से प्रपञ्च की सृष्टि होती है।
8. प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। बुद्धि अथवा सत्व, उसके पर्याय शब्द हैं।
9. महत् तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है।
10. तामस् अहंकार से उत्पन्न होते हैं।
11. पुरुष
12. सात्विक अहंकार से पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

**उत्तर-12.4**

1. असत् ही कार्योत्पत्ति को प्रतिपादित करते हैं।
2. चेतन ब्रह्म से उत्पन्न होता है।
3. नैयायिक ही आरम्भवादी हैं।
4. सत्कार्यवाद ही सांख्यों का कार्यकारणविषयकवाद है।
5. कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् (विद्यमान रहता है)।
6. पाँच। वे हैं- असदकरणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात् और कारणभावात्।
7. सांख्य मत में तीन प्रमाण हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।
8. प्रमा का करण प्रमाण है। और वह असन्दिग्ध, अविपरीत, अनधिगतविषया चित्तवृत्ति है।
9. प्रमा पौरूषेय बोध, प्रमाण जन्य है।
10. आप्त तो भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाट-वरहित यथार्थवक्ता है।

॥ बारह पाठ समाप्त॥

# 13

# योग दर्शन

## प्रस्तावना

भारतीय दर्शन ही मोक्ष शास्त्र रूप में प्रसिद्ध हैं। इन दर्शनों में कुछ वेद का प्रमाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन हैं। जो वेद का प्रमाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन हैं। चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, तीन नास्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं। और आस्तिक दर्शन छः हैं - सांख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय दर्शन वैशेषिक दर्शन, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा। सांख्य-योग दर्शन के सिद्धान्त साम्यता के दर्शन से इनकी समान तन्त्रता शास्त्रों में प्रतिपादित है।

सांख्य दर्शन में पच्चीत तत्व स्वीकार किये जाते हैं, योग दर्शन में ईश्वर रूप पुरूष विशेष स्वीकृत है। अतः छब्बीस (26) तत्व माने जाते हैं। सांख्य दर्शन में अहंकार तत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति प्रतिपादित है, योग दर्शन में बुद्धि तत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति प्रतिपादित की जाती है। सांख्य दर्शन में तत्व की श्रवण-मनन-निदिध्यासन में अधिक गुरूत्वता प्रदर्शित है, योग दर्शन में तो अष्टांग योग आदि साधनोपायों में अधिक गुरूत्व को प्रकाशित किया गया है। एवं कुछ पार्थक्य के अतिरिक्त सांख्य-योग दर्शनों के सभी सिद्धान्तों में ही सामञ्जस्य होता है। भारतीय दर्शनों में चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी दर्शन ही योग दर्शन के द्वारा प्रभावित है। इन सभी पर योग में प्रोक्त (कहे गए) साधनोपायों का अनुसरण दिखता है।

अतः सभी दर्शन प्रस्थानों में योग दर्शन ही प्राचीनतम है, यह कुछ प्रतिपादित करते हैं। इस प्रकार योग शास्त्र के अध्ययन के बिना इतर दर्शनों का हृदय नहीं समझा जा सकता है। उपनिषदों में भी योग का गुरूत्व प्रतिपादित है। और मोक्ष धर्म में कहा जाता है- ''नास्ति सांख्य समं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्''। अतः इस पाठ में योग दर्शन के मूल तत्वों की आलोचना की गई है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- योगदर्शन का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- योगदर्शन की आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- योग पदार्थ को जान पाने में;
- समाधि स्वरूप को जान पाने में;
- पञ्च चित्तवृत्तियाँ को जान पाने में;
- योग के आठ अंगों को जान पाने में;
- ईश्वर का स्वरूप जान पाने में।

## 13.1 योग दर्शन की आचार्य परम्परा

योग दर्शन सुप्राचीन है। उपनिषदों में योग के विषय में उक्तियाँ दिखती हैं। जैसे- ''यच्छेद् वान्नसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।'' (कठ 1. 3.13), ''तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ।।' (कठ 2.3.11), ''त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य। ब्रह्मोडूपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयानकानि।'' (श्वेताश्वतर 2.8) इत्यादि श्रुतियों में योग के विषय में सुगम्भीर आलोचना प्रकाशित है। इस योग के प्रोक्ता हिरण्यगर्भ है। याज्ञवल्क्य द्वारा कहा जाता है- ''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।'' एवं कठ-श्वेताश्वतर आदि प्राचीन उपनिषदों में शाण्डिल्योपनिषद्, योगराजोपनिषद्, हंसोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ध्यानविन्दूवनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, इत्यादि अर्वाचीन उपनिषदों में भी योग आलोचित है। परन्तु पृथक् दर्शन के रूप में योग का उपस्थापन पतञ्जलि के द्वारा ही स्व रचित योगसूत्र द्वारा विहित है।

पतञ्जलि प्रणीत योगसूत्र के अन्तर्गत ही योग दर्शन का प्रपञ्च अब दिखता है। यह पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि से भिन्न नहीं है, ऐसा सम्प्रदाय है। इसीलिए परम्परा वचन है-

**''योगन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।**
**योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।''**

यह मत स्वीकृत्य है कि पतञ्जलि ईस्वी पूर्व द्वितीय-तृतीय शताब्दी में हुए, ऐसा कहा जा सकता है। जैकोबी-गार्वे-प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिकों के मत में योगसूत्र पाँचवी शताब्दी

टिप्पणी

ईस्वी में रचित है। परन्तु यह मत दुर्बल है वह अनुसरणीय नहीं है तथा वैयक्तिक है।

योगसूत्र का भाष्य व्यासदेव द्वारा व्यासभाष्य और योगभाष्य नाम से प्रसिद्ध है। व्यासभाष्य के ऊपर वाचस्पति मिश्र की तत्व वैशारदी टीका और विज्ञान भिक्षु का योगवार्तिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त भी भोजराज की योगवृत्ति, रामानन्द सरस्वती की योगमणिप्रभा, राघवनन्दन की पातञ्जल रहस्य, अनन्त की योग चन्द्रिका, उदयशंकर का योगवृत्तिसंग्रह, उमापति त्रिपाठी की योगसूत्रवृत्ति, गणेश दीक्षित की पातञजलवृत्ति, ज्ञानानन्द की योगसूत्रविवृत्ति इत्यादि ग्रन्थ योगदर्शन में प्रसिद्ध हैं।

पतञ्जलि प्रणीत योगशास्त्र का अपरनाम सांख्यप्रवचन है। योगसूत्र ग्रन्थ में चार पाद हैं। वे हैं- समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। यह ग्रन्थ 195 सूत्रों से समन्वित है। इस पाठ में पतञ्जलि योगसूत्र और व्यास भाष्य के आधार पर विषय की आलोचना की जाएगी।

## पाठगत प्रश्न 13.1

1. योगशास्त्र के समान तन्त्र दर्शन कौन है?
2. सांख्य दर्शन से योगदर्शन का विलक्षत्व किन स्थलों पर होता है?
3. योग के प्रथम प्रवक्ता कौन हैं?
4. योगसूत्र के रचयिता कौन हैं?
5. कुछ योगोपनिषदों के नाम लिखिए।
6. योगसूत्र के ऊपर भाष्य किसके द्वारा रचित है?
7. योगसूत्र का अपर नाम क्या है?
8. योगसूत्र ग्रन्थ में कितने पाद हैं, उनके नाम लिखिए।

## 13.2 योग शब्दार्थ (योग शब्द का अर्थ)

युज् समाधौ, समाधि के अर्थ से युज्-धातु से घञ्-प्रत्यय, होने पर योग शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ घञ् प्रत्यय भाव और करण में प्रयुक्त है। युज्यते अनेक इति योगः इस करण व्युत्पत्ति से निष्पन्न योग शब्द द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि का बोध होता है, योजनं योगः, इस भाव व्युत्पत्ति से निष्पन्न योग शब्द का अर्थ असम्प्रज्ञात समाधि है। भावे घञ्, यह प्रत्यय विधान सूत्र भाव में है, और करणे घञ्-प्रत्यय विधान का सूत्र तो

करण अधिकरण में है। 'युजिर् योगे', यहाँ युज् धातु सम्बन्ध सामान्य का वाचक है। अत: उसका यहाँ ग्रहण नहीं है।

योग शास्त्र में केवल समाधि के विषय में आलोचना प्रवर्तित नहीं है, योगसाधना, योगफल और अभ्यास-वैराग्य की आलोचना भी दिखती है। परन्तु योगशास्त्र, इस कथन से ही वे भी जाने जाते हैं। तथा राजासौ गच्छति, अर्थात् सपरिवार सेना-मन्त्री सहित ही राजा का गमन बोधित होता है वैसे ही योगशास्त्र का अर्थ योग सम्बन्धी इतर विषयों का अच्छी प्रकार से ग्रहण होता है। अत: युजिर् योगे, इस सम्बन्ध-सामान्य बोधक युज्-धातु से योग शब्द की निष्पत्ति स्वीकार करके समाधि सम्बद्ध विषयों की गौरव के लिए सूचना है। और व्यास द्वारा योग पदार्थ कहा जाता है- 'योग: समाधि:'। यहाँ योग सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि का बोधक होता है।

## 13.3 समाधि-स्वरूप और उसके भेद

'योग: समाधि:', यह पर्याय है। योग के स्वरूप विषय में पतञ्जलि द्वारा कहा जाता है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'। चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियाँ पाँच हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन चित्तवृत्तियों की आलोचना आगे की जाएगी। इन चित्तृवृत्तियों का निरोध चित्त की सभी भूमियों में ही होता है। और चित्तभूमियाँ पाँच हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त चित्तभूमियों में जो चित्तवृत्ति निरोध होता है, वह योग नहीं कहलाता है। वहाँ निरूद्धभूमि में असम्प्रज्ञात समाधि होती है। अत: एकाग्र भूमि और निरूद्ध भूमि में चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तभूमियों का स्वरूप नीचे आलोचित है।

चित्त की भूमि चित्त की स्वभाविक अवस्था है। जिस भूमि में अथवा जिस अवस्था में चित्त अत्यन्त अस्थिर रहता है, अतीन्द्रिय विषयों के चिन्तन के लिए धैर्य अथवा शक्ति चित्त की जिस भूमि में नहीं रहता है, वही क्षिप्त भूमि है। कभी प्रबल, हिंसा आदि प्रवृत्तियों के हेतु का इस अवस्था में भी चित्त समाहित होता है। यथा महाभारत में जयद्रथ का पाण्डव द्वेष वश शिव में चित्त समाधान हुआ। जिस अवस्था में चित्त किसी इन्द्रिय विषय में मुग्ध होकर तत्व-चिन्तन में असमर्थ होता है, वही मूढ़भूमि है। क्षिप्त की अपेक्षा से इस भूमि में इन्द्रिय-भोग्य विषयों में सरलता से चित्त समाहित होता है। स्त्री, धन आदि लाभ के लिए लोगों के चित्त समाधान प्रसिद्ध ही है। एवं मूढ़ अवस्था में कभी भी चित्त समाधान होता है। जिस भूमि में चित्त कभी स्थिर होता है अथवा कभी चञ्चल रहता है, वही विक्षिप्तभूमि है। साधकों की यह भूमि होती है। सामयिक स्थैर्य के कारण से इस अवस्था में श्रवण, मनन आदि द्वारा वस्तु का स्वरूप अवधारण सुकर होता है। मेधा-सद्वृत्ति आदि के न्यूनाधिक्य से विक्षिप्त चित्त के मनुष्य भी बहुविध होता हैं। विक्षिप्त चित्त में भी समाधि होती है परन्तु वह दीर्घकालस्थायी नहीं होती है। एक (वस्तु) को अवलम्बित करके जिसका चित्त होता है, एकाग्र चित्त

है। जिस भूमि में चित्त की एक वृत्ति-निवृत्ति के अनन्तर तद्नुरूप ही वृत्ति उदित होता है एवं अनुरूप वृत्तियों का प्रवाह निरवच्छिन्न रहता है, वही एकाग्रभूमि है। एकाग्र भूमि में सम्प्रज्ञात समाधि होती है। अन्तिम चित्तभूमि निरूद्ध भूमि है। जिस भूमि में सभी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है और संस्कार मात्र शेष रहता है, वह निरोध भूमि है। निरोध भूमि में चित्त के विलीन होने पर कैवल्य होता है। निरूद्ध भूमि में ही असम्प्रज्ञात समाधि अथवा निर्बीज समाधि होती है। क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त भूमियों में चित्तवृत्ति निरोध के स्थायित्व के अभाव से उन चित्तवृत्ति निरोध का योग पद द्वारा कथन नहीं ही होता है।

चित्तवृत्ति निरोध रूप योग दो प्रकार का है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। जिसमें ध्येय का यथार्थ स्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि है। इस समाधि में ध्येय भिन्न चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, ध्येयाकार ही वृत्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटि रहती है। 'योगः चित्तवृत्ति निरोधः', यहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ का निरोध नहीं कहा गया है, अतः योग का लक्षण सम्प्रज्ञात योग में भी जाता है। सम्प्रज्ञात समाधि-वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत चार प्रकार की है। इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य स्थूल विषयों में और वराट्-पुरूष-चतुर्भुजादि स्थूल मूर्तियों के विषय में वृत्तिधारा होती है। तो वितर्कानुगत समाधि होती है। स्थूल कारणभूत तथा सूक्ष्म विषयों में जब वृत्तिधारा होती है तब विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। स्थूल कार्य से विचार द्वारा ही सूक्ष्म कारण का ज्ञान उत्पन्न होता है, इस हेतु की सूक्ष्मविषयक सम्प्रज्ञात समाधि विचारानुगत होती है। सात्विक अहंकार से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्द्रिय विषयक चित्तवृत्ति में सत्य में आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसीलिए प्राणायाम आदि के द्वारा शरीर सुस्थिर होता है कि शरीर में सुखमय बोध होता है, उस प्रकार के सुख मात्र को अवलम्बित करके ध्यान में रखते हुए सानन्द सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इन्द्रियों की अस्मिता की अपेक्षा से स्थूलत्व के कारण, इन्द्रियों की अस्मिता कार्यत्व के कारण। अस्मिता के ग्रहण के विषय में समाधि अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। ये चार प्रकार के समाधि भी सालम्बन हैं। इनमें पुनः वितर्कानुगत और विचारानुगत ग्राह्य विषयक हैं, आनन्दानुगत ग्रहण विषयक और अस्मितानुगत ग्रहीत विषयक हैं।

सभी वृत्तियों का निरोध होने पर असम्प्रज्ञात समाधि होती है। असम्प्रज्ञात समाधि में निरोध संस्कार के कारण व्युत्थान संस्कार द्वारा वृत्तियों की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः असम्प्रज्ञात समाधि संस्कार शेष कहलाती है। और यह समाधि आलम्बन रहित परवैराग्य द्वारा साध्य है। निरालम्बन और निर्विषय होने के कारण कर्मबीज के अभाव वश यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भाव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय। इन दोनों में उपाय प्रत्यय उत्कृष्ट तथा भव प्रत्यय तो निकष्ट है। विदेह देवों की और प्रकृति लीनों की समाधि भवप्रत्यय अविद्यामूलक है। योगियों के ही श्रद्धा आदि उपाय जन्य हैं। चौबीस जड़तत्वों के उपासक ही विदेह और प्रकृतिलीन होते हैं। इसीलिए मूल प्रकृति अव्यक्त के, प्रकृति-विकृति महत् तत्व, अहंकार और शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध नामक सूक्ष्म पञ्च तन्मात्राओं के उपासक असम्प्रज्ञात समाधि में होने पर प्रकृतिलीन

होते हैं। केवल विकृति एकादश इन्द्रियों और पञ्च स्थूलभूतों के उपासक असम्प्रज्ञात समाधि में विदेह होते हैं। इन समाधियों के अज्ञान मूलक होने से ऊर्ध्व लोक से पुनः मोक्ष प्राप्ति के लिए साधकों की पुनरावृत्ति होती है। और वायुपुराण में कहा जाता है-

**दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः।**
**भौतिकास्तु शतं पूर्ण सहस्रं त्वाभिमानिकाः।**

**बौद्धा दश सहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः।**
**पूर्ण शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः।**
**निर्गुणं पंरूषं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते।**

इन्द्रियोपासकों का मुक्तिकाल दशमन्वन्तर, सूक्ष्मभूत उपासकों के सौ मन्वन्तर, अहंकारोपासकों के हजार मन्वन्तर, बुद्धि उपासकों के दस हजार मन्वन्तर, प्रकृति उपासकों के लाख मन्वन्तर हैं। निर्गुण पुरूष की प्राप्ति में पुनः प्रत्यावृत्ति नहीं होती है। उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि योगियों के श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञापूर्वक होती है। उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि ही कैवल्य जनक होता है।

## पाठगत प्रश्न 13.2

1. योगशब्द की व्युत्पत्ति क्या है?
2. योगशब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है?
3. योग स्वरूप प्रत्यायक पातञ्जल सूत्र क्या है?
4. चित्तवृत्तियाँ कितनी हैं, और वे क्या हैं?
5. चित्तभूमियाँ कितनी हैं और वे क्या हैं?
6. एकाग्र भूमि और निरूद्धभूमि में किस प्रकार की समाधि होती है?
7. निरूद्धभूमि क्या है?
8. समाधि कितने प्रकार की है, और वे क्या हैं?
9. सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
10. सम्प्रज्ञात समाधि कितने प्रकार की है, और वे क्या हैं?
11. वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
12. आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
13. असम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
14. असम्प्रज्ञात समाधि कितनी हैं और वे क्या हैं?

15. भव प्रत्यय समाधि क्या है?

16. उपाय प्रत्याय असम्प्रज्ञात समाधि क्या है?

## 13.4 चित्तवृत्तियाँ

चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर समाधि होती है। चित्तवृत्तियों का नाम चित्त का परिणाम विशेष है। यथा मृदा के परिणाम भूत घट आदि तथा चित्त की अवस्था विशेष ही ये चित्तवृत्तियाँ है। योगशास्त्र में पाँच चित्तवृत्तियों की आलोचना है। जब वे मोक्ष सहायिका होती है। तब वे अक्लिष्टा है, और जब मोक्षविरोधी होती हैं तब क्लिष्टा कहलाती है। पाँच चित्तवृत्तियाँ हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। अत: योगसूत्र में पतञ्जलि द्वारा सूत्रित हैं- वृत्तय: पञ्चत-य: क्लिष्टाक्लिष्टा: (योगसूत्र-1.5) और 'प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा- स्मृतय:' (योगसूत्र-1.6)। ये चित्तवृत्तियाँ ज्ञानात्मक हैं। इन चित्तवृत्तियों की आलोचना नीचे विधीत है।

प्रमा का करण प्रमाण है। पुरूष प्रतिबिम्ब सहित असन्दिग्ध-अविपरीत अनधिगत विषय युक्त चित्तवृत्ति ही प्रमा है। प्रमाण ही असन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषय चित्तवृत्ति है। सांख्य के समान योग मत में भी प्रमा प्रमाण दोनों ज्ञानात्मक होते हैं। अत: घटप्रत्यक्ष के समय जब चक्षु इन्द्रिय का घट से सम्बन्ध होता है तब बुद्धि चक्षु द्वारा घट से सम्बन्ध को प्राप्त करती हैं, और घटाकार से परिणत होती हैं। यह घटाकारा चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। जब स्वच्छाया चित्तवृत्ति में पुरूष प्रतिबिम्बित होता है तब घटाकारा चित्तवृत्ति पुरूष प्रतिम्बित विशिष्ट होती है। वही पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट घटाकारा चित्तवृत्ति की घटविषयी प्रमा है और उसका स्वरूप है-मैं घट को जानता हूँ। घटाकार रूप चित्तवृत्ति ही घट ज्ञान है, वह घट ज्ञान तो प्रमाण है। घट ज्ञान के साथ जब पुरूष का सम्बन्ध होता है तब ''मैं घट को जानता हूँ'', यह 'अहम्' (मैं) पद कहने वाले पुरूष के साथ सम्बद्ध ज्ञान ही प्रमा होती है। वाचस्पति मिश्र द्वारा प्रमाण का लक्षण उक्त है- ''असन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्ति:''। वृक्ष कपि (वानर) के संयोग वाला है अथवा नहीं इत्यादि सन्देह में अतिव्याप्ति वारण के लिए 'असन्दिग्ध' होता है। अविपरीत पद का अर्थ अबाधितत्व है। भ्रम ज्ञान में अतिव्याप्ति के वारण के लिए यह पद उपयुक्त है। शुक्ति-रजत आदि भ्रमों में रजत आदि विषय उत्तर ज्ञान से बाधित होते हैं। अत: उनका बाधितत्व है, अबाधितत्व नहीं। अनधिगत पद स्मृति में अतिव्याप्ति के वारण के लिए दिया गया है। घट-प्रत्यक्ष के काल में ही घट अधिगत होता है, अधिगत विषय के संस्कार के कारण अधिगत विषय में स्मृति होती है। अत: संशय, भ्रम और स्मृति का प्रमाणत्व नहीं। और वह प्रमाण तीन प्रकार का है- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। और पतञ्जलि द्वारा सूत्रित है-''प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि'' (योगसूत्र 1.7)। इस प्रकार इन्द्रिय सन्निकृष्ट वस्तु में चित्त उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। यथा चक्षु इन्द्रिय सन्निकृष्ट घट में चित्तसम्बन्ध के कारण जो घट व्यक्ति अवधारण प्रधान चित्तवृत्ति उत्पन्न

होती है वह घटाकार चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह्नि आदि के तुल्य जातियों में पर्वत आदि पक्ष सदृशों में, महानस आदि सपक्षों में विद्यमान, भिन्न जातियों में जलह्रद (सरोवर) आदि में अवर्तमान जो धूम-अग्नि का अविनाभाव सम्बन्ध है, तद्विषयी सामान्य रूप अवधारणप्रधान वृत्ति अनुमान कहलाती है। अतः पर्वत अग्निवाला है, यह ज्ञान ही अनुमान होता है। आप्त वाक्य से तदर्थ विषयी जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वही आगम प्रमाण है। अतः वाक्यार्थ विषयी वृत्ति ही यहाँ आगम प्रमाण है, ऐसा तात्पर्य है।

बाधित विषयी चित्तवृत्ति ही विपर्यय है। विपर्यय मिथ्याज्ञान है, इस ज्ञान में जो विषय होता है, वह प्रमाणरूप उत्तर ज्ञान से बाधित होता है। जैसे रस्सी में भ्रम के कारण सर्पाकार वृत्ति ही विपर्यय वृत्ति है। और सूत्रित है-विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूप प्रतिष्ठम्। शब्द ज्ञान को अनुसरण करके समुत्पन्न जिस चित्तवृत्ति में विषय नहीं रहता है, वह वस्तु शून्य चित्तवृत्ति ही विकल्प कहलाती है। जैसे शशशृंग आदि शब्द आकर्ण्य तदाकार वृत्ति उत्पन्न होती है परन्तु शशशृंग जैसे वस्तु ही नहीं है। यही चित्तवृत्ति विकल्प कहलाती है। इसीलिए योगसूत्र में-शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः। चित्त की जिस अवस्था में बाह्य इन्द्रिय जन्य जाग्रत वृत्ति और मन द्वारा उत्पन्न स्वप्न वृत्ति नहीं रहती है, तब अभाव प्रत्यय ही चित्त का आलम्बन होता है। एवं जो अभाव प्रत्यय विषयी चित्तवृत्ति है, वही निद्रा है। सूत्र है-अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। प्रमाण, विपर्यय आदि द्वारा अधिगत पदार्थ ही विषय है जिस चित्तवृत्ति का, वही स्मृति है। संस्कार के द्वारा अनुभव स्मृति का जनक होता है। तथा योगसूत्र में-अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतः। अभ्यास और वैराग्य से इन चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

## पाठगत प्रश्न 13.3

1. कब चित्तवृत्तियाँ क्लिष्ट अथवा अक्लिष्ट होती हैं?
2. प्रमाण किसका नाम है?
3. योग मत में कितने प्रमाण हैं और वे क्या हैं?
4. प्रमा क्या है?
5. प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?
6. घट प्रत्यक्ष स्थल पर प्रत्यक्ष प्रमा का क्या रूप है?
7. विपर्यय क्या है?
8. विकल्प क्या है?
9. निद्रा क्या है?
10. स्मृति क्या है?

टिप्पणी

## 13.5 योग के आठ अङ्ग

सांख्य के समान योगमत में प्रकृति और पुरूष दो नित्य तत्व हैं। प्रकृति से बुद्धि तत्व उत्पन्न होता है। पुरूष ही अङ्ग, चेतन और निष्क्रिय है। जड़ बुद्धि में सुख-दु:ख आदि होते हैं, सुख, दु:ख आदि का अभाव भी बुद्धि से ही होता है। जब पुरूष अविद्या वश बुद्धितत्व के साथ तादात्म्य को अनुभव करता है तब बुद्धिगत सुख, दु:ख का उपभोग करके बद्ध होता है, और जब पुरूष बुद्धि के साथ स्वयं का भेद जानता है तब बुद्धिगत सुख-दु:ख को अनुभव नहीं करता है। पुरूष तब अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है, और मुक्त हो जाता है। पुरूष नित्य मुक्त है, उसकी अपने स्वरूप में स्थिति ही मोक्ष है। मोक्ष में कारण बुद्धि-पुरूष का विवेक ज्ञान है। वही सत्वपुरूषान्यताख्याति, सदसत्ख्याति, विवेकी इत्यादि पदों के द्वारा कहा जाता है। इस विवेक ख्याति के साधन रूप में अष्टांग योग का निरूपण योगशास्त्र में व्याख्यायित है। वे आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनका निरूपण नीचे दिया गया है।

यम- पातञ्जल सूत्र है- ''अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमा:''। अहिंसा भूतों की प्राण-हरण से विरक्ति है। सत्य यथार्थ वाणी अथवा यथार्थ मन है। वैसे ही प्रत्यक्ष, अनुमिति अथवा आगम द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसके अनुसार ही प्रयुक्त भूत (जीव) हितकर वाक्य सत्य होता है। मन का भी अभिप्राय यही हो कि जो अर्थ ज्ञात है, वही अर्थ अन्य की बुद्धि में प्रकाशित हो। स्वयं के अभिप्राय से अन्तर के कारण अपरार्थबोधक वाक्य सत्य नहीं होता है। उससे मन के भी अर्थ अनुयायित्व को अभिप्रेत करके सत्यत्व को कहा गया है। अत: 'अश्वत्थामा मर गया' यह युधिष्ठिर का वाक्य भी सत्य नहीं होता है। जीवों का अहितकर वाक्य भी सत्य पद वाच्य नहीं होता है। स्तेय अशास्त्रपूर्वक दूसरे के द्रव्यों को स्वीकार करना है। 'न स्तेयम्' अर्थात् अस्तेय है। मन से वाक्य अथवा कर्म में परद्रव्य पर स्पृहाभाव ही अस्तेय है। चोरी से विरक्ति ही अस्तेय है। उपस्थ और अन्य इन्द्रियों का संयम ही ब्रह्मचर्य है। अथवा अष्टांग मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य है। दक्ष मुनि द्वारा कहा जाता है-

**''स्मरणं कीर्तनं केलि: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।**
**संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च॥**
**एतन्मैथुनमष्टान्न प्रवदन्ति मनीषिण:।**
**विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥''**

भोग्य के विषयों का असंग्रह ही अपरिग्रह है। प्राणधारण के लिए उपयुक्त द्रव्य मात्र को संग्रह करने वाला योगी है। भोग्य के विषयों के अर्जन, रक्षण और क्षय होने पर दु:ख ही उत्पन्न होता है। अत: भोग्य के विषयों के संग्रह से विरति ही अपरिग्रह है। जाति-देश-काल नियमान्तरों के द्वारा अनवच्छिन्न यम महाव्रत कहा जाता है।

टिप्पणी



**नियम**- नियम के विषय में पातञ्जल योगसूत्र में- ''शौच-सन्तोष- तप:-स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा:''। शौच दो प्रकार का है- बाह्य और आभ्यन्तर। मृदा, जल आदि द्वारा शरीर का प्रक्षालन ही बाह्य शौच है और आभ्यन्तर द्वेष, असूया आदि चित्तमलों का दूरीकारण है। सन्तोष अर्थात जीवन धारण के लिए जो उपकरण प्राप्त है उससे अधिक की अनाकांक्षा। सन्तोष ही सुख का मूल है। और कहा जाता है-''सन्तोषादुत्तमसुखलाभ:''। तप अर्थात् शुभ-अशुभ, सुख-दु:ख, शीत-ग्रीष्म इत्यादि द्वन्द्वों को सहन करना। कृच्छ, चान्द्रायण अदि व्रत तप पद द्वारा कहे जाते हैं। उपनिषद्, गीता आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन अथवा ओंकार का जप स्वाध्याय है। परमगुरू ईश्वर में सभी कर्मो का समर्पण ही ईश्वर-प्रणिधान है।

**आसन**- जिस स्थिति में स्थिर एवं सुख से दीर्घकाल की स्थिति सम्भव होती है, वह आसन होता है। और कहा जाता है- ''स्थिरसुखम् आसनम्''। पद्मासन, वीरासन, स्वस्तिकाासन, दण्डासन इत्यादि आसन के उदाहरण हैं।

**प्राणायाम**- प्राणवायु अथवा श्वास-प्रश्वास का संयम ही प्राणायाम है। और सूत्रित है - ''श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छे प्राणायाम्:''। इसीलिए बाहरी वायु का अन्दर ग्रहण श्वास और प्रश्वास अन्त:स्थ वायु का बाहर नि:सारण है। उनकी गतिविच्छेद का अर्थ उनका अभाव है।

**प्रत्याहार**- जब चित्त एकाग्र होकर शब्द आदि विषयों के द्वारा प्रतिनिवृत्त होता है तब इन्द्रियाँ भी स्थिर होती हैं, यह स्वाभाविक इन्द्रिय-निरोध ही प्रत्याहार कहलाता है। तथा सूत्र है- ''स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:''।

**धारणा**- विषयान्तर से प्रतिनिवृत्त चित्त का नाभि-चक्र आदि देशों में देवतामूर्ति विशेष में लग्नता ही धारणा है। और सूत्रित है - ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा''।

**ध्यान**- जहाँ चित्त स्थिरीकृत होता है, वहाँ चित्तवृत्ति की एकान्तता ही ध्यान है। एवं प्रत्ययान्तर से अनन्तरित के सदृश प्रत्यय-प्रवाह ही ध्यान है। और सूत्र है - तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''।

**समाधि** - ध्यानावस्था जब परिपक्व होती है, और जब ध्यान-ध्याता का प्रतिभास नहीं होता, ज्ञेयमात्र ही प्रतिभासित होता है, वह स्थिति समाधि कहलाती है। और सूत्रित है- ''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप- शून्यमिव समाधि:''। और यह समाधि योगाङ्ग है, यह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि की साधनभूत है। धारणा-ध्यान-समाधि सम्प्रज्ञान समाधि के अंतरंग साधन हैं और असम्प्रज्ञात समाधि के बहिरंग साधन है। विज्ञानभिक्षु के मत में इस योगाङ्गभूत समाधि में जहाँ विषय में चित्त एकाग्र होता है, उस विषय का ही प्रकाश होता है, उस विषय के सभी धर्मो का साक्षात्कार नहीं होता है। सम्प्रज्ञात समाधि में ही ध्येय का अशेषविशेष का साक्षात्कार होता है। उससे परवैराग्य की उत्पत्ति में क्रम से असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

टिप्पणी

## 13.6 ईश्वर का स्वरूप

योगदर्शन ईश्वर को स्वीकार करने से सांख्य दर्शन से विलक्षण होता है। योगदर्शन में अतः ईश्वर को स्वीकार करके छब्बीस (26) तत्व होते हैं। परवैराग्य प्राप्ति के अनन्तर श्रद्धा, वीर्य आदिपूर्वक असम्प्रज्ञात समाधि होती है। और वह समाधि ईश्वर-प्रणिधान द्वारा सिद्ध होती है। प्रणिधान भक्ति है। योगवात्तिक में विज्ञानभिक्षु द्वारा कहा जाता है- ''कामतोऽकामतो वापि यत् करोमि शुभाशुभम्। तत् सर्वं त्वयि सन्नयस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्।।'' ईश्वर प्रणिधान के द्वारा ईश्वर-अभिमुखीनता होती है। और उससे ईश्वर अनुग्रह के कारण अन्तरायण का दूरीकरण और समाधि-लाभ होता है।

ईश्वर कौन है, इस प्रश्न के होने पर पतञ्जलि के द्वारा कहा जाता है- ''कलेश-कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूष विशेष ईश्वरः''। ईश्वर ही पुरूष विशेष है, और वह नित्यमुक्त है। बद्ध पुरूष विवेकख्याति प्राप्ति के अनन्तर मुक्त होने से ईश्वर नहीं होता है, ईश्वर का कभी भी बन्धन नहीं होता। ईश्वर के अविद्या अस्मिता आदि क्लेश नहीं होते है। धर्म-अधर्म आदि रूप कर्मो में और उनके फल जन्म, आयु-भोग आदि ईश्वर के नहीं होते हैं। ईश्वर का भोगानुकूल संस्कार आशय भी नहीं होता है। इस प्रकार के ईश्वर के अनुग्रह से बद्धपुरूषों की समाधि और समाधि के सकल दुःखों की आत्यन्तिक-ऐकान्तिक नाश रूप मोक्ष की सिद्धि होती है।

ईश्वर सर्वज्ञ है, उसमें सर्वातिशयी ज्ञान होता है। और ईश्वर काल के द्वारा अनवच्छिन्न है। अतः कल्प आदि में उत्पन्न ब्रह्मा आदि काल से अवच्छिन्न हैं। ईश्वर ही उन ब्रह्मा आदि का गुरू है। उस ईश्वर का वाचक शब्द ओंकार होता है। प्रणव के जप और प्रणवार्थ ईश्वर के चिन्तन से योगी का चित्त एकाग्र होता है। एवं प्रणव के जप से और प्रणवार्थ ईश्वर के चिन्तन से बद्ध पुरूष के स्वरूप साक्षात्कार और अन्तरायाभाव होते हैं। योग के नौ बाधक हैं- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, विरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध-भूमित्व और अनवस्थितत्व। यद्यपि योग के मत में ईश्वर जगत् का स्रष्टा नहीं है तथापि उपास्य रूप में, मोक्ष-फलोपयोगी और समाधि-प्रदाता के रूप में उसका वर्णन योगशास्त्र में उपनिबद्ध है।

### पाठगत प्रश्न 13.3

1. योग के आठ अंग कौन से हैं?
2. यम क्या है?
3. अहिंसा क्या है?
4. अपरिग्रह क्या है?

5. नियम क्या है?
6. आसन क्या है?
7. प्राणायाम क्या है?
8. प्रत्याहार क्या है?
9. धारणा क्या है?
10. ध्यान का स्वरूप लिखिए।
11. ईश्वर क्या हैं?
12. क्लेश क्या है?
13. ईश्वर प्रणिधान क्या है?

## पाठसार

भारतीय आस्तिक दर्शनों में योगदर्शन अन्यतम है। सांख्य दर्शन और योगदर्शन समान तन्त्र हैं। योगदर्शन सुप्राचीन है। उपनिषदों में भी योग का उल्लेख दिखाई देता है। हिरण्यगर्भ ही योग के प्रथम वक्ता हैं। योगसूत्र की रचना के माध्यम से पतञ्जलि ने दर्शनरूप में इसकी स्थापना की। योगसूत्र के ऊपर व्यास का भाष्य प्रसिद्ध है। पतञ्जलि प्रणीत योगशास्त्र का अपर नाम सांख्य प्रवचन है।

योगपद का अर्थ है 'समाधि'। समाधि पद से यहाँ सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात का बोध होता है। समाधि अर्थक युज् धातु के करण और भाव में धञ् प्रत्यय होने पर योग शब्द सिद्ध होता है। पतञ्जलि द्वारा सूत्रित है- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। और पाँच चित्तवृत्तियाँ है- प्रमाण, विवर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। इन चित्तवृत्तियों का निरोध चित्त के सभी भूमियों में होता है परन्तु वे सभी निरोध समाधि पद वाच्य होते हैं। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध पाँच चित्तभूमियाँ हैं। एकाग्र भूमि में सम्प्रज्ञात समाधि होती है और निरूद्ध भूमि में असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

जिस समाधि में ध्येय का यथार्थ स्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि है। इस समाधि में ध्येय भिन्न वृत्तियों का निरोध होता है, ध्येयाकार ही वृत्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में ही ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटि का बोध होता है। और वह सम्प्रज्ञात समाधि वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत चार प्रकार की है। ये चार प्रकार की समाधियाँ सालम्बना हैं। इनमें वितर्कानुगत स्थूल विषय को अवलम्बित करता है और विचारानुगत सूक्ष्म विषय को। अतः ये ग्राह्य विषय हैं। आनन्दानुगत इन्द्रियविषयक, अतः यह ग्रहण विषयक है, ऐसा कहा गया है। और अस्मितानुगत ग्रहीता विषयक है। सर्ववृत्तियों के निरोध में ही असम्प्रज्ञात समाधि होती है। यह समाधि आलम्बनरहित

परवैराग्य से साध्य है। निरालम्बन और निर्विषय होने से कर्मबीजीभाव के कारण यह समाधि निर्बीज समाधि भी कही जाती है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भवप्रत्यय और उपाय प्रत्यय। देवों की और प्रकृतिलीनों की समाधि भवप्रत्यय है, और वह अविद्यामूलक है, अत: उपायप्रत्यय से निकृष्ट है। योगियों के श्रद्धा आदि उपाय जन्य असम्प्रज्ञात समाधि उपायप्रत्यय नाम से व्यपदिष्ट है।

सांख्य दर्शन के समान योगदर्शन में भी प्रकृति-पुरूष विवेक ज्ञान ही दु:ख ध्वंस रूप मुक्ति स्वीकृत है। और उन सत्वपुरूषन्यताख्याति अथवा प्रकृति-पुरूष विवेकज्ञान को प्राप्त करने के लिए अष्टागों का आचरण अपेक्षित है। और वे अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

योगदर्शन में ईश्वर स्वीकृत हैं। और वह ईश्वर पुरूष विशेष हैं और उनमें क्लेश-कर्म-विपाक-आशय का संस्पर्श नहीं होता है। और सूत्रित है- ''क्लेश-कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरूषविशेष ईश्वर:''। ईश्वर के प्रणिधान से ईश्वर प्रसाद होने पर उनकी कृपा द्वारा समाधि लाभ होता है और उससे मुक्ति सम्भव होती है। उस ईश्वर का वाचक ओंकार है। ओंकार के जप से ओंकार वाच्य पुरूष के अनुचिन्तन द्वारा बद्धपुरूष के स्वरूप साक्षात्कार होते हैं। तत्वलाभ के लिए जो उपाय योगशास्त्र में उपदिष्ट हैं, वे न्याय-वेदान्त आदि दर्शनों में भी स्वीकृत हैं। अत: योगदर्शन का सर्व प्राचीनतत्व और गुरूत्व सम्यक रूप से जाना जा सकता है।

## पाठान्त प्रश्न

1. सत्य क्या है?
2. योगवृत्ति नुगत समाधि क्या है?
3. अस्मिता नुगत समाधि क्या है?
4. विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
5. धारणा क्या है?
6. ब्रह्मचर्य क्या है?
7. चित्त की विक्षिप्त भूमि क्या है?
8. चित्त की मूढ़भूमि क्या है?
9. सम्प्रज्ञात समाधि किस चित्त भूमि में होती है?
10. अनुमान प्रमाण क्या है?
11. योगमत में आगम प्रमाण क्या है?

12. चित्तवृत्तियों का निरोध कैसे होता है?
13. अष्टांग मैथुन क्या है?
14. महाव्रत क्या है?
15. शौच कितने प्रकार का है?
16. सन्तोष क्या है?
17. तप क्या है?
18. स्वाध्याय क्या है?
19. ईश्वर प्रणिधान क्या है?
20. वितर्कानुगत और विचारानुगत क्या विषय हैं?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-13.1

1. सांख्यदर्शन
2. योगदर्शन में ईश्वर स्वीकृत हैं, और बुद्धितत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति स्वीकृत है।
3. हिरण्यगर्भ
4. पतञ्जलि
5. शण्डिल्योपनिषद्, योगराजोपनिषद्, हंसोपनिषद्, नादबिन्दुपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, योगकुण्डल्यूपनिषद् इत्यादि।
6. व्यास द्वारा रचित और वह व्यासभाष्य नाम से प्रसिद्ध है।
7. सांख्य प्रवचन
8. योगदर्शन में समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद ये चार पाद हैं।

### उत्तर-13.2

1. युज् समाधौ, युज् धातु के करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय होने पर योग शब्द निष्पन्न होता है।
2. 'करणे धञ्', निष्पन्न योग शब्द का सम्प्रज्ञात समाधि अर्थ है, 'भावे घञ्' निष्पन्न योगशब्द का असम्प्रज्ञात समाधि अर्थ है।

टिप्पणी

3. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

4. चित्तवृत्तियाँ पाँच हैं। और वे प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति है।

5. चित्तभूमियाँ पाँच हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध।

6. एकाग्रभूमि में सविकल्पक समाधि और निरूद्धभूमि में निर्विकल्पक समाधि होती है।

7. जिस भूमि में सभी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, और संस्कार मात्र बचते हैं, वही निरोध भूमि है।

8. समाधि दो प्रकार की है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

9. जहाँ समाधि में ध्येय का यथार्थस्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है और ध्येय भिन्न चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, वही सम्प्रज्ञात समाधि है।

10. सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की है- वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत।

11. इन्द्रिय ग्राह्य स्थूलविषयों में विराट्-पुरूष-चतुर्भुज आदि स्थूल मूर्ति के विषय में समाधि ही वितर्कानुगत सम्प्रज्ञान समाधि है।

12. इन्द्रिय-विषय में सम्प्रज्ञात समाधि ही आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है।

13. जहाँ समाधि में निरोध संस्कार के कारण व्युत्थान संस्कार के द्वारा वृत्तियों की उत्पत्ति नहीं होती वह संस्कार शेष समाधि असम्प्रज्ञात समाधि है। यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है।

14. असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भवप्रत्यय और उपाय प्रत्यय।

15. अव्यक्त आदि चौबीस जड़ तत्व विषयक असम्प्रज्ञात समाधि भवप्रत्यय है।

16. श्रद्धा आदि उपाय वश जो असम्प्रज्ञात समाधि होती है, वह उपाय प्रत्यय है और वह मोक्ष जनक होता है।

### उत्तर-13.3

1. जब पाँच चित्तवृत्तियाँ पुरूष की मोक्ष सहायिका होती हैं तब वे अक्लिष्ट होती हैं, जब मोक्ष विरोधी होती हैं तब वे क्लिष्ट होती हैं।

2. प्रमा असन्दिग्ध, अविपरीत, अनधिगत विषय चित्तवृत्ति है।

3. योग मत में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीन प्रमाण हैं।

4. प्रमाण जन्य पौरूषेय बोध ही प्रमा है।

5. इन्द्रिय सन्निकृष्ट के विषय में चित्त सम्बन्ध के कारण जो विषय व्यक्ति की अवधारण प्रधान चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है, वह विषयाकार चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

6. मैं घट को जानता हूँ।

7. बाधित विषयी चित्तवृत्ति ही विपर्यय है। सूत्रित है- विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम्।

8. शब्द ज्ञान का अनुसरण करके समुत्पन्न जिस चित्तवृत्ति में विषय नहीं रहता है, वह वस्तु शून्य चित्तवृत्ति ही विकल्प कहलाती है। सूत्रित है- शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।

9. अभावप्रत्ययालम्बना चित्तवृत्तिर्हि निद्रा।

10. अनुभूत विषय की ही संस्कारजन्य चित्तवृत्ति स्मृति कहलाती है। और सूत्रित है- अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

## उत्तर-13.4

1. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगांग हैं।

2. अहिंसा-सत्य-अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम पद से व्यपदिष्ट हैं।

3. भूतों (जीवों) के प्राण हरण से विरति अहिंसा है।

4. प्राण-धारण के लिए उपयोगी द्रव्यों के अतिरिक्त भोग विषयों के संग्रह का अभाव ही अपरिग्रह है।

5. शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

6. जिस स्थिति में स्थिरता और सुख से दीर्घकाल तक स्थिति सम्भव होती है, वह आसन है। और सूत्रित है- ''स्थिरसुखम् आसनम्''।

7. प्राणवायु का अथवा श्वास-प्रश्वास का संयम ही प्राणायाम है। सूत्रित है- श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

8. जब चित्त एकाग्र होकर शब्दादि विषयों से प्रतिनिवृत्त होता है तब इन्द्रियाँ भी स्थिर होती है, यह स्वाभाविक इन्द्रिय-निरोध ही प्रत्याहार कहलाता है।

9. विषयान्तर से प्रतिनिवृत्त चित्त का नाभिचक्र आदि देशों में देवतामूर्ति विशेष में लग्नता ही धारणा है।

10. एक विषय में प्रत्ययान्तर द्वारा अनन्तरित सदृश प्रत्यय प्रवाह ही ध्यान है। और सूत्रित है - ''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''।

टिप्पणी

11. क्लेशकर्मविपाकाशयरहितः पुरूषविशेषे हि ईश्वरः।

12. अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः पाँच क्लेश हैं।

13. ईश्वर में भक्ति ही ईश्वर प्रणिधान नाम से कहा जाता है।

**।।तेरहवाँ पाठ समाप्त।।**

टिप्पणी

# 14

# मीमांसा दर्शन

## प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय परम्परा में बहुत से दर्शन दीर्घकाल से प्रसिद्ध हैं। उनमें मुख्यतः दो भाग होते हैं- आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। यहाँ आस्तिक पद से ईश्वर को स्वीकार करना अभिप्राय है। जो दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन है और जो दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक-पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा छः भारतीय आस्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं।

छः भारतीय दर्शनों में साक्षात् वेद को आश्रित करके दर्शन प्रवृत्त हैं, वे पूर्व मीमांसा दर्शन और उत्तर मीमांसा दर्शन हैं। मीमांसा शब्द का अर्थ पूजित विचार है। उत्तर मीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शन नाम से एवं पूर्व मीमांसा दर्शन ने मीमांसा दर्शन नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके मध्य में मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डात्मक वेदभाग के विचार के लिए प्रवृत्त है। अर्थात् वेद के कर्मकाण्ड में विहित विषयों की जहाँ चर्चा होती है, और जहाँ वेदविहित विषयों में संशय होने पर समाधान प्राप्त होता है वही पूर्व मीमांसा दर्शन है। धर्म जिज्ञासा ही वहाँ मुख्य विषय है। उत्तरमीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शनत्व से प्रसिद्ध है। वहाँ ज्ञानकाण्डीय विषयों का अर्थात् उपनिषद् में प्रतिपादित विषयों का विस्तार से विचार प्राप्त होता है। ब्रह्मजिज्ञासा ही वहाँ मुख्य विषय है। इस पाठ में मीमांसा दर्शन नामक पूर्व मीमांसा दर्शन ज्ञेय है।

भारतीय दर्शनों में वेद के मुख्यत्व के कारण उसका क्या दर्शन है, इस ज्ञान के लिए मीमांसा दर्शन अवश्य पढ़ना चाहिए। इस समय वैदिक याग-यज्ञ आदि का प्रचलन वैसा नहीं दिखता है। उससे इस दर्शन के विषय में अनेक अज्ञ ही हैं। और भी, अन्य दर्शनों में आलोचित अनेक विषयों सम्यक् ज्ञान के लिए मीमांसा दर्शन अवश्य ज्ञेय है। और वेदान्त दर्शन भी सम्यक् तभी बोधित होता है, जब पूर्व मीमांसा दर्शन सम्यक् रूप से

टिप्पणी

ज्ञात हो, क्योंकि वे दर्शन समान तन्त्र हैं। उसके कारण मीमांसा, दर्शन का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- पूर्व मीमांसा के दर्शन के विषय में संक्षेप से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के ग्रन्थ के विषय में संक्षेप से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के मत में प्रमाणों को जान पाने में;
- नैयायिक स्वीकृत उपमान से मीमांसक स्वीकृत उपमान का भेद जान पाने में;
- प्रामाण्य के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- अभिहितान्वयवाद के विषय में और अन्विताभिधानवाद के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसा में स्वीकृत पदार्थों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेद लक्षण के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- धर्म लक्षण के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के मत में क्या मोक्ष है, यह जान पाने में।

## 14.1 मीमांसा दर्शन के आचार्य और ग्रन्थ

प्रत्येक भारतीय दर्शन ऋषि द्वारा प्रणीत हैं। मीमांसा दर्शन के ऋषि महर्षि जैमिनि हैं। उनका काल प्राय: चतुर्थ शताब्दी ईसा0 पू0 है। उनके द्वारा विरचित द्वादशलक्षणी नामक ग्रन्थ पूर्व मीमांसा दर्शन का मुख्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में बारह अध्याय, 60 पाद और 2744 सूत्र व्याप्त है। मीमांसा दर्शन के ऊपर संकर्षण काण्ड नामक चार अध्यायों वाला ग्रन्थ, उनके द्वारा विरचित है, ऐसा कुछ कहते हैं। मीमांसा सूत्र के ऊपर बहुत से भाष्य ग्रन्थ रचित है। उनमें शबर स्वामी का शाबर भाष्य ही सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। शबर स्वामी के परवर्ती काल में तीन टीकाकारों के मतों के अनुसार मीमांसा दर्शन के तीन सम्प्रदाय समुद्भुत हुए। वे तीन टीकाकार हैं- प्रभाकरमिश्र कुमारिलभट्ट और मुरारिमिश्र। प्रभाकरमिश्र के मत का अनुसरण करके जो सम्प्रदाय है, वह प्रभाकर सम्प्रदाय, कुमारिलभट्ट के मत का अनुसरण करके जो सम्प्रदाय हुआ, वह भाट्ट सम्प्रदाय, ये दो सम्प्रदाय ही अधिक प्रसिद्ध है। इन दोनों सम्प्रदायों को छोड़कर मुरारि का तृतीय पन्थ है। यह मुरारिमिश्र का भी मिश्र सम्प्रदाय प्रसिद्ध था। परन्तु मिश्र सम्प्रदाय के ग्रन्थ

अब उपलब्ध नहीं होते हैं। प्रभाकर मत गुरूमत नाम से प्रसिद्ध है। प्रभाकरमिश्र के शाबर भाष्य के ऊपर बृहती और लघ्वी दो टीका ग्रन्थ विद्यमान हैं। प्रभाकर मतानुसारी शालिकनाथ ने प्रभाकर कृत लघ्वी टीका के ऊपर दीपशिखा और बृहती टीका के ऊपर ऋजुविमला, दो ग्रन्थ रचे। शालिकनाथ ने प्रभाकर मतानुसार प्रकरण पञ्चिका, प्रकरण ग्रन्थ रचा। कुमारिल भट्ट ने शाबर भाष्य का आवलम्बन करके श्लोकवार्तिक, तन्त्रावार्तिक और टुप्टी टीका, ये तीन ग्रन्थ रचे। कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डनमिश्र ने मीमांसानुक्रमणिका, विधिविवेक, भावनाविवेक, विभ्रमविवेक ग्रन्थों को लिखा। भट्ट मतानुसार लिखित पार्थसारथिमिश्र की शास्त्रदीपिका, गंगाभट्ट की भाट्टचिन्तामणि, नारायण भट्ट का मानमेयोदय आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। मीमांसकों के तीन सम्प्रदाय हैं- भाट्ट सम्प्रदाय, प्रभाकर सम्प्रदाय और मिश्र सम्प्रदाय।

## 14.2 मीमांसा दर्शन में प्रमाण

दर्शनों का विचार करके विषयों में अन्यतम होते हैं- प्रमाण। मीमांसा दर्शन में भी प्रमाण की आलोचना की गई है। इस दर्शन में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।

### 14.2.1 प्रत्यक्ष

इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न प्रमाण प्रत्यक्ष कहलाता है। यहाँ इन्द्रिय सन्निकर्ष, इसके द्वारा इन्द्रियार्थ सन्किर्ष से उत्पन्न बोद्धव्य है। इन्द्रिय के साथ जब विषय का सन्किर्ष होता है तब प्रत्यक्ष प्रमाण से विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। और वह प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार है- सविकल्पक और निर्विकल्पक। इन्द्रिय के साथ विषय के सन्निकर्ष से अव्यवहित होने के बाद ही विषय का जो अस्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है, वह निर्विकल्पक ज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान में विषय का अस्पष्ट रूप से ज्ञान होता है, इस कारण से यह सम्मुग्ध ज्ञान अथवा अस्पष्ट ज्ञान कहलाता है। इसीलिए कुमारिलभट्ट के द्वारा श्लोकवार्तिक में कहा जाता है- ''अस्ति हि आलोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पम्'' जैसे घट दर्शन में घटत्व वर्जित घट मात्र का जो ज्ञान होता है वह निर्विकल्पक ज्ञान है। निर्विकल्प के प्रत्यक्ष के अनन्तर विशेष रूप से वस्तु का जो ज्ञान होता है वह सविकल्पक ज्ञान कहलाता है। निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार न हो तो सविकल्प ज्ञान स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सविकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति के लिए निर्विकल्प ज्ञान स्वीकार करना चाहिए। सविकल्प प्रत्यक्ष में विषय का सुस्पष्टता से ज्ञान होता है, इस कारण से सविकल्पक प्रत्या को व्यक्त ज्ञान अथवा स्पष्ट ज्ञान कहते हैं। सविकल्पक ज्ञान में विशिष्ट विषय का ज्ञान होता है यथा घट ज्ञान पर घटत्व विशिष्ट घट का ज्ञान होता है। इसका अर्थ है- जिस प्रमाण से व्याप्ति विशिष्ट पदार्थ के ज्ञान इन्द्रिय सन्निकर्ष विषय का ज्ञान उत्पन्न होता है, वह अनुमान प्रमाण कहलाता है। पर्वत पर धूम प्रत्यक्ष प्रमाण से गृहीत

टिप्पणी

है। परन्तु अग्नि इन्द्रिय के असन्निकृष्ट होने से प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। वह तो अनुमान द्वारा ग्रहण होता है। अनुमान शरीर है- पर्वतः धूमवान्, वह्नित्वात्।

व्याप्ति दो प्रकार की हैं- अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति। साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव अन्वय व्याप्ति होता है। साध्य के अभाव में साधन का अभाव व्यतिरेक व्याप्ति कहलाता है। मीमांसक भिन्न दृष्टि से अनुमान को बहुत प्रकार से विभाजित करते हैं। इस प्रकार अनुमान तीन हैं- अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी और केवल व्यतिरेकी। पुनः अनुमान दो प्रकार का है- वीत और अवीत। वीत पुनः दो प्रकार का है- दृष्ट और सामान्यतो दृष्ट। स्वार्थानुमान और परार्थानुमान के भेद से अनुमान पुनः दो प्रकार का है।

प्रभाकर के मत में धूम के साथ वह्नि का सम्बन्ध एक बार निश्चित होता है तो व्याप्ति का निश्चय होता है। भूयोदर्शन केवल उपाधि की आशंका निवृत्ति के लिए है। मानमेयोदयकार के मत में व्याप्ति एक स्वाभाविक सम्बन्ध है। स्वाभाविक का अर्थ है उपाधि रहित। उससे व्याप्ति एक उपाधि रहित सम्बन्ध है, ऐसा जाना जाता है। अनुमान शरीर के विषय में नैयायिक जैसे प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, ये पञ्चावयव न्याय स्वीकार करते हैं, मीमांसक वैसा स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में तीन अवयव को स्वीकार करने पर कार्यसिद्धि के लिए पञ्चावयव स्वीकार करने के द्वारा प्रयोजन नहीं है। उसके कारण मीमांसक प्रारम्भ के तीन अवयव अथवा अन्तिम के तीन अवयव स्वीकार करते हैं।

## 14.2.3 शब्द

मीमांसक अनुमान प्रमाण के अनन्तर शब्द प्रमाण को स्वीकार करते हैं। मीमांसकों के मत में शब्द प्रमाण सभी प्रमाणों की अपेक्षा गुरूत्वपूर्ण है। आप्त वाक्य ही शब्द है। किसी भी वाक्य के अन्तर्गत पदों के अर्थबोध से अनन्तर प्रत्यक्ष के द्वारा अज्ञात अर्थ का ज्ञान होता है, वह शब्द ज्ञान कहा जाता है। कहा गया है-

**तत्र तावत् पदैर्ज्ञातैः पदार्थस्मरणे कृते।**
**असन्निकृष्ट वाक्यार्थज्ञानं शाब्मितीर्यते॥**

शब्द ज्ञान में पदार्थ ही करण है, वाक्यार्थ का अवबोध फल है। शब्द प्रमाण दो प्रकार का है- पौरूषेय और अपौरूषेय। मीमांसकों के मत में आप्त वाक्य पौरूषेय है, वेदवाक्य अपौरूषेय है। प्रभाकर में दोष होते हैं, उससे पौरूषेय वाक्य प्रमाण पदवी को प्राप्त नहीं करते। इसीलिए कहा जाता है-

**अपौरूषेये वेदे तु पुरूषस्पर्शसन्नतः।**
**कल्यो न विशङ्क्येत तत् कुतो व्यभिचारिता॥**

इसका अर्थ है- पुरूष दोष अपौरूषेय वेद में शंकित होते हैं, उससे अपौरूषेय वेद का ही प्रामाण्य है, व्यभिचारों के अभाव के कारण।

टिप्पणी



शाब्द ज्ञान पुनः दो प्रकार का है- सिद्धार्थ वाक्य और विधायक वाक्य। जब किसी वाक्य से सिद्ध अर्थ का ज्ञान होता है तब वह सिद्धार्थ वाक्य कहलाता हैं यथा- यह तुम्हारा पुत्र है, यह वाक्य सिद्धार्थ वाक्य है। इस वाक्य में सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन विद्यमान होता है, यह क्रिया अनुष्ठान का कर्तव्य है। जब किसी वाक्य से क्रियानुष्ठान का निर्देश प्राप्त होता है, तब वह विधायक वाक्य कहलाता है। यथा-'स्वर्गकामो यजेत', यह वाक्य विधायक वाक्य है। इस वाक्य में निर्देश प्राप्त होता है कि जो स्वर्ग की कामना करता है, वह योग करे। उस कारण यह विधायक वाक्य है।

## 14.2.4 उपमान

मीमांसा दर्शन में उपमान स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में स्वीकृत है। सादृश्य ज्ञान उपमिति है, उसका करण उपमान है। अर्थात् सादृश्य ज्ञान जिस प्रमाण से निश्चित होता है वह उपमान कहलाता है। जैसे-कोई गो नामक प्राणी को जानता है परन्तु गवय नामक प्राणी को नहीं जानता है। गवय किस प्रकार का है, इस ज्ञान के लिए वह उपदिष्ट है कि- गो के समान गवय है। तब वह वन में गोसदृश प्राणि को देखकर गो के समान नील गाय (गवय) है, इस उपदेश को स्मरण करते हुए वन में देखे प्राणी में पूर्वज्ञात गो सादृश्य देखा और पूर्व में दृष्ट गाय में गवय सादृश्य को निश्चित करता है। एवं पूर्व में देखी गई गौ यह गवय सदृश है, यह पूर्वदृष्ट गौ में गवय-सादृश्य का ज्ञान उपमिति है, यह कहा जाता है। उपमिति का करण उपमान प्रमाण है, यह कारण से गवय में गो सादृश्य का दर्शन उपमान प्रमाण है। गो में गवय सादृश्य का निश्चित ज्ञान उपमिति है, अर्थात् उपमान का फल है। उसके कारण मानमेयोदय में कहा जाता है-

**गवयस्थितसादृश्यदर्शनं करणं भवेत्।**
**फलं गोगत सादृश्य ज्ञानमित्यवगम्यताम्॥**

न्याय दर्शन में भी उपमान स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। परन्तु नैयायिकों के उपमान से मीमांसकों के उपमान में भेद है। जैसे- न्यायदर्शन के मत में और मीमांसा दर्शन के मत में गवय में गो सादृश्य का दर्शन उपमान है परन्तु उपमान के अनन्तर ''पूर्वदष्टः गौः एतद्गवयसदृशः'', यह पूर्वदृष्ट गौ में गवय सादृश्य का ज्ञान उपमिति है, यह मीमांसा दर्शन का मत है। नैयायिक मत में उपमान से अनन्तर 'गवयत्वविशिष्ट पशु गवय वाच्य है', यह ज्ञान उपमिति है।

## 14.2.5 अर्थापत्ति

मीमांसा दर्शन और अद्वैतवेदान्त दर्शन में अर्थापत्ति स्वतन्त्र रूप से प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अर्थापत्ति शब्द से अर्थापत्ति प्रमा और अर्थापत्ति प्रमाण जाने जाते हैं। अर्थापत्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'अर्थस्य आपत्तिः' यह स्वीकार की जाती है तो अर्थापत्ति शब्द यथार्थ ज्ञान को बोधित करता है, 'अर्थस्य आपत्तिः यस्मात्', यह व्युत्पत्ति

स्वीकार करे तो अर्थापत्ति शब्द प्रमाण को बोधित करता है। मानमेयोदय में कहा जाता है- अन्यथानुपत्त्या यदुपपादककल्पनम् तदर्थापत्तिः इत्येवं लक्षणं भाष्यभाषितम्। इसका अर्थ है- जब कोई ज्ञान अन्य रूप से उत्पन्न नहीं होता, तब उसके व्याख्यान के लिए जो उपपादक कल्पित है वह अर्थापत्ति प्रमाण में जानने योग्य हैं। वेदान्त परिभाषाकार लौगाक्षिभास्कर के द्वारा अर्थापत्ति का लक्षण किया गया- ''उपपाद्यज्ञानेन उपपादककल्पनम् अर्थापत्तिः''। यहाँ उपपाद्य ज्ञान करण है और उपपादक-कल्पना फल है। जैसे- स्थूलः देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते, इस वाक्य से दिन में न खाने वाला देवदत्त का स्थूलत्व नहीं उत्पन्न होता है, इस कारण से उसके स्थूलत्व के उपपत्ति के लिए रात्रिभोजन कल्पित है। यह रात्रि भोजन का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा भी नहीं और अनुमान द्वारा भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है, इस कारण से अर्थापत्ति प्रमाण द्वारा यह स्वीकार किया जाता है, ऐसा अङ्गीकर्तव्य है। यहाँ उपपाद्य दिन में नहीं खाने वाले देवदत्त का स्थूलत्व और उपपादक रात्रि-भोजन है।

अनुमान में व्याप्ति बोधक वाक्य अपेक्षित है, परन्तु अर्थापत्ति में व्याप्ति वाक्य का यर्थार्थ नहीं है, उससे अर्थापत्ति प्रमाण अनुमान में अन्तर्निहित नहीं होता है। इसलिए-स्थूल देवदत्त दिन में नहीं खाता है, इस वाक्य में यदि वाप्ति वाक्य इस प्रकार से स्वीकार किया जाता है- जो दिन में नहीं खाने से मोटा है, वे रात्रि भोजन करने से है तो योगी-सिद्ध पुरूष आदि में व्यभिचार दोष होता है। योगिजन और सिद्ध पुरूष दिन और रात्रि में नहीं खाने पर भी स्थूल होते हैं। अतः व्याप्ति ज्ञान के अभाव से अर्थापत्ति का अनुमान में अन्तर्भाव नहीं होता है।

अर्थापत्ति दो प्रकार का है- दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति। दृष्ट के अर्थ की उपपत्ति के लिए यदा अन्यार्थ कल्पना की जाती है तब वह दृष्टार्थापत्ति कहा जाता है। जैसे- जीवित देवदत्त गृह में नहीं है, यह देखकर वह गृह से बाहर है, ऐसी कल्पना की जाती है, यह दृष्टार्थापत्ति है। जब पुनः वाक्य का कोई अंश सुनकर अर्थसिद्धि के लिए अन्यार्थ की कल्पना की जाती है तब श्रुतार्थापात्ति कही जाती है। जैसे- 'द्वार' यह शब्द मात्र को सुनकर समीप में स्थित जन 'बन्द करें' यह शब्द ग्रहण करके व्यवहार करता है। यह श्रुतार्थापत्ति है।

## 14.2.6 अनुपलब्धि

भाट्ट मीमांसा दर्शन और अद्वैत वेदान्त दर्शन में अनुपलब्धि स्वतन्त्रता से प्रमाण रूप में स्वीकृत है। उनके मत में अनुपलब्धि प्रमाण के रूप अभाव ज्ञान होता है। नैयायिक अनुपलब्धि को पृथक प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही अभाव का ज्ञान सम्भव होता है, उससे अनुपलब्धि पृथक् रूप से स्वीकार्य नहीं है। प्रभाकर मीमांसकों के मत में अभाव स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, अभाव ही अधिकरण का स्वरूप है, और अधिकरण से अभिन्न है। उससे अभाव ग्रहण के लिए पृथक् प्रमाण स्वीकार्य नहीं है। परन्तु भाट्ट मीमांसक और अद्वैत वेदान्ती अनुपलब्धि

को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। वे कहते है कि भाव पदार्थ के ग्रहण के लिए प्रत्यक्ष आदि प्रमाण प्रयुक्त होते हैं, अभाव ग्रहण के लिए नहीं। उसके कारण अभाव ग्रहण के लिए अनुपलब्धि प्रमाण स्वीकार्य है।

मानमेयोदय में अनुपलब्ध का लक्षण कहा जाता है-

**''अथापेलम्भनयोग्यत्वे सत्यप्यनुपलम्भनम्।**
**अभावाख्यं प्रमाणं स्यादभावस्यावबोधनम्।।**

इसका अर्थ है- यदि कोई वस्तु इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष योग्य होने पर भी वह प्रत्यक्ष नहीं होता है, तो अप्रत्यक्ष के द्वारा उस वस्तु के अभाव का ज्ञान होता है। एवं इस अभाव का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है, वह अनुपलब्धि प्रमाण अथवा अभाव प्रमाण है। जैसे-भूतल पर घट नहीं है, इस दृष्ट में चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने योग्य घट के अदर्शन के कारण घटाभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा उत्पन्न होता है।

इस प्रकार से संक्षेप सें मीमांसा दर्शन में स्वीकृत छः प्रमाण दिए गए हैं-

**प्रमाण**

1. प्रत्यक्ष 1) सविकल्पक 2) निर्विकल्पक
2. अनुमान 1) केवलान्वयी 2) अन्वयव्यतिरेकी 3) केवल व्यतिरेकी
3. शब्द 1) पौरूषेय 2) अपौरूषेय
4. उपमान
5. अर्थापत्ति 1) दृष्टार्थापत्ति 2) श्रुतार्थापत्ति
6. अनुपलब्धि

## पाठगत प्रश्न 14.1

1. कितने भारतीय आस्तिक दर्शन हैं।

   (क) चार (ख) पाँच (ग) छः (घ) सात

2. उत्तर मीमांसा दर्शन का नामान्तर क्या है?
3. जैमिनि के द्वारा प्रणीत पूर्वमीमांसा दर्शन के ग्रन्थ का नाम क्या है?
4. अनुपलब्धि प्रमाण किस अर्थ में स्वीकार किया जाता है।

   (क) भाव पदार्थ ग्रहण के लिए (ख) अभाव पदार्थ ग्रहण के लिए

टिप्पणी

5. मीमांसक अनुमान वाक्य में कितने अवयवों को स्वीकार किया जाता है।

(क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) सात

6. प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है? नाम लिखिए।

7. अर्थापत्ति कितने प्रकार का है? नाम लिखिए।

8. वेदान्त परिभाषाकार मत में अर्थापत्ति का लक्षण क्या है?

## 14.3 मीमांसा दर्शन में प्रामाण्य विचार

प्रमाण विचार के अनन्तर प्रमाणों के प्रामाण्य के विषय में विचार किया जाएगा। ज्ञान ही दो प्रकार का है- यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ज्ञान। यथार्थ ज्ञान ही प्रमा और अयथार्थ ज्ञान अप्रमा कहा जाता है। ज्ञान प्रमा है तो वहाँ प्रमाण का प्रामाण्य रहता है, ज्ञान अयथार्थ होता है तो उसमें प्रमाण का अप्रामाण्य रहता है। परन्तु ज्ञान का प्रामाण्य अथवा अप्रामाण्य कैसे उत्पन्न होता है अथवा कैसे जाना जाता है, इस विषय को आश्रित करके भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में दो मत उदभुत हुए- स्वतः प्रामाण्यवाद और परतः प्रामाण्यवाद। प्रामाण्य स्वतः है अथवा परतः, इस विषय में दार्शनिकों का मतभेद विद्यमान है।

सांख्य प्रामाण्य और अप्रामाण्य स्वतः होता है, ऐसा कहते हैं, नैयायिक प्रामाण्य और अप्रामाण्य परतः होता है, ऐसा मानते है, बौद्धमत में अप्रामाण्य स्वतः, प्रामाण्य तो परतः होता है, मीमांसकों के मत में प्रामाण्यं स्वतः और अप्रमाण्य परतः होता है। इसीलिए सर्वदर्शनसंग्रह में कहा जाता है-

**प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः।**
**नैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः।**

**प्रथमं परतः प्राहुः प्रामाण्यं वेदवादिनः।**
**प्रमाणं स्वतः प्राहु परतश्चाप्रमाणताम्।**

### 14.3.1 स्वतः प्रमाण्य और परतः अप्रामाण्य

तीन मीमांसक ही स्वतः प्रमाण्यवादी हैं। इनके मत में जिन कारणों से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उन कारणों के द्वारा ही ज्ञान का प्रामाण्य भी उत्पन्न होता है। जैसे जिस सामग्री बल से घट ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उसके ही द्वारा सामग्री बल से घट ज्ञान के प्रमात्व की उत्पत्ति होती है। ज्ञान के प्रमात्व की उत्पत्ति ज्ञान सामग्री के अतिरिक्त अन्य कारण से अपेक्षित नहीं होता है। और भी जिसके द्वारा ज्ञान होता है, उसके द्वारा ही ज्ञान का प्रमात्व भी जाना जाता है। उससे ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः ही उत्पन्न होता है और जाना जाता है। परन्तु ज्ञान का अप्रमाण्य ज्ञान सामग्री के बिना अन्य कारण

टिप्पणी

भी अपेक्षा करता है, इस कारण से अप्रामाण्य स्वतः निश्चित नहीं होता अपि तु परतः निश्चित होता है।

## 14.4 अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद

पदों के द्वारा अर्थज्ञान की पद्धति क्या है, इस विषय में मीमांसक सम्प्रदाय में दो मत प्रसिद्ध हैं- कुमारिलभट्ट का अभिहितान्वयवाद और प्रभाकर का अन्विताभिधानवाद। अभिहितान्वयवादियों के मत में एक वाक्य में प्रयुक्त पदों का अर्थज्ञान आदि में होता है, उससे वाक्य में उनका अन्वय होता है। पदों से अभिहित अर्थ का वाक्य में अन्वय स्वीकार किया जाता है, इस कारण से ये अभिहितान्वयवादी हैं।

अन्विताभिधानवादियों के मत में पदों का वाक्य में अन्वय से अनन्तर अभिहित अर्थ का ज्ञान होता है, अर्थात् पद परस्पर वाक्यान्वित हैं और अर्थज्ञान को उत्पन्न करते हैं, वे पृथक् रूप से अर्थबोध के लिए समर्थ नहीं होते हैं। पदों के अन्वय से अनन्तर अभिहित अर्थ का बोध स्वीकार किया जाता है, इसी कारण से ये अन्विताभिधानवादी हैं।

## 14.5 पदार्थ

कुमारिलभट्ट और प्रभाकर के मत में दो ही पदार्थ हैं- प्रमाण और प्रमेय। इनके मध्य में प्रमाणों की आलोचना हमारे द्वारा पूर्व में ही की गई है। प्रमाणों के संख्या के विषय में जैसे कुमारिल के साथ प्रभाकर का मतभेद होता है, वैसे ही प्रमेयों की संख्या के विषय में भी दोनों के मत में पार्थक्य होता है। भाट्टमत में प्रमेय पाँच हैं- द्रव्य, जाति, गुण, क्रिया और अभाव। प्रभाकर मत में प्रमेय आठ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या और सादृश्य। परिमाण आश्रयत्व द्रव्यत्व है, यह द्रव्य का लक्षण है। भाट्ट मत में ग्यारह (11) द्रव्य हैं- पृथिवी, जल, तेज, वायु, तम, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन और शब्द।

जाति व्यक्ति में अवस्थित होता है, नित्य, प्रत्यक्ष का विषय, व्यक्तितः और भिन्न-अभिन्न है। कुमारिलभट्ट के मत में जाति व्यक्ति में तादात्म्य सम्बन्ध से रहता है। इस मत में समवाय स्वीकार नहीं किया जाता है। प्रभाकर समवाय सम्बन्ध को आश्रित करके जाति-जातिमान के सामानिधकरण की व्याख्या करते हैं। ये जाति-जातिमान के तादात्म्य सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं। और भी, ये नैयायिक स्वीकृत समवाय सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं।

कुमारिल भट्ट अभाव को पदार्थत्व द्वारा स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रभाकर अभाव को अतिरिक्त पदार्थत्व द्वारा स्वीकार नहीं करते हैं। भाट्ट मत में अनुपलब्धि प्रमाण द्वारा अभाव ग्रहीत है। प्रभाकर मत में 'अभावाख्यः पदार्थस्तु नास्ति'। इसके मत में अभाव अधिकरण स्वरूप है।

टिप्पणी

## 14.6 धर्म लक्षण

मीमांसा दर्शन में विचार का विषय धर्म है। मीमांसा दर्शन के प्रणेता आचार्य जैमिनि द्वादशलक्षणी ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूत्र का प्रण करने के लिए ''अथातो धर्म जिज्ञासा'' करते हैं। उससे मीमांसा दर्शन के अनुसार धर्म क्या है, यह ज्ञातव्य है। धर्म के विषय में मीमांसा सूत्र में कहा गया है- ''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः''। यद्यपि चोदना पद का अर्थ प्रेरकत्व है तथापि यहाँ चोदना पद का अर्थ विधिरूप वेद है। उसके कारण वेद में जो कर्तव्य रूप से प्रतिपादित है, वही धर्म है, ऐसा ज्ञातव्य है। अर्थसंग्रहकार लौगक्षिभास्कर के मत में याग आदि ही धर्म है। धर्म का लक्षण है- ''वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः''। वेद द्वारा प्रतिपादित जो विषय है, और जो प्रयोजनवान् (अर्थवान्) होता है, वह धर्म है। इसलिए भोजन यद्यपि प्रयोजन से युक्त है तथापि वह स्वाभाविक है, वेद प्रतिपाद्य नहीं, उससे भोजन धर्म नहीं है। श्येन आदि याग वेद द्वारा प्रतिपादित हैं तो भी धर्म नहीं है क्योंकि उसमें अर्थवत्त्व नहीं है, अनर्थवत्त्व ही है। स्वाध्योऽध्येतव्यः, यह वेद वाक्य से प्रत्येक वेद पाठ का कर्तव्यपूर्ण विधान है, यह अर्थवत्त्व भी विद्यमान है, इस कारण से स्वाध्याय धर्म है, यह ज्ञातव्य है। 'यजेत स्वर्गकामः' इस वेद वाक्य द्वारा विहित है कि जो स्वर्ग की इच्छा करता है, वह याग करे। यहाँ वेद प्रतिपाद्यत्व है, अर्थवत्व भी है, इस कारण से यह धर्म हैं।

## 14.7 भावना-विचार

'यजेत् स्वर्गकामः' इत्यादि वाक्य से स्वर्ग को उद्देश्य करके पुरूष याग का विधान करता है। 'यजेत', यहाँ अंशत्रय विद्यमान हैं, यजि धातु और प्रत्यय। प्रत्यय में भी अंशत्रय दो होते हैं- आख्यातत्व और लिङ्त्व। वहाँ आख्यातत्व दश लकारों में भी साधारण लिङ्गमात्र में ही लिङ्गत्व विद्यमान होता है।

'यजेत', यहाँ जो दो अंश विद्यमान है, वहाँ दोनों अंशों को भी भावना कहा जाता है। भावना क्या है तो अर्थसंग्रहकार द्वारा कहा जाता है- भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः। इसका अर्थ है- भविता के उत्पद्यमान का भावना अनुकूल उत्पत्ति के अनुकूल भावयिता द्वारा उत्पन्न प्रयोजक का व्यापार विशेष भावना है। यथा-ओदन के पकने में उत्पद्यमान ओदन के उत्पत्ति के अनुकूल देवदत्त का व्यापार विशेष भावना है, यह अर्थ है। यथा-यजेत स्वर्गकामः, यहाँ उत्पद्यमान धातु-अर्थ अथवा स्वर्ग के उत्पत्ति अनुकूल स्वर्ग की इच्छा का व्यापार और उत्पद्यमान और स्वर्गकाम प्रवृत्ति के उत्पत्ति अनुकूल लिङ्ग व्यापार विशेष है।

वह भावना दो प्रकार की है- शाब्दी भावना और आर्थी भावना।

## 14.7.1 शाब्दी भावना

शाब्दी भावना, आर्थी भावना, इनके मध्य में शाब्दी भावना है- पुरूषप्रवत्यनुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः। और वह लिङ्ग, अंश द्वारा कहा जाता है। लिङ्-श्रवण में मां प्रवर्तयति, मत्प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार से युक्त यह शाब्दबोध नियम द्वारा ही प्रतीत होता है। जो जिस शब्द से नियम से प्रतीत होता है वह उसका वाच्य है। यथा-गाम् आनय (गाय लाओ), इस वाक्य में गो शब्द का गोत्व।

और वह व्यापार विशेष लौकिक वाक्य में पुरुष निष्ठ अभिप्राय विशेष है। वैदिक वाक्य में तो पुरूष अभाव के कारण लिङ्ग आदि शब्द निष्ठ ही हैं। अत एव शाब्दी भावना व्यवहृत है।

## 14.7.2 आर्थी भावना

प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापारः आर्थी भावना/प्रयोजन का स्वर्ग आदि रूप फल की इच्छा से राग आदि विशेषण द्वारा जनित जो याग आदि क्रिया विषय पुरूष का व्यापारविशेष है, वह आर्थी भावना है, यह अर्थ है। और वह आख्यात अंश द्वारा कहा जाता है क्योंकि आख्यात सामान्य द्वारा व्यापार का बोध होता है।

### पाठगत प्रश्न 14.2

1. मीमांसक मत में प्रामाण्य स्वतः है अथवा परतः?
2. प्रमा शब्द का क्या अर्थ है?
3. अभिहितान्वयवाद किसका है?

   (क) प्रभाकर का (ख) कुमारिलभट्ट का (ग) मुरारिमिश्र का
4. भाट्टमत में प्रमेयों की संख्या क्या है?

   (क) चार (ख) पाँच (ग) नौ (घ) बारह
5. अभाव नाम पदार्थ नहीं है, यह किसका मत है?
6. धर्म के विषय में मीमांसा सूत्र क्या है?
7. भावना कितने प्रकार की है? और वे क्या हैं?
8. भाट्टमत में कितने द्रव्य हैं?

टिप्पणी

## 14.8 वेद-लक्षण विचार

मीमांसा मत में वेद अपौरूषेय वाक्य है। क्योंकि जो पुरूष द्वारा किया जाता है, उसमें दोष ही होते हैं। दोष, भ्रम, प्रमाद, विलिप्सा आदि हैं। परन्तु वेद में भ्रम आदि दोष नहीं होते हैं। उस कारण से दोषाभाव होने के कारण वेद पुरूषकृत नहीं है, यह जानना चाहिए। अतः वेद अपौरूषेय है। और वह वेद पाँच प्रकार का है- विधि, मन्त्र, नाभधेय, निषेध, और अर्थवाद।

### 14.8.1 विधि

इनमें अज्ञात अर्थ का ज्ञापक वेदभाग विधि कहा जाता है। यथा- अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, यह विधि है। जो स्वर्ग की इच्छा करता है, उसे अग्निहोत्र यज्ञ करना चाहिए, यह इसका अर्थ है। यह विधि वेद विना अन्य किसी भी प्रमाण के द्वारा नहीं जाना जा सकता। उस अज्ञात अर्थ का ज्ञापक होने के कारण यह वेदवाक्य विधिवाक्य कहा जाता है। और वह विधि चार प्रकार की है- उत्पत्तिविधि, विनियेग विधि, अधिकार विधि और प्रयोग विधि।

1. **उत्पत्ति विधि**

   उसमें कर्मस्वरूप मात्र बोधक विधि उत्पत्तिविधि है। यथा- 'अग्निहोत्रं जुहोति'। यहाँ विधि में कर्म का करण से अन्वय है। अग्निहोत्र होम के द्वारा इष्ट को प्राप्त करें।

2. **विनियोग विधि**

   अङ्ग प्रधान सम्बन्ध बोधक विधि विनियोग विधि है। यथा- दध्ना जुहोति। वह तृतीया द्वारा प्रतिपन्न अङ्गभाव दधि से होम का सम्बन्ध बताता है। दधि से होम करें।

   विनियोग विधि के सहकारीभूत छः प्रमाण हैं। वे हैं-

   श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान और समाख्या रूप।

   **क) श्रुति**- तत्र निरपेक्षः स्वः श्रुतिः। इसमें निरपेक्ष पद द्वारा प्रमाणान्तर निरपेक्ष, यह ज्ञातव्य है। उससे जो शब्द अन्य प्रमाण द्वारा अपेक्षित नहीं है, वह शब्द श्रुति है। वह तीन प्रकार की है - विधात्री, अभिधात्री और विनियोक्त्री है।

   **ख) लिङ्ग**- शब्द सामर्थ्य लिङ्ग है। जैसे कहा जाता है- ''सामर्थ्य सर्वशब्दानां लिङ्गमिव्यभिधीयते''। सामर्थ्य रूढ़ि ही है। जैसे- ''बर्हिर्देवसदनं दामि', इस मन्त्र का कुशलवनान्नत्व है, उपलादिलवनाअङ्गत्व नहीं।

   **ग) वाक्य**- समभिव्याहार वाक्य है। समभिव्याहार उच्चारण के साथ है। यथा- 'यस्य पर्णमयी जुर्हूभवति न स पापं श्लोकं श्रृणोति', यहाँ पर्णता जुहू का

टिप्पणी

समभिव्याहार से ही पर्णता का जुह्वत्व है।

घ) **प्रकरण**- उभयाकाक्षङ्क्षा प्रकरणम्। परस्पर दो वाक्यों की आकांक्षा होती है तो वह प्रकरण कहलाता है। जैसे- प्रयाजादि में 'समिधो यजति' इत्यादि वाक्य में फलविशेष के अनिर्देश के कारण समिद्याग द्वारा करना चाहिए, यह बोधान्तर क्या है, इस फल की आकांक्षा होती है। दर्शपूर्णमास वाक्य में भी 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्ग भावयेत्', यह बोधान्तर कैसे है, इस फल की आकांक्षा होती है। इस प्रकार दोनों आकांक्षा के द्वारा प्रयाज आदि के दर्शपूर्णमासाअङ्गत्व है।

और वह प्रकरण पुनः दो प्रकार का है- महाप्रकरण और अवान्तर प्रकरण। वहाँ मुख्य भावना सम्बन्धी प्रकरण महाप्रकरण है। और उससे प्रयाज आदि का दर्शपूर्णमासअङ्गत्व है। अङ्ग भावना सम्बन्धी प्रकरण अवान्तर प्रकरण है। और उसके द्वारा अभिक्रमण आदि का प्रयाज आदि अन्नत्व है।

ङ) **स्थान**- देशसामान्यं स्थानम्। स्थान पद द्वारा सन्निधि विशेष ही ज्ञेय है। स्थान और क्रम, अर्थान्तर नहीं है। वह दो प्रकार का है। पाठसोद्देश्य और अनुष्ठान सोद्देश्य। पाठ सोद्देश्य भी दो प्रकार का है- यथासन्निधिपाठ और यथासंख्यपाठ।

च) **समाख्या**- तत्र यौगिकः शब्दः समाख्या। शब्द चार प्रकार का है- यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ और यौगिकरूढ़। इनमें आध्वर्यव याचक इत्यादि यौगिक शब्द समाख्या है, यह ज्ञेय है। और वह समाख्या दो प्रकार की है- वैदिकी और लौकिकी।

इस प्रकार संक्षेप रूप में छः प्रमाण निरूपित हैं। इनमें श्रुति सभी की अपेक्षा बलवती है। समाख्या स्थान से बलवती है, स्थान से प्रकरण बलवान है, प्रकरण की अपेक्षा वाक्य बलवान है, वाक्य की अपेक्षा लिङ्ग बलवान है, और लिङ्ग की अपेक्षा श्रुति बलवती है।

### 3. अधिकार विधि।

कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधकः विधिः अधिकारविधिः। यह कर्मजन्यफलस्वामीः कर्मजन्यफलभोक्तृत्व है। और वह 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादि रूप है। स्वर्ग को उद्देश्य करके याग का विधान इसके द्वारा स्वर्गकाम का यागजन्यफलभोक्तृत्व प्रतिपादित होते हैं। 'यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽटाकपालं निर्वपेत्' इत्यादि द्वारा अग्निदाह आदि निमित्त में कर्म विदधता निमित्त के समान कर्मजन्यपापक्षयरूफलस्वाम्य भी प्रतिपादित है। एवं 'अहरहः सन्ध्याम् उपासीत' इत्यादि द्वारा शुचिविहित काल के जीवों में सन्ध्योपासन जन्य-प्रत्यवाय- परिहाररूप-और फलस्वाम्य को उत्पन्न करते हैं।

टिप्पणी

**4. प्रयोगविधि**

प्रयोगप्राशुभाव बोधक विधि प्रयोगविधि है। जिस विधिवाक्य के द्वारा प्रयोग का शीघ्रता सम्पादन का बोध होता है, वह प्रयोग विधि कहलाता है।

इस प्रकार चार प्रकार की विधियों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है।

## 14.8.2 मन्त्र

'प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्रः', यह मन्त्र का लक्षण है। जो वेद वाक्य कर्मानुष्ठान से सम्बद्ध द्रव्य देवता आदि पदार्थों को स्मरण करते हैं, वे मन्त्र वाक्य कहलाते हैं।

## 14.8.3 नामधेय

'विधेयार्थपरिच्छेदक वाक्य् नामधेयः'। जिन वाक्य के द्वारा विधेय का कर्तव्यता के द्वारा उपदिष्ट याग का परिच्छेद होता है, अर्थात् नाम जाना जाता है, वह नामधेय वाक्य है। जैसे- ''उद्भिदा यजेत पशुकामः'' नामधेय का उदाहरण है। यहाँ उद्भिदा पद के द्वारा याग सामान्य का विधान है, अपितु उद्भिदनामक याग के द्वारा पशुकाम यजेत है, ऐसा यागविशेष का विधान है।

## 14.8.4 निषेध

पुरूषस्य निवर्तक वाक्य निषेधः। यदि कोई कार्य पुरूष का अनर्थजनक हो तब वेदवाक्य उस कार्य से पुरूष निवृत्त होता है। जैसे- 'न कलञ्ज भक्षयेत्' इस निषेध वाक्य के अनर्थजनक कलञ्जभक्षण के कारण पुरूष निवृत्त होता है।

## 14.8.5 अर्थवाद

प्राशस्त्य-निन्दान्यतरपरं वाक्यम् अर्थवादः। जिस वेद वाक्य के स्वार्थ-प्रतिपादन में तात्पर्य नहीं होता किन्तु जो वेदवाक्य प्रशंसा द्वारा अथवा निन्दा द्वारा विधि अथवा निषेध कर्तव्याकर्तव्य सूचित करता है, वह अर्थवाद कहा जाता है। यथा- 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता', यह वेद वाक्य के द्वारा वायु का शीघ्रगामित्व सूचित होता है। वस्तुतः इस के द्वारा वायु की प्रशंसा की जाती है। और उसके द्वारा वायु शीघ्र फलदाता है, ऐसा सूचित है।

# 14.9 मोक्ष

प्राचीन मीमांसा दर्शन में स्वर्ग ही पुरूषार्थ है, ऐसा उक्त है। परन्तु परवर्ती काल में मीमांसक मोक्ष को परम पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। शरीर आदि के साथ

जीव का सम्बन्ध ही बन्धन हैं जब शरीर आदि के साथ जीव का सम्बन्धनाश होता है तब मोक्ष होता है। जब तक शरीर रहता है, तब तक सुख-दु:ख का भोग सम्भव होता है। प्रभाकर के मत में मोक्ष में जीव के सभी प्रकार के दु:खों का आत्यन्तिक रूप से विनाश होता है। कुमारिलभट्ट के मत में काम्यनिषिद्ध कर्मों के परित्याग से नित्य, नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान से सुख-दु:ख के भोग से जिसके सभी पाप क्षीण होते हैं, वह शम दम आदि से वेदान्त आदि के द्वारा प्रदर्शित उपाय के द्वारा आत्मतत्त्व के विचार से मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष केवल दु:ख का अभाव ही नहीं, अपितु आनन्द की अभिव्यक्ति है। मोक्ष में शरीर का नाश होता है, उससे जीव का पुनर्जन्म नहीं होता है।

## पाठगत प्रश्न 14.3

1. मीमांसा मत में वेद क्या है?
2. वेद कितने प्रकार का है? और वे क्या हैं?
3. विधि कितने प्रकार की है? और वे क्या हैं?
4. विनियोग विधि के सहकारी भूत कितने प्रमाण हैं?

   (क) चार (ख) पाँच (ग) छ: (घ) सात
5. प्रयोग विधि का लक्षण क्या है?
6. लिङ्ग प्रमाण की अपेक्षा कौन सा प्रमाण बलवान है?

   (क) श्रुति (ख) वाक्य (ग) स्थान (घ) समाख्या

## पाठसार

मीमांसा दर्शन के जो विषय हैं, उनकी संक्षेप में आलोचना इस पाठ में विद्यमान है। मीमांसकों के मत में प्रमाण और प्रमेय दो ही पदार्थ हैं। भाट्टमीमांसा दर्शन में छ: प्रमाण स्वीकृत हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। प्रभाकर (मीमांसक) अनुपलब्धि को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, उसके कारण वे पाँच ही प्रमाण स्वीकार करते हैं। प्रमाण के विषय में उनका मतभेद होने पर भी प्रामाण्य के विषय में उनका मतभेद नहीं है। मीमांसक प्रमाणों का प्रामाण्य स्वत: और अप्रामाण्य परत: होता है, यह स्वीकार करते हैं। वाक्य से अर्थबोध के विषय में मीमांसकों के दो मत प्रसिद्ध हैं। कुछ अभिहितान्वयवाद और कुछ अन्विताभिधानवाद को स्वीकार करते हैं। भाट्टमत में प्रमेय पाँच हैं- द्रव्य, जाति, गुण, क्रिया, और अभाव। प्रभाकर मत में तो प्रमेय आठ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या और सादृश्य।

टिप्पणी

मीमांसा दर्शन में विचार करके विषयों में अन्यतम धर्म है। उसका लक्षण ''वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थः धर्मः'' है। मीमांसासूत्र है- चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। यथा- स्वर्गकामो यजेत्, इस वेदवाक्य से स्वर्ग की कामना से याग का विधान है। वहाँ यजेत शब्द के श्रवण में किसी भी व्यापार में सुनी गई प्रवृत्ति दिखती है, वह भावना कहलाती है। उसका लक्षण है- ''भवितुः भवनानुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः''। वह दो प्रकार की है- शाब्दी और आर्थी।

मीमांसक मत में अपौरूषेय वाक्य ही वेद है। वेद पाँच प्रकार के हैं- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद। इनमें अज्ञात अर्थ का ज्ञापक वेदभाग विधि हैं प्रयोग समवेत अर्थ स्मारक मन्त्र हैं। विधेय अर्थ परिच्छेदक वाक्य नामधेय है। पुरूष का निवर्तक वाक्य निषेध है। प्रशस्ति-निन्दा से युक्त वाक्य अर्थवाद है। विधि पुनः चार प्रकार की है- उत्पत्ति विधि, विनियोग विधि, अधिकार विधि और प्रयोग विधि। उसमें कर्मस्वरूपमात्र बोधक विधि उत्पत्ति विधि है। अन्न प्रधान सम्बन्ध बोधक विधि विनियोग विधि है। कर्मजन्य फल-सवाम्य की बोधक अधिकार विधि है। प्रयोग प्रशुभात की विधि प्रयोग विधि है। इनमें विनियोग विधि के सहकारी भूत छः प्रमाण हैं। वे हैं- श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यारूप। उसमें निरपेक्ष श्रुति है। शब्द सामर्थ्य ''लिङ्ग'' है। समभिव्याहार वाक्य हैं उभयाकांक्षा प्रकरण है। देश सामान्य स्थान है। वहाँ यौगिक शब्द समाख्या है। इनमें से पूर्व-पूर्व उत्तर-उत्तर की अपेक्षा से बलवान है। समाख्या से स्थान बलवान है, स्थान से प्रकरण बलवान है, प्रकरण की अपेक्षा से वाक्य बलवान है, वाक्य की अपेक्षा लिङ्ग बलवान है और लिङ्ग की अपेक्षा श्रुति बलवती है।

सभी भारतीय दर्शन पुरूषार्थ को आश्रित करके प्रवृत्त होते हैं। मीमांसा दर्शन भी पुरूष को आश्रित करके ही प्रवर्तित है। प्राचीन मीमांसा दर्शन में स्वर्ग लाभ ही मोक्ष है। परन्तु आधुनिक मीमांसकों के मत में जीव के शरीर सम्बन्ध का नाश ही मोक्ष है, वही परम पुरूषार्थ है। मोक्ष के होने पर जीव के आत्यान्तिक रूप के सभी प्रकार के दुःखों का विनाश होता हैं।

## पाठान्त प्रश्न

1. मीमांसक कितने प्रमाण स्वीकार करते हैं?
2. मीमांसक के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण का परिचय दीजिए।
3. मीमांसक के मत में अनुमान का स्वरूप निरूपित कीजिए।
4. मीमांसक के मत में शब्द प्रमाण क्या है।
5. मीमांसकों के मत में अर्थापत्ति प्रमाण को निरूपित कीजिए।
6. मीमांसकों के मत में अनुपलब्धि प्रमाण को निरूपित कीजिए।

7. मीमांसकों में कौन अनुपलब्धि प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं?
8. मीमांसक अनुपलब्धि प्रमाण को कैसे स्वतन्त्र रूप में स्वीकार करते हैं?
9. अर्थापत्ति कितने प्रकार की है?
10. मीमांसक मत में अनुमान कितने प्रकार का है?
11. नैयायिकों के उपमान प्रमाण से मीमांसकों का उपमान कहाँ भिन्न है?
12. प्रमा क्या है? और अप्रमा क्या है?
13. प्रामाण्य के विषय में मीमांसकों का मत निरूपित कीजिए।
14. प्रामाण्य के विषय में सांख्यों का मत क्या है?
15. प्रामाण्य के विषय में नैयायिकों का मत क्या है?
16. प्रामाण्य के विषय में बौद्धों का मत क्या है?
17. अभिहितान्वयवादी कौन हैं?
18. अभिहितान्वयवाद क्या है?
19. अन्विताभिधानवाद कौन स्वीकार करते हैं?
20. अन्तिवाभिधानवाद क्या है?
21. विधि का लक्षण क्या है?
22. अर्थवाद क्या है?
23. मीमांसकों में कौन अभाव को पदार्थत्व द्वारा स्वीकार नहीं करता है?
24. मन्त्र का क्या लक्षण है?
25. मीमांसकों के मत में मोक्ष किस प्रकार का है?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-14.1**

1. छः
2. वेदान्त दर्शन
3. द्वादशलक्षणी

टिप्पणी

4. (ख) अभाव पदार्थ के ग्रहण के लिए
5. तीन
6. प्रत्यक्ष दो प्रकार का है- सविकल्प और निर्विकल्प।
7. अर्थापत्ति दो प्रकार का है- दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति।
8. उपपद्य ज्ञान से उपपादक कल्पना अर्थापत्ति है।

## उत्तर-14.2

1. प्रामाण्य स्वतः है, अप्रामाण्य परतः है।
2. यथार्थ ज्ञान
3. (ख) कुमारिल भट्ट का
4. (ख) पाँच
5. प्रभाकर का मत
6. चोदनालक्षणेऽर्थो धर्मः
7. भावना दो प्रकार की है- शाब्दी भावना और आर्थी भावना
8. ग्यारह

## उत्तर-14.3

1. अपौरूषेय वाक्य वेद है।
2. वेद पाँच हैं- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।
3. विधि चार प्रकार की है- उत्पत्ति विधि, विनियोग विधि, प्रयोग विधि और अधिकार विधि।
4. (ग) छः
5. प्रयोगप्राशुभावबोधकः विधिः प्रयोगविधिः।
6. (क) श्रुति

**।।चौदह पाठ समाप्त।।**

# 15

# वेदान्त

## प्रस्तावना

वेद के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद चार भागों में अन्तिम उपनिषद् ही वेदान्त शब्द द्वारा कहा जाता है। वेद का अन्त वेदान्त है (वेदस्य अन्तः वेदान्तः), यह वेदान्त शब्द का निर्वचन है। अन्त शब्द का सामान्य अर्थ 'अन्तिम' होता है। उसके द्वारा वेद के अन्तिम में उपनिषद् होने से उसका ही उपनिषद् शब्द के द्वारा व्यवहार है। कुछ संहिता भाग में भी उपनिषद् दिखता है यथा ईशोपनिषद्। उसमें वेदान्त शब्द की इस प्रकार व्याख्या होती है- वेद का अन्त अर्थात् सार ही उपनिषद् है। कैसे निखिल निगम का सार उपनिषद् कहलाता है। कहा जाता है यहाँ ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। और इसके अनुष्ठान द्वारा मानव चरम पुरूषार्थ मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अत एव इसका माहात्म्य सर्वोपरि है। उपनिषद् के अध्ययन द्वारा ही कैसे वह प्राप्त हो सकता है, इसमें उपनिषदों में ही प्रमाण विद्यमान है- ''तं त्वौपनिषदं पुरूषं पृच्छामि, वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था इत्येवम्''। वेदान्त दर्शन का ही अन्य नाम उत्तर मीमांसा होता है। इस पाठ में वेदान्त दर्शन के विविध मतों और उनके प्रतिपादित मुख्य तत्वों की आलोचना की जाएगी।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदान्त क्या है, यह जान पाने में;
- वेदान्त के अन्य नाम जान पाने में;
- वेदान्त परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- वेदान्त सम्प्रदाय कितने हैं, जान पाने में;

- अद्वैत वेदान्त के विषय में सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- शुद्धाद्वैत विषयी धारणा को अर्जित कर पाने में;
- अचिन्त्य भेदाभेद के विषय में जान पाने में।

## 15.1 वेदान्त दर्शन का आरम्भ

भगवान् बादरायण ने ज्ञानकाण्डात्मक उपनिषद् भाग के अर्थ-विस्तार के लिए तथा वेद विरूद्ध-मतों के निराकरण के लिए सूत्रात्मक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ के चार अध्याय होते हैं। प्रथम अध्याय का नाम समन्वयाध्याय है। द्वितीय अध्याय का नाम अविरोधाध्याय है। तृतीय अध्याय का नाम साधन अध्याय हैं चतुर्थ अध्याय का नाम फलाध्याय है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में अनेक अधिकरण होते हैं। चार अध्यायों में 555 सूत्र होते हैं। इस ग्रन्थ के ही अन्य नाम हैं- उत्तर मीमांसा, शारीरिक सूत्र, वेदान्त सूत्र, ब्रह्म सूत्र इत्यादि। इस ग्रन्थ को आधारित करके ही शंकराचार्य आदि विविध दार्शनिकों ने स्वयं भाष्य रचें। उस भाष्य के अनुसार ही उनका दर्शन प्रवृत्त हुआ। वेदान्त में प्रसिद्ध दश मत होते हैं।

| सम्प्रदाय का नाम | प्रवर्तक | काल (ईस्वी) | भाष्य का नाम |
|---|---|---|---|
| निर्विशेषाद्वैत | शंकराचार्य | 788-820 | शारीरिक भाष्य |
| भेदाभेद | भास्कराचार्य | 850 | भास्कर भाष्य |
| विशिष्टाद्वैत | श्रीरामानुजाचार्य | 1140 | श्रीभाष्य |
| द्वैत | माध्वाचार्य-आनन्दतीर्थ | 1288 | पूर्णप्रज्ञ भाष्य |
| द्वैताद्वैत | निम्बार्क | 1250 | वेदान्तपरिजात भाष्य |
| शैवविशिष्टाद्वैत | श्रीकण्ठ | 1270 | शैवभाष्य |
| वीरशैव विशिष्टाद्वैत | श्रीपति | 1400 | श्रीकरभाष्य |
| शुद्धाद्वैत | वल्लभाचार्य | 1478-1544 | अणुभाष्य |
| अविभागाद्वैत | विज्ञानभिक्षु | 1600 | विज्ञानामृत |
| अचिन्त्यभेदाभेद | बलदेव | 1725 | गोविन्दभाष्य |

## 15.2 अद्वैत दर्शन

वेदान्त दर्शनों में सर्वदर्शन शिरोरत्नभूत अद्वैत दर्शन होता है। अद्वैत दर्शन के प्रवर्तक हैं आचार्य शंकर। इस आचार्य के द्वारा सूत्रों के ऊपर लिखित भाष्य शांकर भाष्य के नाम

से प्रसिद्ध है। इस दर्शन में एक वस्तु की ही सत्ता स्वीकार की जाती है और वह ब्रह्म है। यह दर्शन अन्य (दर्शन) से वैशिष्ट्य रखता है। यथा केवल इसमें ही जगत् मिथ्या है। जगत का अभिन्न निमित्त-उपादान कारण ब्रह्म होता है। ब्रह्म जगत की परिणति नहीं विर्वत है। बहुजीववाद स्वीकार नहीं करते, सोपाधिक ब्रह्म ही जीवत्व है। जीव-ब्रह्म का ऐक्य ही मोक्ष है। आगे इस विषय में विस्तार से प्रतिपादित है।

## 15.2.1 आचार्य परम्परा-

अद्वैत दर्शन साक्षात् शिव से प्रारब्ध है, यह सम्प्रदायविद का वचन है। जैसे अद्वैत सम्प्रदाय में प्रसिद्ध श्लोक है-

**सदा शिवसमारम्भां शंकराचार्यमध्यमाम्।**
**अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरूपरम्पराम्॥**

यद्यपि भगवान् शंकराचार्य इसके प्रवर्तक कहे जाते हैं तथापि इससे पहले अनेक आचार्यों ने इस दर्शन को प्रचारित किया। अद्वैत आचार्य परम्परा के विषय में अन्य श्लोक भी प्रसिद्ध है-

**नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।**
**व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रम्।**

**अथास्य शिष्यं श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मादञ्च हस्तामलकञ्च शिष्यम्।**
**तं तोटकं वार्तिककारमन्यान् अस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि॥**

### शंकर से पहले कुछ आचार्य

**द्रविड़ाचार्य**- यह आचार्य उपनिषदों के भाष्यकार थे, यह सम्प्रदाय है। शंकर भगवत्पाद ने बृहदारण्यक भाष्य में इनको सम्प्रदाय विद् के रूप में व्याख्यायित किया है। श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्य ने भी 2.1.14 सूत्र के भाष्य में किसी द्रविड़ आचार्य के विषय में कहा है। दोनों समान व्यक्ति है, यह अनेक विद्वानों का मत है। मधुसूदन सरस्वती रचित संक्षेप शारीरिक टीका में ब्रह्मनन्दी विरचित वाक्य के सूत्र रूपों के भाष्यकर्ता द्रविड़ाचार्य है, ऐसा सुचित है। आनन्दगिरि, तोटकाचार्य इत्यादि बहुत से आचार्यों ने इनका उद्धरण दिया है।

**ब्रह्मनन्दी**- आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने संक्षेप से शारीरक के 3/217 श्लोक की टीका में ''ब्रह्मनन्दी'' में इसका नामोल्लेख किया। यह आचार्य छान्दोग्योपनिषद् के वाक्यकार थे, ऐसी प्रसिद्धि है। इसके विषय में स्पष्ट प्रमाण कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है।

**गौड़पादाचार्य**- इनका काल छठी शताब्दी है, ऐसा विद्वानों का मानना है। महर्षि पतञ्जलि इनके गुरू थे, तथा व्यास पुत्र शुकः गुरु थे, ऐसी कुछ समालोचना करते हैं यद्यपि

टिप्पणी

उस कथन में कोई भी योग्य प्रमाण नहीं है। उत्तरगीता व्याख्या, पञ्चीकरण वार्तिक, नृसिंहतापनीयभाष्य, अनुगीताभाष्य इत्यादि अनेक ग्रन्थ गौड़पाद द्वारा प्रणीत होने से प्रसिद्ध हैं। उसमें माण्डूक्यकारिका, माण्डूक्योपनिषद् को अधिकृत करके लिखी गई अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठापिका रूप में बहुप्रसिद्ध है। इस कारिका ग्रन्थ के चार प्रकरण होते हैं। उसके नाम यथाक्रम हैं- आगम प्रकरण, वैतथ्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण, अलातशान्ति प्रकरण। ये आचार्य शंकर भगवत्पाद के परम गुरू हैं। इस प्रकार लिखित माण्डूक्यकारिका शंकरभगवत्पाद द्वारा भी व्याख्यायित हैं। उसमें ही व्याख्यान के अन्त में शंकरभगवत्पाद ने इनको इस प्रकार प्रणाम किया है- ''तं वै पूज्याभिपूज्यं परमगुरूममुं पादपादैर्नतोऽस्मि।''

**शंकराचार्य**- आठवें शतक में (788 ईस्वी में) केरल प्रदेश में इस आचार्य ने शिवगुरू नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्म प्राप्त किया। ये आचार्य गोविन्दपाद के शिष्य तथा गौड़पादाचार्य के परम शिष्य हैं। व्यास की आज्ञा से ही आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा, यह रूढ़ है। शंकरभगवत्पाद ने ब्रह्मसूत्र को छोड़कर भी दस उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीता की अद्वैत परक भाष्य की रचना की। और विवेकचूड़ामणि, उपदेशसाहस्री इत्यादि ग्रन्थों के तथा मोहमुद्गरादि स्तोत्रों के प्रणेता शंकरभगवत्पाद हैं।। जिन उपनिषदों के भाष्य आचार्य द्वारा लिखे गए हैं, वे हैं-

**ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।**
**ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।**

श्वेताश्वतरोपनिषद् का भाष्य भी शंकराचार्य के द्वारा कृत है, ऐसा भी माना जाता है। उस समय में विद्यमान पूर्व मीमांसा दर्शन के प्रबल तेज को शम करके अद्वैत दर्शन का विजयरथ सम्पूर्ण भारत में चला। इनके द्वारा संन्यास आश्रम के दशनामि सम्प्रदाय की सृष्टि हुई और भारत के चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित (प्रतिष्ठापित) हुए। इनके चार शिष्य प्रसिद्ध हैं- पद्माचार्य, तोटकाचार्य, सुरेश्वराचार्य और हस्तामलकाचार्य। 820 शताब्दी में शंकराचार्य ने स्वधाम प्राप्त किया। आचार्य के जीवन के विषय में यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है -

**''अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।**
**षोडशे कृतवान भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।''**

## शंकर से परवर्ती कुछ आचार्य

**पद्पादाचार्य** - इनका समय 800 ईस्वी था। यह शंकराचार्य के साक्षात् शिष्य थे। आश्रम स्वीकार करने से पूर्व का नाम सनन्दन था, और पिता विमल नामक ब्राह्मण थे। इनके द्वारा शंकराचार्य रचित चतुः सूत्री भाष्य के ऊपर पञ्चपादिका नामक व्याख्यान किया गया। इनके द्वारा लिखे गए अन्य ग्रन्थ हैं, यथा विज्ञानदीपिका, आत्मबोधव्याख्या, आत्मानात्मविवेकव्याख्या, तत्वमसिपञ्चक इत्यादि।

**सुरेश्वराचार्य**- यह आचार्य वार्तिककार नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। शंकरलाल ही

इसका काल है। इनके द्वारा शंकराचार्य की आज्ञा से ही भाष्य के ऊपर वार्तिक लिखा गया। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, यथा तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, नैष्कर्म्यसिद्धि, प्रणवार्थकारिका। प्रसिद्ध मीमांसक मण्डनमिश्र ही शंकराचार्य से वाद में पराजित होकर सुरेश्वराचार्य के रूप में शिष्य हुए, यह भी कुछ लोग कहते हैं।

**प्रकाशात्मयति**- अन्यानुभव के शिष्य प्रकाशात्मयति का अपर नाम स्वयम्प्रकाशानुभव था। ये ग्यारहवीं शताब्दी में हुए थे, ऐसा कहा जाता है। इनके द्वारा पञ्चपादाचार्य विरचित पञ्चपादिका को अवलम्ब्य करके पञ्चपादिका विवरण नामक व्याख्यान विहित है। इस व्याख्यान को आश्रय बनाकर आगे विवरणप्रस्थान, यह नूतन सम्प्रदाय आरम्भ हुआ।

**वाचस्पति मिश्र**- इस आचार्य का काल नवम शताब्दी का मध्य भाग है। यह मिथिला देशीय थे, ऐसा सुना जाता है। वेद, धर्मशास्त्र, सांख्य, योग आदि विषयों में वाचस्पति नाम से अनेक ग्रन्थ प्रणीत प्राप्त होते हैं। इस आचार्य ने सूत्रभाष्य के ऊपर भामती नामक टीका रची। बाद में इस टीका को आधार बनाकर भावदीपिका-भामतीविलास-कल्पतर्वदि ग्रन्थ लिखे गए। इस टीका को आश्रित करके सूत्रभाष्य का एक प्रस्थान ही आरम्भ हुआ, यह भामती प्रस्थान है।

**आनन्दगिरि**- संन्यास स्वीकार करने से पूर्व का नाम जनार्दन था। सन्यास से यह आनन्दज्ञान, आनन्दगिरिक, इन नामों से कहे गए। यह 'द्वारका-शंकरपीठाधीश थे। प्रकटार्थविवरणकार, अनुभूतिस्वरूपाचार्य इनके विद्यागुरू तथा शुद्धानन्द दीक्षागुरू थे। इनका काल तेरहवीं शताब्दी है। सम्पूर्ण प्रस्थानत्रयी के ऊपर जो शांकरभाष्य उपलब्ध है, उसका सम्पूर्ण व्याख्यान इस आचार्य ने किया।

## 15.2.2 ब्रह्म

अद्वैत दर्शन में द्वितीय किसी भी वस्तु का यथार्थ स्वीकार नहीं किया जाता है। अतः द्वितीय के निषेध से यह अद्वैत कहलाता है। जैसे-

**द्विधेतं द्वतीमित्याहुः तद्भावो द्वैतमुच्यते।**
**तन्निषेधेन चाद्वैतं प्रत्यग्वस्त्वभिधीयते॥**

अद्वैत दर्शन में जो ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित है वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। और वह निर्गुण, निष्क्रिय, शान्त और अवाङ्मनसगोचरम् (मन के द्वारा अग्राह्य) है। क्योंकि इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप वाणी द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता अतः नेति नेति मुख द्वारा सर्वत्र उपदिष्ट है। अतः अद्वैत शब्द का अर्थ द्वैत का निषेध होता है, शुद्ध अद्वैत का प्रतिपादन न हो सकने के कारण। जैसे श्रुतियाँ हैं- ''न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः (केन.उ. 2.4), यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह (तै.उ. 2.4), न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा (मं.उ. 3.1.8), अदृश्यमव्यवहार्यम् अग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमत्यपदेश्यम् (मा. उ. 2.5), अस्थूलमनु। ब्रह्म के एकत्व को प्रतिपादित करने के लिए श्रुति में उक्त है-

टिप्पणी

एकमेवाद्वितीयम्। उसका अर्थ होता है- सजातीय-विजातीय-स्वगत भेदशून्य ब्रह्म। तीन प्रकार के भेद कैसे होते हैं, इस विषय में पञ्चदशी में स्पष्ट कहा गया है-

**''वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः।**
**वृक्षान्तरात् सजातीयो विजातीयः शिलादितः।'' (2/20)**

ब्रह्म सर्व विस्तृत सर्व व्यपक, सभी पदार्थों में अनुस्यूत रूप से विद्यमान रहता है। प्रमाण है, यथा-सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्। और-

**''ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतृचोत्तरेण।**
**अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ (मं.उ. 2.1.11)**

स्मृति में भी उक्त है- 'मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव। अतएव ब्रह्म विज्ञान होने पर भी सर्वज्ञान होता है, यह अद्वैत सिद्धान्त है। ब्रह्म से भिन्न को अस्वीकार करने तथा अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना के लिए यह छान्दोग्य-वाक्य दृढ़ प्रमाण है - उत तमादेशमप्राक्ष्य येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति (छां.उ. 6.1.3)। तथा मुण्डकवाक्य- 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' (मु.उ. 1.1.3)। यहाँ एक को जानने पर सभी जान लिया जाता है। द्वितीय किसी भी वस्तु की सत्ता स्वीकार करने पर यह प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं होती है। यह ब्रह्म ही जगत का उपादानकारण और निमित्त कारण है। क्योंकि अद्वैत दर्शन में ब्रह्म से भिन्न अन्य किसी की भी सत्ता स्वीकार नहीं की जाती है, अतः दोनों कारण ब्रह्म ही होते हैं, अन्य कोई भी नहीं। जगत् के जन्म आदि का कारणत्व ही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। इस कथन में द्वितीय सूत्र प्रमाण है- 'जन्माद्यस्य यतः'। ब्रह्म के जगतकारणत्व में ये श्रुतियाँ उदाहरण हैं- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभ्झिसंविशन्ति (तै.उ. 3.1), तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति (मुं.उ. 2.1.1)

**''यथोर्णनाभिः सृजते गह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।**
**यथा स्वतः पुरूषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥**
**(मु.उ. 3.1.1.7)**

## 15.2.3 जगत

अद्वैत में जिस प्रकार ब्रह्म प्रतिपादित है, उसी प्रकार ब्रह्म से किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती है तो दृश्यमान जगत् कैसे सम्भूत हुआ, यह प्रश्न स्वाभाविक है। इसमें कहा जाता है- जैसे मृदा से घट उत्पन्न होता है वैसे ब्रह्म से जगत उत्पन्न नहीं है। अद्वैतियों के मत में जगत् तो सत्य नहीं है अपितु मिथ्याभूत है। जैसे अज्ञान के कारण शुक्ति में रजत् प्रतीत होता है वैसे ही ब्रह्म में जगत उत्पन्न होता है। अतः जगत के मिथ्यात्व में कोई भी आपत्ति नहीं है और निर्धर्म, निर्गुण निष्क्रिय ब्रह्म से उत्पन्न होने में भी नहीं। अद्वैत सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध वचन होता है- ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो

ब्रह्मैव नापरः''। अज्ञान के कारण यथा सर्प रूप में प्रतीत होता है वैसे ही निर्विशेष ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रतीत होता है। रज्जु में यथा परमार्थतः सर्प कभी भी नहीं था, वैसे ही जगत् परमार्थ रूप में कभी नहीं होता है। क्योंकि जगत् न उत्पन्न होता है उससे उसका नाश अथवा विनास सम्भव नहीं होता है। गौड़पदाचार्य के द्वारा माण्डूक्यकारिका में कहा गया है-

'प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशय'। अतः अद्वैतवाद अजातवाद भी कहलाता है। यद्यपि अद्वैतियों के द्वारा भी व्यावहारिक दशा में जगत की सत्ता स्वीकार की जाती है।

## 15.2.4 माया

माया ब्रह्म की शक्ति विशेष है और उससे ही उत्पन्न है। माया के अन्य नाम हैं- यह माया अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, अक्षर, अव्यक्त इत्यादि शब्दों से व्यवहृत है। कुछ इस प्रकार कहते हैं, सत्व, रजस् और तमो गुणों की साम्यावस्था प्रकृति कहलाती है। उसके ही दो भेद हैं। शुद्ध सत्व प्रधान माया होती है। मलिन, सत्व प्रधान अविद्या होती है। किन्हीं के मत में ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या है।

माया का स्वरूप क्या है तो माया न सत् है और न असत्। तीनों कालों में जिसका बाधा नहीं होता है, वह सत् है। सत् पदार्थ तो ब्रह्म ही है, माया नहीं, उसके ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त बाधित होने के कारण। जो कभी भी प्रतीत नहीं होता है, वह असत् है। यथा आकाश-कुसुम, खरगोश के सींग इत्यादि। माया तो प्रतीत होती है, अतः असत् नहीं है। इस प्रकार माया सदसद्भ्यामनिवर्चनीय है। शंकर भगवत्पाद द्वारा विवेकचूड़ामणि में माया का स्वरूप कहा गया है- सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका सान्नाप्यनन्नाप्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा नो।। माया गुणत्रय सत्व, रजस्, तमस् का समूह होती है। माया के त्रिगुणत्व में विद्वान इस प्रकार श्रुतिवाक्य को प्रमाण रूप में देखते हैं- अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्। यहाँ लोहित, शुक्ल, कृष्ण वर्णीय यथाक्रम रजस्, सत्व, तमस् के लिङ्ग के भूत हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है- दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्या। माया अज्ञान शब्द के द्वारा व्यवहृत हैं। अज्ञान शब्द का अर्थ है- ज्ञान का अभाव। अज्ञान अभाव पदार्थ नहीं है। इसमें अज्ञान शब्द नए अर्थ अभाव में नहीं अपितु विरोध अर्थ में स्वीकरणीय है। इस प्रकार अज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञानविरोध ी होता है। ज्ञान को आच्छादित करता है वह अज्ञान है। यह भी मन में स्थापित करके सदानन्दयोगी के द्वारा अज्ञान का लक्षण उक्त है- 'अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधियत्किञ्चित', ऐसा कहते हैं।

## 15.2.5 जीव स्वरूप

अद्वैत में तो ब्रह्म से जीव भिन्न नहीं है। ब्रह्म ही माया के संसर्ग से उपाधि परिच्छिन्न सत् जीव रूप में कहा जाता है। अतएव यहाँ बहुजीववाद सम्भव नहीं होता है जीव

का परिणाम भी विभु-परिणाम कहलाता है। जीव के विषय में अद्वैत में तीन मत हैं। और वे प्रतिबिम्बवाद पर आश्रित अवच्छेदवाद पर आश्रित और आभासवाद पर आश्रित होकर उत्पन्न होते हैं। प्रतिबिम्बवाद में अज्ञान में चित्प्रतिबिम्ब ही जीव है। अवच्छेद पक्ष में अन्तः करण से अवच्छिन्न चैतन्य ही जीव है। किन्हीं का मत है कि ब्रह्म का आभासमात्र ही जीव है।

## 15.2.6 प्रमाण

अद्वैत वेदान्त में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि।

## 15.2.7 मोक्ष का स्वरूप और उनके साधन

ब्रह्मेक्य अनुभूति ही मोक्ष है। इसीलिए निर्गुण ब्रह्म-विद्यानुशीलनकारियों की 'अहं ब्रह्मास्मि', इस कारिका की अनुभूति ही मोक्ष कही जाती है। यह मोक्ष अद्वैत में किसी नूतन वस्तु की प्राप्ति नहीं है। यथा कण्ठस्थ मणिमाला अज्ञान के कारण गई हुई प्रतीत होती है तत्पश्चात् उसका ज्ञान होने पर वह प्राप्त ही होती है वैसे ही जीवों की मोक्ष-प्राप्ति है। वस्तुतः जीव का ब्रह्म के साथ अभेद ही है, अज्ञान के कारण भेद माना जाता है। अज्ञान-नाश होने पर ही अपने स्वरूप का ज्ञान सम्भव होता है, तब मुक्ति होती है। अतः ज्ञान से ही मोक्ष है, कर्म से नहीं। कर्म तो चित्तशुद्धि के प्रति परम्परा से कारण हो सकता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-

**'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः ततस्तु तं पश्यति निष्फलं ध्यायमानः। (3.1.8)**

मोक्ष-प्राप्ति के लिए कैसे यत्न करने चाहिए- शम, दम आदि षटक् सम्पत्ति सम्पन्न अधिकारी निष्काम रूप में नित्य, नैमित्तिक आदि कर्म का आचरण करता है तो उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण से ही आत्मदर्शन सम्भव होता है। इसीलिए शंकराचार्य का वचन है कि शास्त्रचार्योपदशे युक्ति शम, दम आदि से संस्कृत मन आत्मदर्शन में करण होता है। इस प्रकार शुद्ध-चित्त अधिकारी के द्वारा श्रवण-मनन-निदिध्यासन अभ्यास किया जाना चाहिए। ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'', इस श्रुति-प्रमाण के कारण श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही आत्म साक्षात्कार में उपायभूत हैं। और इनके अभ्यास के द्वारा जब 'अहं ब्रह्मास्मि', यह कारिका अनुभूत होती है तब यथार्थ अनुभव होता है। तभी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', इसका सम्यक् अनुभव होता है और जगत् स्वप्न के साथ मिथ्या प्रतीत होता है।

## 15.2.8 मोक्ष का फल

जन्म, मरण के लक्षण रूप संसार-चक्र से मुक्ति ही मोक्ष है। संसार ही बन्ध है। जब

ब्रह्मैक्य की अनुभूति होती है तब जगत् मिथ्या प्रतीत होता है। इस प्रकार मिथ्याभूत जगत में जीव का पुनरागमन सम्भव नहीं होता है। श्रुति में भी उसका पुनरार्वतन नहीं होता है, इस मुक्त का पुनः संसार चक्र में आवर्तन निरूद्ध है। स्मृति में भी उक्त है- 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते'। इस प्रकार दुःख रूप संसार-चक्र को भेद कर ब्रह्म रूप होकर आनन्द का अनुभव ही मोक्ष का फल है।

## पाठगत प्रश्न 15.1

1. उत्तरमीमांसा दर्शन किसका अन्य नाम है?
2. वेदान्त दर्शन किस ग्रन्थ को आधारित करके प्राप्त हुआ?
3. वेदान्त शब्द द्वारा क्या कहा जाता है?
4. वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक कौन हैं?
5. ब्रह्मसूत्र में कितने अध्याय हैं? उनके नाम लिखिए।
6. अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक कौन हैं?
7. अद्वैत वेदान्त में शंकर परवर्ती तीन आचार्यों के नाम लिखें।
8. सुरेश्वराचार्य के गुरू कौन हैं?
9. अद्वैत शब्द का अर्थ दिखाएँ/बताएँ।
10. पञ्चपादिका किसके द्वारा रचित है, और किस पर आधारित है?
11. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण क्या है?
12. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण क्या है?
13. जीव का अद्वैत में क्या स्वरूप और क्या परिमाण है?
14. अद्वैत में जगत् किस प्रकार का है?
15. अद्वैत वेदान्त में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं और वे क्या हैं?

## 15.3 शुद्धाद्वैत

शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक हैं- वल्लभाचार्य। इनके द्वारा आचार्य शंकराचार्य के द्वारा अद्वैतवेदान्त में प्रतिपादित मायावाद के प्रमाण का खण्डन करके शुद्धाद्वैत का प्रतिष्ठापन किया गया। और निगुण रूप प्रेम-लक्षण का भक्ति के द्वारा प्रचार किया। इसका ही व्यावहारिक

स्वरूप पुष्टिमार्ग है। इस दर्शन में कारण रूप से और कार्यरूप से ब्रह्म शुद्ध ही रहता है। गोस्वामी गिरिधराचार्य के द्वारा कहा गया है-

**''माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।**
**कार्यकरणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मापिकम्''॥**

शुद्धाद्वैत शब्द का निवर्चन- शुद्धाद्वैत शब्द दो प्रकार से व्युत्पन्न है-

1. शुद्धयोः अद्वैत शुद्धाद्वैतम्, यह षष्ठी तत्पुरूष है। उस नाम का तात्पर्य है - शुद्ध जगत्-जीव के ब्रह्म से अद्वैत का अभिन्नत्व शुद्धाद्वैत जगत और जीव के ब्रह्म से अभिन्न ही है।

2. शुद्धं च अद्वैतं च शुद्धाद्वैतमिति कर्मधारयः।

उसका अर्थ है- ब्रह्म का जो अद्वैत है वह शुद्ध माया सम्बन्ध से रहित है।

## 15.3.1 आचार्य परम्परा

यद्यपि शुद्धद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य है तथापि उनके द्वारा रूद्र सम्प्रदाय का ही मत अभिनवरूप में उपस्थापित है, ऐसा कुछ विद्वान कहते हैं। रूद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी हैं। अतः शुद्धाद्वैत की आचार्य परम्परा में इसके विषय में चर्चा विहित है।

**विष्णु स्वामी**- वैष्णवों के जो चार सम्प्रदाय हैं, उनमें यह आचार्य रूद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस आचार्य का समय तेरहवीं शताब्दी के मध्यभाग का था। प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी के द्वारा स्वभावार्थ टीका में विष्णु स्वामी रचित सर्वज्ञसूक्त का अनेक बार उल्लेख किया गया। सैद्धान्तिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष में वल्लभाचार्य के द्वारा इस आचार्य से अपना मत भिन्न रूप में सम्पादित किया गया है। अत एव परमार्थ पक्ष में शुद्धाद्वैत का, व्यावहारिक पक्ष में पुष्टि मार्ग का विधान हुआ है।

**वल्लभाचार्य**- इस दर्शन के प्रवर्तक आचार्य यज्ञ नारायणभट्ट के वंशज थे। यद्यपि इनके काल के विषय में अनेक मत हैं तथपि सोलहवीं शताब्दी इनका काल है, ऐसा साम्प्रदायिकों का मत है। वाराणसी में अधीत यह शास्त्र स्वकुशाग्रधीकार से बाल-सरस्वती-वाक्पति, इस उपाधि द्वारा भूषित है। यद्यपि इस आचार्य के द्वारा लिखित चौरासी (84) ग्रन्थ हैं, ऐसी सम्प्रदाय में प्रसिद्धि है तथपि तीस (30) ही अब उपलब्ध होते हैं। कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, यथा-

अणुभाष्यम्- ब्रह्मसूत्र के ऊपर लिखित भाष्य

सुबोधिनी- श्रीमद्भगवद् की टीका

पूर्व मीमांसा भाष्य- जैमिनि सूत्र का भाष्य

**गोपीनाथ**- यह वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र हैं। वल्लभाचार्य के प्रयाण के अनन्तर इनके द्वारा ही सम्प्रदाय स्वयं के हाथों से रक्षित है। यह महान् विद्वान शास्त्रों में भी निरूपित हैं। यद्यपि साधनदीपिका नामक एक ही ग्रन्थ उपलब्ध होता है परन्तु और भी तीन ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे सेवाविधि, नामनिरूपणविधि और वल्लभाष्कम् हैं।

**विट्ठलनाथ**- वल्लभाचार्य के कनिष्ठ पुत्र इन्होंने सोलहवें शतक में जन्म प्राप्त किया। मेधावी इन्होंने उन्नीस (19) वर्ष में ही वेद और श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। सम्प्रदाय में इनकी प्रसिद्धि है- अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्धासक्तपदाम्बुज। इस विद्वान के प्रायः पचास (50) ग्रन्थ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। उनके मध्य में प्रमुख हैं- यथा-श्रीवल्लभाष्टक, श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीयमुनाष्टपदी, ललितत्रिभन्नस्तोत्र इत्यादि।

**गोस्वामी गिरिधराचार्य**- यह विट्ठलनाथ के ज्येष्ठ पुत्र थे। 45 वर्ष की आयु में इन्होंने आचार्य पदवी को प्राप्त किया। इनके द्वारा दो ग्रन्थ रचित हैं- यथा गद्यमन्त्र टीका और उत्सर्वनिर्णयस्तोत्र।

## 15.3.2 ब्रह्म

ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। यहाँ ब्रह्म में सविशेष और निर्विशेष द्वैविध्य व्याप्त नहीं है। एक ही ब्रह्म 'अस्ति' वाची शब्द द्वारा सगुण रूप में निरूपित है और 'नास्ति' वाची शब्द द्वारा निर्गुण रूप में निरूपित है। व्यावहारिक अवस्था में ब्रह्म जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है। ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है। सविशेष ब्रह्म नाम, रूप के द्वारा व्याकृत तथा उपाधि विशिष्ट होता है। यह स्वरूप ही ईश्वर बहुत इष्ट होता है। नाम, रूप आदि से अव्याकृत निरूपाधिक निर्विशेष ब्रह्म होता है। यही परमात्मा कहलाता है। यही यथार्थ स्वरूप ब्रह्म का निर्विकल्पक, निराकार रूप सत् है।

यहाँ ब्रह्म के दो स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं। वल्लभमतानुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वस्वतन्त्र तथा सर्वव्यापक गुणरहित सर्वज्ञ है। ऐश्वर्य आदि षड् गुणों से युक्त होने पर भी वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदों से शून्य होता है। वही प्रकृति के रूप में भोग्य होता है, पुरूष के रूप में भोक्ता होता है तथा दोनों का नियामक ईश्वर भी है। ब्रह्म के अनन्त रूपों के सत्व होने पर भी वह कूटस्थ सर्वविरूद्ध धर्मो का आश्रयभूत तर्क के द्वारा अगम्य होता है।

यहाँ भी ब्रह्म जगत का अभिन्न, निमित्त उपादान कारणत्व स्वीकृत है। यथा मृत्पिण्ड को जानकर सभी मुद्राओं का भी ज्ञान सम्भव हो जाता है, वैसे ब्रह्म का ज्ञान होने पर उससे उत्पन्न जीवों और जगत् का ज्ञान सम्भव होता है। जैसे मृदा भी सत्य है और उसका विकार घट भी सत्य है, उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है और उससे उत्पन्न जगत् जीव भी सत्य है। इस प्रकार ब्रह्म का निगुणत्व तथा अनन्त गुणत्व जो एक में विरोधी नहीं है वह प्रतिपादित होता है। वल्लभ के मत में यथा सर्प कभी कुण्डली

रूप में रहता है और कभी रज्जु के समान लम्बा रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म के भी दो रूप होते है। निर्गुण ब्रह्म भी भक्तों की कामना के अनुसार अनेक रूप धारण करते हैं।

बालकृष्णभट्ट के मतानुसार श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म पुरूषोत्तम हैं। श्रीमद्भगवतगीता के वचन के कारण श्रीकृष्ण के निर्विशेषत्व आदि गुण वर्णित हैं। यथा- मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय। अपाणिपादो जनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः इत्यादि श्रुति वाक्यों का श्रीकृष्ण मे अन्वय सिद्ध होते हैं। शुद्धाद्वैत मतानुसार ब्रह्म के दो रूप कहे जा सकते हैं, उनमें एक हैं परब्रह्म पुरूषोत्तम और अपर (अन्य) है अक्षर ब्रह्म।

**परब्रह्म पुरूषोत्तम**- श्रीकृष्ण ही द्विभुज (दो भुजाओं वाले) अथवा चतुर्भुज (चार भुजाओं वाले) होते हुए वृन्दावन अथवा वैकुण्ठ आदि स्थानों पर उनके ध्यान में संलग्न भक्तों के साथ रमणीयता से रहते हैं। और भक्त उनके साथ आनन्द का अनुभव करते हैं।

**अक्षरब्रह्म**- श्रीकृष्ण ही समग्र प्रपञ्च का कारणस्वरूप होते हैं। इसीलिए उनकी जब प्रजा के लिए इच्छा होती है तब उससे आनन्दांश का तिरोभाव होता है। कोई नवीन रूप आविर्भूत होता है तब जो सभी कारणों का कारण है। यही अक्षरब्रह्म शब्द का वाच्य है। और श्रीमद्भागवत में उक्त है- ''तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्''। (3/11/41) इस अदृश्यत्व आदि गुणस्वरूप अक्षर से ही देवता, मनुष्य, गन्धर्व आदि भूतों की उत्पत्ति होती है।

## 15.3.3 जीव का स्वरूप

भगवान् ही रमण की इच्छा से आत्मा के आनन्दांश के तिरोधान के लिए केवल सत्-रूप चिदंश के द्वारा आत्मा को बहुत प्रकार से प्रकट करते हैं। उसकी इच्छा से अनेक प्रजाएँ उत्पन्न होती है, यह श्रुति वाक्य ही इस प्रकार के मत के पोषक हैं। ईश्वर का ही यह नूतन रूप जीव कहलाता है। अत जीव की उत्पत्ति नहीं होती है, देहधारणवश उत्पन्न होता है, मरता है इत्यादि व्यवहार सम्भव हैं। शुद्धाद्वैत में जीव अणुपरिमाण होता है। यहाँ जीव के तीन भेद होते हैं। वे हैं- शुद्ध जीव, संसारी जीव और मुक्त जीव।

**शुद्ध जीव**- जैसे अग्नि से स्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं वैसे ही कारण स्वरूप अक्षर से जीव व्युत्पन्न होता है। अविद्या से सम्पर्क से पूर्व अतिरोहितानन्द, ऐश्वर्यादि षड् गुणों से युक्त जीव शुद्ध जीव कहलाता है।

**संसारी जीव**- तिरोहित आनन्दांश में माया के संसर्ग से ऐश्वर्य आदि के लोप होने पर जीव संसारी कहलाता है। अविद्या के सम्बन्ध के कारण उसका बन्ध उत्पन्न होता है। इसीलिए जन्म-मरण के चक्र में आबद्ध होता है। यह जीव सभी प्रकार के सुख-दुःख का भोग करता है और उसके लिए स्थूल-सूक्ष्म आदि नाना प्रकार के शरीरों को धारण करता है।

**मुक्तजीव**- संसारी जीव जब अनेक प्रकार के दु:खों के भोग के कारण आत्मा के उच्चतम काम युक्त भगवान् की शरण में आता है तब भगवान के अनुग्रह से वह माया से मुक्त होकर मूल स्वरूप को प्राप्त करता है। यही जीव की मुक्त अवस्था है।

## 15.3.4 जगत

यहाँ जगत सत्य स्वरूप होता है। जगत् साक्षात् ईश्वर का कार्य होता है, प्राकृत अथवा परमाणुजन्य और विवर्तरूप अथवा असत् रूप नहीं होता। ''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:'' यह श्रीमद्भगवद्गीता के वचन से सत् रूप से परमात्मा का असत् रूप प्रपञ्चन का सम्भव और असम्भव होना वर्णित है। अत: इनके मत में प्रपञ्च भगवत्कार्य है, उसका रूप माया द्वारा हुआ।

यह जगत् अधिकारी के भेद से भिन्न रूप में आभासित होता है। जैसे उत्तम अधिकारियों का यह सभी प्रकार का जगत् ब्रह्मात्मक और शुद्ध होता है। शास्त्र के अभ्यास द्वारा संस्कृतमति वालों के मत में जगत् परमात्म धर्म से युक्त सत् सत्यभूत होता है। जगत् में जो मायाधर्मी होते हैं वे तो मिथ्याभूत हैं। अविवेकी मानते हैं कि जगत् ब्रह्म और माया के धर्म से उत्पन्न कोई सत् वस्तु है। हरित उपनेत्र से जैसे सब कुछ हरा दिखता है परन्तु उसका हरित वर्ण मिथ्या होता है उसी प्रकार मायाधर्मी, 'सभी मिथ्या है', ये स्वीकार नहीं करते हैं। यह तो अधिकारियों की भेद दृष्टि होती है, जगत् का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार का नहीं है। जगत् नित्य, सत्य, ब्रह्मस्वरूप होता है।

## 15.3.5 प्रमाण

शुद्धाद्वैत में तीन ही प्रमाण स्वीकार किये गए हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

**''श्रुति: प्रत्यक्षमैतिह्यनुमानं चतुष्टयम्।**
**प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते''॥**

ऐसा श्रीमद्भगवद् के वचनानुसार यद्यपि गोस्वामी पुरूषोत्तम द्वारा प्रस्थान रत्नाकार में इनका उल्लेख किया गया है परन्तु अधिक विद्वान इनका अर्न्तभाव शब्द प्रमाण में ही करते हैं। अत: तीन ही प्रमाण हैं।

## 15.3.6 मोक्ष का स्वरूप और उसके साधन

वैष्णव दर्शन में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तप से ऐकान्तिक निवृत्ति ही मोक्ष अथवा निर्वाण है। माया से बद्ध जीव की मुक्ति नहीं होती है। मुक्त जीव की पाँच प्रकार के अध्यास, देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्त:करणाध्यास और स्वरूप-

विस्मृति से निवृत्ति होती है। अध्यास से मुक्ति सत्य में जन्म-मरण से स्वत: निवृत्ति होती है। मुक्ति भी दो प्रकार की होती है- सात्विकों की सायुज्यमुक्ति होती है, निर्गुणों की ब्रह्मभावमुक्ति होती है। सायुज्यमुक्ति का नाम भगवल्लीलास्वाद है। जीव का श्रीकृष्ण के साथ दिव्य वृन्दावन में लीला तथा उनके साथ नित्य सम्बन्ध ही मोक्ष है। कुछ उत्तम अधिकारी जीव सत्संग आदि पुण्य से भक्तिमार्ग में कहे गए और अनुष्ठान द्वारा सालोक्यरूप, सायुज्यरूप, सामीप्यरूप और सारूप्यरूप मुक्ति को प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् अक्षर ब्रह्म में लीन होते हैं। यही ब्रह्मभावमुक्ति है और वह परमानन्द रूप है।

वल्लभाचार्य द्वारा उक्त क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति को आधार बनाकर बालकृष्णभट्ट द्वारा चार प्रकार की मुक्ति प्रतिपादित है। प्रथम ऐहिक मुक्ति है यथा सनक आदि मुनियों की। द्वितीय पारलौकिकी उत्तम अधिकारियों की वृन्दावन आदि दिव्यलोक में स्थिति। तृतीय परममुक्ति शुद्धब्रह्मरूप से अवस्थान। चतुर्थ देवताओं की नित्यलीलाप्रवेशरूप मुक्ति।

शुद्धाद्वैत में मोक्षसाधनत्व के द्वारा पुष्टिमार्ग का विधान किया गया है। आचार्य आनन्दतीर्थ द्वारा जैसे अपने दर्शन में मादासाधनत्व के द्वारा भक्तिमार्ग का विधान किया गया है वैसे ही वल्लभाचार्य के द्वारा पुष्टिमार्ग का आविष्कार विहित है। पुष्टिमार्ग के नामकरण का मुख्य आधार है- श्रीमद्भागवद्पुराण। वहाँ द्वितीय स्कन्ध में पुष्टि शब्द की विशद आलोचना की गई है। पुष्टि का अर्थ पोषण है। भगवान् के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है, यथा श्रीमद्भागवत में उक्त है- पोषणं तदनुग्रह:। भक्ति मार्ग का ही अन्य नाम पुष्टिमार्ग है। यद्यपि वल्लभाचार्य ने कर्म, ज्ञान, भक्ति इन तीनों के ही भगवत्प्राप्ति के उपाय द्वारा ग्रहण किया तथपि भक्तिमार्ग की ही उनके द्वारा उत्कर्षता स्वीकार की गई है।

## पाठगत प्रश्न 15.2

1. शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक कौन है?
2. शुद्धाद्वैत शब्द का निर्वचन प्रदर्शित कीजिए।
3. ललितत्रिभङ्गस्तोत्र किसके द्वारा रचित है?
4. शुद्धाद्वैत में कितने प्रकार के जीव सम्भव होते हैं?
5. शुद्धाद्वैत में जगत् सत्य है अथवा मिथ्या?
6. शुद्धाद्वैत के अनुसार प्रपञ्च का निमित्त कारण क्या है?
7. शुद्धाद्वैत में कितने प्रमाण स्वीकृत हैं?
8. जीव की मुक्ति का शुद्धाद्वैत में क्या स्वरूप है?
9. ब्रह्मसूत्र के ऊपर शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय सम्मत भाष्य क्या और किसके द्वारा रचित है?
10. जीव का परिमाण क्या है?

## 15.4 अचिन्त्यभेदा भेद

इस दर्शन के प्रवर्तक बलदेव आचार्य हैं। इनका अपर नाम विद्याभूषण हैं। इनके द्वारा सूत्र भाष्यों के ऊपर गोविन्दभाष्य नामक भाष्य रचित है। यह मत है कि श्रीकृष्णचैतन्य द्वारा प्रस्तुत यह मत गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा अनुसृत और परिपालित है। इस प्रकार सुना जाता है कि श्रीकृष्णचैतन्य ने श्रीमद्भागवत और मध्यावाचार्य के पूर्ण प्रज्ञभाष्य को अपने मत के रूप में स्वीकार करके लोक में प्रचार किया। उनके भाष्य जहाँ जहाँ श्रीमद्भागवत का विरोधी होता है, वहाँ वहाँ उनके द्वारा परिष्कार का विधान हुआ। वह व्याख्या ही परम्परा क्रम से श्रीजीवगोस्वामी और विश्वनाथचक्रवर्ती विद्याभूषण महोदय द्वारा प्राप्त हुई। उसी व्याख्या को श्रीगोविन्द द्वारा स्वप्नदिष्ट किया गया और भाष्यरूप में रचा।

इस मत में वेदाध्ययन और वेदविहितकर्म द्वारा जिसका चित्त शुद्ध होता है, वह नित्य-अनित्य विवेक का अधिकारी होता है। इसमें ये पदार्थ स्वीकार किये जाते हैं- ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म। जीव आदि पदार्थ चतुष्टय ब्रह्म सम्बद्ध कर्म केवल जड़ और वह अदृष्ट आदि नाना शब्दों के द्वारा व्यवहृत है। कर्म अनादि परन्तु विनाशी है।

### 15.4.1 ब्रह्म

विशुद्ध अनन्त गुण युक्त अचिन्त्य शक्तिमान सच्चिदानन्द विग्रह रूप श्रीकृष्ण ही जगत् का कारण हैं। यह नित्य ज्ञान, आनन्द आदि ये युक्त विभु हैं। प्रकृति द्वारा अस्पष्ट होकर स्वतन्त्र है। यही जीव के भोग-अपवर्ग का विधान करते हैं। रूपहीन होने पर भी भक्तों के उद्धार के लिए घृत-विग्रह होता है। लोकों के पालन के लिए ही यह पृथिवी पर अवतरित होते हैं। इसीलिए तीन प्रकार के अवतार स्वीकार किये जाते हैं - अंशावतार, गुणावतार और शक्त्यावेशावतार। वहाँ अंशावतार दो प्रकार है- पुरूषावतार यथा कारणर्गावशायी भगवान् नारायण, लीलावतार मत्स्य, कूर्म आदि। गुणावतार यथा ब्रह्मा, विषणु, महेश आदि। शक्त्यावेशावतार यथा सनक, व्यास आदि।

### 15.4.2 जीव

जीव ब्रह्म का ही एकदेश है परन्तु उससे भिन्न अणु परिमाण है। यह ज्ञाता सत्व आदि गुणत्रय से युक्त परमात्माधीर श्रीहरि का नित्यदास स्वरूप है। परमात्मा का अंश और उसका ही चैतन्यरूप, इस प्रकार अभिन्न तथा अणु परिमाण, ईश्वर नियम्य इस प्रकार जीव भिन्न भी होता है। तथा परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से भिन्न होकर भी अभिन्न है, यह दर्शन अचिन्त्यभेदाभेद कहा जाता है। परमात्मा का अंश भी दो प्रकार का होता है- स्वांश और स्वरूपांश। स्वांश का अर्थ मत्स्य आदि अवतार स्वीकार्य है। स्वरूपांश जीव है।

### 15.4.3 जगत्

परमात्मा माया शक्ति के प्रभाव से ईक्षण (इच्छा) मात्र से ही जगत की सृष्टि करता है। यह माया सत्व-रजस्-तमस् की साम्यावस्था तथा नित्य होती है। माया प्रकृति अविद्या, इत्यादि शब्दों के द्वारा व्यवहृत है। माया शक्ति और जीव शक्ति द्वारा परमेश्वर जगत का उपादान कारण और पराशक्ति द्वारा निमित्त कारण होता है। इससे परमात्मा से कूटस्थत्व का विरोध नहीं होता है। क्योंकि उपादान कारण का ही परिणाम होता है, न की निमित्त कारण का। निमित्त कारण के रूप में वह कूटस्थ ही रहता है। जगत् के निर्माण के लिए परमेश्वर का ईक्षण सत्य है, उससे ही पृथिवी आदि भूतों का भी सत्यत्व है।

यहाँ सृष्टि प्रक्रिया इस रूप में है- आदि में परमेश्वर ही था। उससे माया उत्पन्न हुई, परमात्मा के ईक्षण से ही वह कार्य-प्रवृत्त होती है। उससे अक्षर वाच्य अव्यक्त उत्पन्न होता है। अक्षर से महत् की उत्पत्ति, महत से अहंकार की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से मन और देवताओं की (उत्पत्ति)। राजस् अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तामस् अहंकार से शब्द तन्मात्राओं की तत्पश्चात् पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं। सर्वत्र ही ब्रह्म कारणात्मा में प्रविष्ट होकर सृष्टिकार्य सम्पादित करता है। यहाँ मुख्यप्राण साक्षात् ब्रह्म से उत्पन्न है। इसमें मुख्यप्राण भौतिक वायु से भिन्न होने पर भी वह्नि आदि के समान सम्पूर्ण भिन्न पदार्थ नहीं है अपितु वायु-विशेष मात्र है। महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर की इच्छा द्वारा ही पञ्चीकरण द्वारा नाम-रूप से उनकी अभिव्यक्ति होती है, उससे स्थूल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है।

### 15.4.4 मोक्ष का स्वरूप और उसके साधन

यज्ञ, दान, तप, शम, दम आदि भक्ति वैराग्य, उपासना इत्यादि के अनुष्ठान के द्वारा भगवान प्रत्यक्ष होते हैं। भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं की अचिन्त्य कृपा शक्ति से भक्त के समक्ष आत्मस्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। एक रूप होने पर भी वह सख्य, दास आदि नाना भाव से भक्त के निकट होने पर आत्मा को प्रकट करते हैं। जीव के वैराग्य उदित होने पर संन्यास स्वीकार करने का भी इस मत में विधान है। यहाँ भी ज्ञानोत्पत्ति में यज्ञ आदि कर्मों की आवश्यकता नहीं होती है, अतः ज्ञान-कर्म समुच्चयवाद इसमें भी स्वीकृत नहीं है। ब्रह्मलोक में गमनान्तर श्रीकृष्ण का सायुज्य ही मुक्ति है। यह मुक्ति ब्रह्मज्ञान होने पर भी जब तक प्रारब्ध का क्षय नहीं होता तब तक उपलब्ध नहीं होती। साधन द्वारा सिद्ध स्थूल शरीर के त्याग के अनन्तर सूक्ष्म शरीर द्वारा अर्चिरादि द्वारा देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक के ज्ञाता है और परब्रह्म को प्राप्त करता है। अथवा भगवान् उसके अतिप्रिय भक्त को अर्चिरादि द्वारा व्यतिरेक के द्वारा ही गरूड़कर्तृक स्वधाम को प्राप्त करवाते हैं। यहाँ उसके सूक्ष्म शरीर का नाश होता है, और ब्रह्मलोक में भोग के लिए योग्य शरीर उत्पन्न होता है। सत्य संकल्प सत्यकाम पुरूष यहाँ दिव्य ऐश्वर्य का अनुभव करता है। परमेश्वर के अनुग्रह से ही

वह सर्वज्ञ होता है परन्तु उसकी जगतसृष्टि की सामर्थ्यता नहीं होती। ब्रह्मलोक से मुक्तों का जगत में पुनरार्वतन नहीं होता है।

## पाठगत प्रश्न 15.3

1. अचिन्त्यभेदाभेद सम्मत भाष्य किसके द्वारा रचित है?
2. गोविन्द भाष्य किसको आधारित करके लिखा गया है?
3. परमात्मा कैसे जगत् की सृष्टि करता है?
4. सात्विक अहंकार से किनकी उत्पत्ति होती है?
5. अवतार कितने प्रकार के स्वीकृत हैं?
6. मत्स्य कूर्म आदि किस प्रकार के अवतार हैं?
7. अचिन्त्यभेदाभेद में कौन अधिकारी है?
8. मुक्त पुरूष अल्पज्ञ है अथवा सर्वज्ञ?

## पाठसार

उपनिषदों में मानवों की परम पुरूषार्थ साधिका ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। अत एव उपनिषद् ही समग्र वेद के सारभूत रूप में होने पर वेदान्त शब्द से व्यवहृत है। उपनिषद् वाक्यों को आधारित करके ही भगवान् बादरायण के द्वारा सूत्रात्मक ग्रन्थ प्रणीत है। यहाँ आपातविरूद्ध-वाक्य समन्वित होते हैं। इस ग्रन्थ को आश्रित करके ही विविध भाष्य रचे गए हैं, उसके अनुसार सम्प्रदाय भी प्रारब्ध है।

अद्वैत दर्शन शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित है। इसमें केवल ब्रह्म की सत्ता ही स्वीकार की जाती है। शुद्ध ब्रह्म ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने में असमर्थ होने से नेति नेति मुख द्वारा सर्वत्र व्यपदिष्ट है। अतः द्वैत के निषेध के कारण यह अद्वैत कहा जाता है। यहाँ जगत् शक्ति रूप में प्रतिपाभासित होता है, यथार्थ नहीं। जीव ब्रह्मस्वरूप ही होता है और उसका विभु परिमाणत्व स्वीकार किया जाता है। और मोक्ष विस्मृत कण्ठस्थ हार की प्राप्ति के समान होता है।

शुद्धाद्वैत दर्शन वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित है। वैष्णव सम्प्रदायों में ही इसके मत का अन्तर्भाव होता है। इस मत में जगत् सत्य होता है, ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण। जीव ब्रह्म से उत्पन्न नित्यरूप, अणु परिमाण है। इस प्रकार मोक्ष लाभ के लिए पुष्टि मार्ग विहित है। मोक्ष प्रकार भी विविध रूप से दर्शित हैं।

टिप्पणी

अचिन्त्यभेदाभेद अत्यन्त नवीन दर्शन है। इसके प्रवर्तन में मुख्य वस्तुतः श्रीकृष्णचैतन्य, जिन्होंने मध्वाचार्य के पूर्णप्रज्ञभाष्य को श्रीभागवत के अनुसार व्याख्यात किया। उसका ही ग्रन्थरूप बलदेव ने गोविन्दभाष्य के रूप में प्रदान किया। यहाँ भी जगत् सत्य है। जीव ब्रह्म से उत्पन्न, उसके ही अंश स्वरूप परन्तु उससे भिन्न होते है। जीव का परिमाण अणुपरिमाण होता है। यहाँ श्रीकृष्ण सायुज्य ही मुक्ति है और सख्य दास आदि भाव से उसकी सेवा ही मोक्षोपाय है।

## पाठान्त प्रश्न

1. वेदान्त दर्शन के विषय में कुछ आलोचना कीजिए।
2. अद्वैत वेदान्त के कुछ आचार्यों के विषय में संक्षिप्त में निरूपण कीजिए।
3. अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म-स्वरूप की आलोचना कीजिए।
4. माया के वैशिष्ट्य को अद्वैत के अनुसार वर्णित कीजिए।
5. मोक्ष कैसे प्राप्त हो, इस विषय में अद्वैतशास्त्र में क्या उपदिष्ट है?
6. कुछ शुद्धाद्वैतियों के आचार्यों के विषय में वर्णन कीजिए।
7. जीवों का स्वरूप शुद्धाद्वैत में कैसे प्रतिपादित है?
8. पुष्टिमार्ग के द्वारा क्या होता है?
9. शुद्धाद्वैत में जीव की मुक्ति का क्या स्वरूप है?
10. अचिन्त्यभेदाभेद में जीव की मुक्ति कैसे प्रतिपादित होती है?
11. शुद्धाद्वैत में ब्रह्म का स्वरूप क्या है?
12. अचिन्त्यभेदाभेद के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया किस प्रकार की है?
13. अद्वैत में ब्रह्म निर्गुण कैसे है और जगत का उपादान कारण और निमित्त कारण कैसे है?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर-15.1**

1. उत्तर मीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शन का अन्य नाम है।
2. वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र को आधारित करके प्राप्त है।

3. वेदान्त शब्द से उपनिषद् कहा जाता है।
4. वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक भगवान् बादरायण हैं।
5. ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं। उनके नाम यथाक्रम हैं- समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, फलाध्याय।
6. अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य हैं।
7. अद्वैत वेदान्त में शंकर से परवर्ती तीन आचार्य हैं यथा, पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, वाचस्पतिमिश्र
8. सुरेश्वराचार्य के गुरू शंकराचार्य हैं।
9. जहाँ द्वैत नहीं है वह अद्वैत है, इसका अर्थ द्वैत निषेध है।
10. पञ्चपादिका पद्मपादाचार्य के द्वारा रचित है, ब्रह्मसूत्र की चतुःसूत्रीभाष्य को आधारित करके।

## उत्तर-15.2

1. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण सच्चिदानन्द है।
2. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण जगज्जन्मादिकारणत्व है।
3. जीव अद्वैत में ब्रह्मस्वरूप ही है। और वह विभुपरिमाण है।
4. अद्वैत में जगत शुक्ति में रजत के समान प्रतिभासिक मिथ्या है।
5. अद्वैतवेदान्त में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।

## उत्तर-15.3

1. शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य हैं।
2. शुद्धाद्वैत शब्द का निर्वचन है -

   शुद्धयोः अद्वैतं शुद्धाद्वैतमिति षष्ठी तत्पुरूषः,

   शुद्ध च अद्वैतं च शुद्धाद्वैतम इतिकर्मधारयसमासः।
3. ललितत्रिभङ्गस्त्रोत विट्ठलनाथ द्वारा रचित है।
4. शुद्धजीव-संसारीजीव-मुक्तजीव, शुद्धाद्वैत में तीन प्रकार के जीव सम्भव होते हैं।
5. शुद्धाद्वैत में जगत् सत्य होता है।
6. शुद्धाद्वैत के अनुसार प्रपञ्च का निमित्त कारण ब्रह्म ही होता है।

टिप्पणी

7. शुद्धाद्वैत में तीन प्रमाण स्वीकृत हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।
8. भगवान के अनुसार मूलस्वरूप का शुद्धब्रह्म के द्वारा अवस्थान ही मुक्ति है।
9. ब्रह्मसूत्र के ऊपर शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय सम्मत भाष्य होता है- अणुभाष्य (जो) वल्लभाचार्य द्वारा रचित है।
10. जीव का परिमाण अणुपरिमाण है।

**उत्तर-15.4**

1. अचिन्त्यभेदाभेद सम्मत भाष्य बलदेव द्वारा रचित है।
2. गोविन्दभाष्य बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र पर आधारित है।
3. परमात्मा ईक्षण मात्र से जगत् का सृजन करता है।
4. सात्विक अहंकार से मन और देवताओं की उत्पत्ति होती है।
5. तीन प्रकार के अवतार स्वीकृत हैं- अंशावतार, गुणावतार और शक्त्यावेशवतार।
6. मत्स्य, कूर्म आदि लालवतार हैं।
7. अचिन्त्यभेदाभेद में नित्यानित्यविवेकवान अधिकारी होता है।
8. मुक्त पुरूष सर्वज्ञ होता है।

॥ पन्द्रहवाँ पाठ समाप्त॥

# 16

# वेदान्त दर्शन-2

## प्रस्तावना

भारतीय दर्शन परम्परा में वेदान्त दर्शन मूर्धन्य स्थान विभूषित है। वह यह वेदान्त दर्शन प्रस्थान त्रयी को आश्रित करके शोभायमान है। शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य इत्यादि द्वारा वेदान्त विद्या के आचार-प्रचार के लिए भाष्य रचकर महान उपकार किया गया। आचार्यों के अनुभव-भेद से उनके भाष्य-व्याख्या में भी मतभेद दिखते हैं। अत: अद्वितीय वेदान्त दर्शन, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि बहुत से भेद द्वारा व्याख्यायित हैं। उसमें रामानुजाचार्य ने स्वानुभव, अनुगुण वेदान्त साहित्य विशिष्टाद्वैत रूप में व्याख्यायित किया है। मध्वाचार्य ने द्वैतसिद्धान्त अनुगुण प्रस्थानत्रयी की व्याख्या के लिए द्वैत वेदान्त दर्शन का वर्धन किया है। इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने स्वानुभव की परीक्षा करने हेतु तत्व-साक्षात्कारानुगुण वेदान्त विद्या को बहुत प्रकार से व्याख्यायित किया। अब इस पाठ में रामानुजाचार्य प्रवर्धित विशिष्टाद्वैत दर्शन, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत दर्शन, मध्वाचार्य प्रवर्तित द्वैतवेदान्त दर्शन, श्रीकण्ठ आचार्य का शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन और श्रीपति का वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन निरूपित है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्य परम्परा जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत दर्शन के तत्व त्रय-विचार को जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत दर्शन का जीवतत्व जान पाने में;
- शैवविशिष्टद्वैत दर्शन में जगत्-स्वरूप जान पाने में;

टिप्पणी

- शैवविशिष्टद्वैत दर्शन में मोक्ष स्वरूप जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में प्रमाण-त्रय जान पाने में;
- शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव-स्वरूप जान पाने में;
- द्वैताद्वैत दर्शन में मोक्षोपाय ज्ञात कर पाने में;
- द्वैत वेदान्त दर्शन की आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार प्रमाण-विचार जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार बन्ध-मोक्ष का विचार जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार मोक्षोपाय (भक्ति) जान पाने में;
- द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म-स्वरूप जान पाने में;
- वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में मोक्ष का स्वरूप जान पाने में;
- वीरशैवविशिष्यद्वैत दर्शन का सार जान पाने में;

## 16.1 वैष्णव दार्शनिक परम्परा

मुख्य रूप से प्राचीन-वैष्णव दार्शनिक सम्प्रदाय चार भागों में विभक्त हैं-

**रामानुज श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुखः।**
**श्रीविष्णुस्वामिनं रूद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः। (पद्मपुराण)**

| सम्प्रदाय | आचार्य | मत |
|---|---|---|
| श्री सम्प्रदाय (लक्ष्मी सम्प्रदाय) | रामानुजाचार्य | विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन |
| ब्रह्म सम्प्रदाय | मध्वाचार्य | द्वैतवेदान्त दर्शन |
| रूद्र सम्प्रदाय | विष्णु स्वामी/वल्लभाचार्य | शुद्धाद्वैत |
| सनक सम्प्रदाय (हंस सम्प्रदाय) | निम्बार्काचार्य | द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन |

## 16.2 रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत दर्शन

### 16.2.1 विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्य परम्परा

वैष्णव वेदान्त दर्शन में श्रीसम्प्रदाय प्रवर्तित विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन प्रसिद्ध है। श्रीसम्प्रदाय

ही लक्ष्मी सम्प्रदाय के नाम से भी विख्यात है। इस सम्प्रदाय में नारायण ही परम आचार्य हैं। नारायण के तत्वोपदेश में सर्वप्रथम लक्ष्मी ने लोक को उपदेश दिया, ऐसा जाना जाता है। इस दर्शन की आचार्य परम्परा में प्राचीन और अर्वाचीन आचार्य, यह विभाग किया जा सकता है। विश्वसेन-शठकोप-बोधायन से आरम्भ होकर नाथमुनि पर्यन्त प्राचीन आचार्य परम्परा में निर्दिष्ट हैं। नाथमुनि से आरम्भ होकर रंगरामानुज-वेदान्तदेशिकाचार्य पर्यन्त अर्वाचीन आचार्य हैं। रामानुजाचार्य के द्वारा वेदार्थ संग्रह में विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्यपरम्परा इस प्रकार प्रदर्शित है-बोधायन-ट्य-द्रमिड़-गुहदेव- कपर्दिभारूचि इत्यादि विगीत विशिष्ट परिगृहीत पुरातन वेद वेदान्त-व्याख्यान सुव्यक्तार्थ श्रुति आदि में निदर्शित यह पन्थ है। विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन का निरूपण बोधायन आचार्य के ब्रह्मसूत्रवृत्ति का अनुसरण करके किया गया है, ऐसी श्रीभाष्य के आदि में रामानुजाचार्य के द्वारा प्रतिज्ञा की गई हैं। यथा-भगवद्बोधायनकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः। अतः तन्मतानुसारेण सूत्रारक्षाणि व्याख्यास्यन्ते। (श्रीभाष्य 1/1/1)

अतः आचार्य परम्परा में भगवान बोधायन विशिष्ट स्थान अलंकृत करते हैं। और इस प्रकार विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्राचीन और अर्वाचीन आचार्य स्मरण किये जाते हैं, यथा ''नारायणः-लक्ष्मीः-विष्वक्सेनः-शठकोपः-बोपदेवः- नाथमुनिः-पुण्डरीकाक्षः-राममिश्रः-यामुनः-पूर्णाचार्यः-रामानुजः-रत्नरामानुज- वेदान्तदेशिकः''।

आज्ञवार अभिधेय योगियों ने तमिल भाषा में विशिष्टाद्वैत दर्शन नाथमुनि के काल से पूर्व निरूपित किया। अतः इस सम्प्रदाय में भक्ति मार्ग स्थानों का आज्ञवार अभिधेय योगियों का विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार आलवार योगियों, अन्य नाथमुनि इत्यादि का स्थूल परिचय नीचे निर्दिष्ट है।

## 16.2.2 द्वादश (बारह) आलवार पुरूष

दक्षित भारत में आलवार नामक योगीजन भागवत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। ये भक्तिमार्ग के पोषक नित्यसूरि प्रसिद्ध है। इनके द्वारा विशिष्टाद्वैत दर्शन तमिल भाषा में उपदिष्ट हैं। इनके उपदेश दिव्यप्रबन्ध (द्रविड़वेद) कहलाते हैं। बारह आलवार पुरूष सम्प्रदाय में उल्लिखित हैं। इन आलवार योगियों का जन्म-देश भागवत में निर्दिष्ट है। यथा-

**कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्**
**कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।**

**क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः।**
**ताग्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी॥ (भागवत 11.5.38-40)**

इन बारह आलवार पुरूषों के तमिल नाम के साथ संस्कृत नाम भी नीचे निर्दिष्ट हैं।

टिप्पणी

| संख्या | तमिल नाम | संस्कृत नाम |
|---|---|---|
| 1. | पोयगै आलवार | सरयोगी |
| 2. | पोदत्तालवार | – |
| 3. | पेय आलवार | महद्योगी (भक्तिसार) |
| 4. | नाम्मालवार | शठकोपमुनि |
| 5. | कुलशेखर आलवार | कुलशेखर |
| 6. | पेरिय आलवार | विष्णुचित्त |
| 7. | अण्डाल | गोदा |
| 8. | तेण्डरडिप्पोडि आलवार | विप्रनारायण |
| 9. | तिरूप्पन आलवार | मुनिवाहन (योगिवाहन) लोकसारंगमुनि |
| 10. | तिरूमर्ग आलवार | परकाल (750) |
| 11. | मधुरकवि | मधुरकवि |
| 12. | तिरूमलिशैपिरान् अलवार | – |

## 16.2.3 विशिष्टाद्वैत परम्परा में ग्रन्थ और उनका कर्तृपरिचय

| क्र.सं. | नाम | काल | विरचित ग्रन्थ | विशेष |
|---|---|---|---|---|
| 1. | नाथमुनि | 823 (ईस्वी) | योगरहस्य (अनुपलब्ध) नयतत्व (अनुपलब्ध) | (दिव्यप्रबन्ध-संग्रहचतु: सहस्रगीति (4000) |
| 2. | यामुनाचार्य | 917-1042 (ईस्वी) | आगमप्रामाण्य, महापुरुषनिर्णय (अनुलब्ध), आत्मसिद्धि, ईश्वरसिद्धि, संवित्सिद्धि, गीतार्थसंग्रह | नाथमुनिवर्य के प्रपौत्र। इनके शिष्य महापूर्ण-गौष्ठिपूर्ण |
| 3. | रामानुजाचार्य | 1017-1137 (ईस्वी) | श्रीभाष्य, गीताभाष्य, वैदार्थसंग्रह, वेदान्तसार, वेदान्तदीप, शरणागति-गद्य, श्रीरंगगद्य, वैकुठगद्य | श्रीवात्साद्यमिश्र-प्रिय शिष्य |
| 4. | श्रीवात्साद्यमिश्र (कूरेश) | 10-11 (ईस्वी) | श्रीस्तव, वैकुण्डस्तव, अतिमानुषस्तव, सुन्दरबाहुस्तव, वरदराजस्तव | श्रीभाष्य के लेखक |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 5. | वात्स्यवरदाचार्य | 13 (ईशा के उत्तर) | प्रपन्नपारिजात, प्रमेयमाला, प्रमेयसार, ज्ञानसार, तत्वसार, परतत्वनिर्णय, श्रीभाष्यसंग्रह | इनके प्रिय शिष्य आत्रेय समानुज सुदर्शभट्टारक |
| 6. | सुदर्शनभट्टारक | 1350 (ईशूत्तर) | श्रुतप्रकाशिका (श्रीभाष्य व्याख्या), तात्पर्यदीपिका, श्रुतदीपिका, शुकपक्षीय (भागवत् व्याख्या), श्रणागतिगद्य व्याख्या | – |
| 7. | वेंकटनाथाचार्य (वेदान्तदेशिक) | 1268-1369 (ईसा के बाद) | तत्वटीका (श्रीभष्य व्याख्या), तात्पर्यचन्दिका (गीताभाष्य व्याख्या), न्यायपरिशुद्धि, सेश्वरमीमांसा, सर्वार्थसिद्धि व्याख्योपेत, तत्वमुक्ताकलाप, अधिकरणसारावली, शतदूषणी, यादवाभ्युदय, हंससंदेश, पादुकासहस्र, संकल्पसूर्योदय | तमिल भाषा में अनेक प्रबन्ध विरचित हैं। |
| 8. | महाचार्य | 16 (ईसा के पश्चात्) | चण्डमारूत (शतदूषणी व्याख्या), उपनिषत्मन्नलदपिका तात्पर्यप्रकाशिका, विजयपञ्चक, अविद्या-परिकर-पाराशर्य-ब्रह्मविद्या-परिकर-पाराशर्य-ब्रह्मविद्या-सुद्विद्या | |
| 9. | रंगरामानुजाचार्य | 16 (ईसा के पश्चात्) | उपनिषद्भाष्य | – |
| 10. | वाधूलश्रीनिवासाचार्य | 17 (ईसा के पश्चात्) | यतीन्द्रमतदीपिका, तत्वमार्तांझड | महाचार्य के शिष्य |

## 16.2.4 प्रमाण विचार

प्रमा का करण प्रमाण कहलाता है। सभी ज्ञेय पदार्थ का ज्ञान प्रमाण के अधीन होता है। प्रमाण ही ज्ञान का द्वार है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन प्रमाणों का स्थूल परिचय नीचे दिया जा रहा है।

टिप्पणी

## 1. प्रत्यक्ष-

साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्, ऐसा कहा जाता है। प्रत्यक्ष प्रमा के प्रति असाधारण कारण ही साक्षात्कारी प्रमा का करण है। वहाँ प्रत्यक्ष प्रमा के उत्पत्ति के प्रकार इस प्रकार होते हैं।

''आत्मा मनसा संयुज्यते। मन इन्द्रियेण, इन्द्रियमर्थेन इति''। विशिष्टाद्वैत दर्शन-प्रक्रिया के अनुसार सभी इन्द्रियों के प्राप्य प्रकाशकारित्व को स्वीकार किया जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी विषय सम्बन्ध तथा उस विषय का ज्ञान उत्पन्न करती हैं। प्राप्य प्रकाशकारित्व इन्द्रिय सन्निकट विषय का द्योतकत्व है। यह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। सविकल्पक प्रत्यक्ष और निविकल्पक प्रत्यक्ष। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष द्रव्यगत गुण संस्थान आदि को अविषयीकृत प्राथमिक पिण्डमात्र ग्रहण (द्रव्यमात्र ग्रहण) है। जो द्रव्यगत गुणसंस्थान आदि को विषयीकृत करता है, वह सविकल्पक प्रत्यक्ष कहा जाता है।

इस दर्शन में सभी ज्ञान यथार्थ है, ऐसा निर्णय है। ज्ञान के अयथार्थत्व को विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में अनुमति नहीं है। ''यथार्थ सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम्' (श्रीभाष्य 1.1.1), ऐसा रामानुजाचार्य ज्ञान के यथार्थत्व को मानते हैं। इस दर्शन में यथार्थ ख्याति स्वीकृत है। यथार्थख्याति अल्प (सत्ख्याति)

अक्षरों के द्वारा नीचे व्याख्यात है।

### यथार्थख्याति/सत्ख्याति

वेदोक्त पञ्चीकरण प्रक्रिया द्वारा सभी वस्तु में सभी वस्तु अनुगत है। अतः 'इदं रजतम्'', यहाँ भी शुक्ति में रजतांश होता है। इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होने पर शुक्तिगत रजतांश गृहीत होता है, उससे व्यवहार ''इदं रजतम्'' होता है। ज्ञान का विषय यदि बाधित होता है तो उस ज्ञानत्व का भी भ्रम रूपत्व बाधित हो। किन्तु ज्ञान का विषय ''रजत'' तो पञ्चीकरण प्रक्रिया के द्वारा होता ही है। अतः ''इदं रजतमिति'' यह ज्ञान भी यथार्थ है, ज्ञान के विषय के सत्य होने के कारण।

प्रश्न- उत्तरकाल में 'नेदं राजतमिति'' (यह रजत नहीं है) उत्पद्यमान ज्ञान है, पूर्वोत्पन्न ''इदं रजतमिति'' ज्ञान बाधित होता है?

समाधान- यह रजत है, इस ज्ञान से वस्तुतः शुक्ति में विद्यमान अल्पांश का ही ग्रहण किया गया है। उसके उत्तरकाल में शुक्ति में विद्यमान अधिकांश ही गृहीत होता है। इससे उत्तरकाल में उत्पद्यमान 'नेदं रजतमिति' ज्ञान है, पूर्वका ''इदं रजतमिति'' यह ज्ञान जन्य व्यवहार का बाधक है, ज्ञानबाधक नहीं है। अतः वस्तु में अल्पांश ग्रहण से जो व्यवहार में विद्यमान-अधिकांशग्रहण द्वारा बोध होता है। अतः अल्पांश ग्रहण से उत्पन्न व्यवहार ही भ्रम है, वही बाधित है। इस प्रकार सभी ज्ञान यथार्थ है, ऐसा मत है।

### 2. अनुमान-

''अनुमितेः करणम् अनुमानम्। धूम-वह्नि के व्याप्य-व्यापक भाव को जानकार पर्वत पर वह्नि रूप प्रमिति ही अनुमिति कहलाती है। उसके समान वह्नि रूप अनुमिति का करण ही अनुमान कहा जाता है। यहाँ अविनाभाव सम्बन्ध ही व्याप्ति है। न्यून देशवर्ती व्याप्यत्व तथा अधिक देशवर्ती व्यापकत्व है, ऐसा ज्ञेय है। अनुमान प्रक्रिया में प्रतिज्ञा-हेतु-उदाहरण-उपनय-निगमन नामक पाँच अवयव हैं। ये पाँच अवयव नियम से अनुमिति की उत्पत्ति में अपेक्षित नहीं होते हैं। अनुमिति-ज्ञान की उत्पत्ति में पाँच अवयव भी अपेक्षित है, ऐसी विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया होती है।

### 3. शब्द-

अनाप्तैः अनुक्तं वाक्यं प्रमाणशब्देन अभिधीयते। अन्य शब्द अप्रमाण कहलाता है। वेद अनाप्त द्वारा प्रोक्त नहीं होते हैं। और पुनः पौरूषेय ग्रन्थ इतिहास, पुराण आदि भी अनाप्त द्वारा अनुक्त ही होते हैं। अतः पौरूषेयापौरूषेयरूप वेद-इतिहास, पुराण आदि इस दर्शन में शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। महाभारत में आये हुए पञ्चरत्न को शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। और पञ्चरत्न हैं-

**''गीतासहस्रनामानि स्तवराजो ह्यनुस्मृतिः।**
**गजेन्द्रमोक्षणं चैव पञ्चरत्नानि भारते॥''**

भागवत्-विष्णु पुराणों में विशिष्टाद्वैत परम्परा का परम प्रामाण्य है। आगमों में पाञ्चरात्र संहिता और पौष्कर संहिता प्रमाण रूप से स्वीकृत हैं। आलवार योगियों के द्वारा तमिल भाषा में विरचित दिव्य प्रबन्ध भी प्रमाण की कोटि में अन्तर्निहित है।

## 16.2.5 तत्व-त्रय विचार

''भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा'' (श्वे. उ. 1.12), इस श्रुति द्वारा विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तत्व त्रय का चिन्तन विहित है। तत्व तीन हैं। चित् (जीव), अचित् (प्रकृति/जगत्), ओर चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर (ब्रह्म)। उसमें शेष द्वार चिदचित्त का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा से चिदचित्त तत्व का आपृथग्भूत सम्बन्ध अंगा अंगी भाव स्वीकार किया जाता है। यह तत्व-त्रय सत्य रूप है। उनमें चित्तत्व पर विचार किया जा रहा है।

### चित् तत्व (जीव)

परमात्मा का शरीर स्थानीय (अंशरूप) चित् तत्व ही जीव है। उक्त है- अणुत्वे सति चेतनत्वं, स्वतः शेषत्वे सति चेतनत्वम्' (यतीन्द्रमादीपिका)। जीव चेतन स्वभाव का होता है। यह स्वयं प्रकाश रूप में विद्यमान होता है। जीव का स्वाभाविक कर्तृत्व स्वीकार किया जाता है। विशिष्टाद्वैत दर्शन की प्रक्रिया में जीव अणुरूप है। इसीलिए कहा गया

टिप्पणी

है- ऐषोऽणुरात्मा (मु. उ. 3.1.9)। जीव को ज्ञान स्वरूप में स्वीकार किया जाता है। जीव का परमात्मा में अधीनत्व और अंशत्व निरूपित है। वह जीव अस्वतन्त्र कर्म के अनुसार संसार-चक्र में सञ्चरण करता है। मुक्तात्मा के जीव का ज्ञान स्वरूप अन्य मुक्तात्माओं द्वारा समान रूप से स्वीकार किया जाता है। इस दर्शन में जीव के तीन प्रकार का निरूपण है।

**यथा-**

1. बद्ध- अनादि कर्मपाशों के द्वारा बद्ध जीव देव, मनुष्य आदि से भिन्न होते हैं।
2. मुक्त- जो कर्म-पाश के नाश के लिये प्रकृति सम्बन्ध से युक्त ईश्वर सायुज्य ही प्राप्त करते है, वे मुक्त हैं।
3. नित्य- नित्यों का कभी भी कर्मबन्ध अथवा प्रकृतिसम्बन्ध नहीं होता है।

नित्य बद्ध नहीं और उनकी मुक्ति की अपेक्षा भी नहीं होती है। ईश्वर की आज्ञा से नित्य-विभूति स्थान वैकुण्ठ में भगवान की नित्य सेवा में रत होते हैं।

**''शुष, गरूड़ विष्वक्सेनः, द्वादश आलवार पुरूषाः''**
**नितयसूरि, यह परम्परा में है।**

## अचित् तत्व (प्रकृति/जगत्)

परमात्मा शेष रूप से अचित् रूप में माना जाता है। यह अचित् तत्व प्रकृति तत्व के रूप में व्यवहृत है। अचित् तत्व जड़ रूप है, ऐसा सिद्धान्त है। यह परमात्मा अङ्ग और अस्वतन्त्र होता है। जीव का भोग्य होने से ही अस्वतन्त्र रूप में व्यवहार होता है। अचित् तत्व त्रिगुणात्मक होता है। त्रिगुण सत्व, रजस् और तमस् होते हैं। यह जड़ रूप अचित् तत्व सत्य है, ऐसा विशिष्टाद्वैत दर्शन का सिद्धान्त है।

## ईश्वर (ब्रह्म)

चित्-अचित् विशिष्ट अद्वैत तत्व ही ईश्वर कहलाता है। परमात्मा में चिदचित्त तत्व अपृथक-विशेषण सम्बन्ध से (अङ्ग-अङ्गि भाव से) नित्य होता है। ईश्वर नित्य, अनन्त, कल्याण गुण गण होता है। जड़त्व, अनित्यत्व अदि हेय गुण वर्जित होने से निर्गुण यह परमात्मा निर्विशेष होता है, ऐसा विशिटाद्वैत प्रक्रिया विद्यमान है। उपनिषद् में विद्यमान परमात्मा का निर्गुण बोधक वाक्यों के हेयगुणाभाव बोधकता द्वारा प्रामाण्य है। परमात्मा सदैव सविशेष है। उसकी सृष्टि भी सविशेष है, ऐसा विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। परमात्मा का अभिन्न निमित उपादानरूप जगत्कारणत्व स्वीकार किया जाता है। अर्थात् परमात्मा जगत्कार्य के प्रति उपादान कारण होते हुए निमित्त कारण भी होता है, यह सिद्धान्त है। परमात्मा के सर्वत्र स्वतन्त्र होने से लक्ष्मी स्वेच्छा से परमात्माधीन होती है, ऐसा उनका मानना है। भगवान् ही अनुग्रह शक्ति, करूणा शक्ति, स्वतन्त्र और नित्य, यह

विशिष्टाद्वैत दार्शनिक निरूपित करते हैं। ईश्वर सर्वात्मक, सर्वानुगत, सर्वव्यापक और देश, काल वस्तु-परिच्छेद के अभाव से अनन्त है, ऐसा विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में सिद्ध होता है। भगवान् के ज्ञान, शक्ति और सत्यानन्द आदि स्वरूप धर्म हैं।

## 16.2.6 बन्ध-मोक्ष विचार

अनादि, कर्म, वासना के द्वारा जीव का स्वरूप आवृत्त होता है। जीव का कर्म-निमित्त से प्रकृति-सम्बन्ध से ही बन्ध होता है। बन्ध परमात्मा के अंश का विस्मरण ही है। बद्ध जीव के कर्म-बन्धन नाश से प्रकृति सम्बन्ध का विरह होता है। प्रकृति-सम्बन्ध के वियोग से स्वरूप-अवस्थान ही कैवल्य है, ऐसा विशिष्टाद्वैतवेदान्ती निरूपित करते हैं। कैवल्य क्या है तो कहते हैं, ज्ञान योग द्वारा चित् मात्र के स्वरूपावगति है। कैवल्य परमार्थ नहीं किन्तु ईश्वर सायुज्य ही मोक्ष है, वही परम पुरूषार्थ है। सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य में ईश्वर-सायुज्य ही मोक्ष है, अन्यत्र मोक्ष शब्द गौण है। तो उक्त है- ''सालोक्याद्या: प्रभेदा: सायुज्यस्यैव तत्वात् तदितरविषये मोक्षशब्दस्तु भाक्त:'' (तत्वमुक्ताकलाप:) इस दर्शन में युक्तात्मा-परमात्मा के आनन्दानुभव में तारतम्य स्वीकार नहीं है। सायुज्य परम मुक्ति में मुक्त भगवान के शेषरूपत्व को प्राप्त कर उनकी सेवा में रत (संलग्न) होते हैं। विशिष्टाद्वैत परम्परा में ईश्वर सायुज्य ही मुक्ति है। इनके द्वारा जीवन्मुक्ति स्वीकृत नहीं है।

## 16.2.7 मोक्षोपाय विचार

बद्ध जीव के मोक्ष के लिए प्रकृष्ट उपकारक ही मोक्ष का उपाय है। वह दो प्रकार का है- सिद्धोपाय और साध्योपाय। परमात्मा का अनुग्रह ही जीव के मोक्ष-प्राप्ति में सिद्धोपाय कहलाता है। अत: नित्य सिद्ध ईश्वर ही सिद्धोपाय है। साध्योपाय कर्मयोग-ज्ञानयोग-भक्तियोग और प्रतिपत्ति है। विशिष्टाद्वैतदर्शन के अनुसार भक्ति और प्रतिपत्ति प्रधान रूप से मोक्षोपाय है। कहा गया है- ''भक्ति प्रपत्तिभ्यां प्रपन्न ईश्वर एवं मोक्ष ददाति। अतस्तयोरेव मोक्षोपायत्वम्'' - (यतीन्द्रमतदीपिका)/कर्म योग और ज्ञान योग में अविच्छिन्न भगवद् भक्ति की व्युत्पत्ति मुख्य रूप से मोक्षोपायत्व है। ज्ञानयोग से जीव की स्वरूपावगति, जड़ प्रकृति से आत्मा का भेद और परमात्मा का शेषत्व ये विषय ज्ञात होते हैं। ईश्वर के शेषत्व द्वारा अपनी स्वरूपावगति ही ज्ञानयोग कहलाती है।

### भक्ति-

भागवत्प्रीति रूप ज्ञान ही भक्ति है। निष्कल्मष-निष्कारण-प्रीतिरूप ज्ञानसन्तति भक्ति है, ऐसा व्याख्यायित है। कहा भी गया है-

**''भक्ति: मुक्तेरूपाय: श्रुतिशतविहित: सा च धी: प्रीतिरूपा:।''**
**(तत्वमुक्ताकलाप:)**

टिप्पणी

**''महनीयविषये प्रीतिः भक्तिः, प्रीत्यादयश्च ज्ञानविशेषाः'' (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या)**

**प्रपत्ति-**

विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रपत्ति स्वतन्त्र रूप से मोक्षोपाय के रूप में निरूपित है। न्यास, शरणागति, आत्म समर्पण और आत्मनिक्षेप शब्द तात्पर्य से प्रपत्ति रूप अर्थ के लिए प्रपञ्च करते हैं।

इस प्रपत्ति के पाँच अंग होते हैं। यथा-

1. अभिगमन- जप आदि द्वारा भगवदुसमर्पण।
2. उपादान- पूजा-द्रव्य संग्रह
3. इज्या- विष्णु पूजा
4. स्वाध्याय- आगम का अध्ययन
5. योग- अष्टाङ्ग योग का अनुष्ठान

मोक्ष अथवा मोक्षसाधन के सम्पादन में ''अहम् समर्थः'' ऐसा निश्चित कर परिपूर्ण श्रद्धा द्वारा भगवान में शरणागति ही प्रपत्ति कहलाती है। कहा गया है-

**''अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।**
**तदेकोपायतायां च प्रपत्तिः शरणागतिः।'' (प्रपन्नपारिजात)**

विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुसार भक्ति मार्ग में वैसे त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है। किन्तु प्रपत्ति मार्ग में तारतम्य के बिना सभी का अधिकार निरूपित है। ''प्रपत्तिः भक्तिमार्गात् भिद्यते।'' भक्ति तो प्रारब्ध कर्म को छोड़कर अन्य सभी कर्मों का नाश करती है। प्रारब्ध का भोग द्वारा ही क्षय होता है। किन्तु प्रपत्ति सभी प्रकार के कर्म के साथ प्रारब्ध का भी नाश करने के कारण से आशुमोक्षकारिणी कहलाती है।

## 16.3 निम्बार्क आचार्य का द्वैताद्वैत दर्शन

### 16.3.1 आचार्य का जीवन-वृतान्त

भक्ति वेदान्त के आचार्य निम्बार्क हैं। वेदान्त पारिजात सौरभ नामक भाष्य के प्रणेता निम्बार्काचार्य हैं। इस आचार्य का अपर नाम निम्बादित्य और नियमानन्दाचार्य है। सनत्कुमार के शिष्य नारदमुनि के शिष्य निम्बार्क है। रामानुज से परवर्ती कालीन निम्बार्काचार्य हैं। जि.आर. भाण्डारकार के मत में 1162, इसमें पाँचवें शतक में निम्बार्क हैं। निम्बार्क तेलेगु प्रदेशीय थे। पिता जगन्नाथ और माता सरस्वती थे। निम्बार्काचार्य के नाम के अनुसार

कालान्तर में जन्म स्थान का नाम निम्बापुर हुआ। अब निम्बापुर का नाम नाईडुपत्तनम है। एक कथा प्रचलित है- कोई भिक्षार्थी निम्बार्काचार्य के घर आए। भिक्षार्थी ने कहा कि सूर्यास्त होने पर भिक्षा स्वीकार नहीं करता हूँ। आचार्य के घर में भोजन नहीं था, साधन भी नहीं था। जब तक भोजन बना तब तक सूर्य अस्त हो गया, इससे निम्बार्काचार्य ने मन में कष्ट अनुभूत करके भगवान से प्रार्थना की। तब भगवान सुदर्शन चक्र स्थापित हुए। वह चक्र सूर्य के समान प्रकाशित था। उसे देखकर भिक्षार्थी ने भोजन किया। अतः आचार्य का अपर नाम नियमानन्द है। आचार्य कृष्ण भक्त थे। आचार्य द्वारा जीवन का अधिक समय मथुरा में यापन किया गया। इस प्रकार आचार्य का जीवनवृतान्त है।

## 16.3.2 द्वैताद्वैतसिद्धान्त का परिचय

द्वैताद्वैत के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य हैं। यह वाद अंशरूप में भेदाभेदवाद भी कहा जा सकता है। निम्बार्कानुसारी कहते हैं कि अंश-अंशी सम्बन्ध, भेदाभेद सम्बन्ध और द्वैताद्वैत सम्बन्ध समानार्थक हैं। षड्ग वेद, धर्म, मीमांसा के अध्ययन के पश्चात् वैराग्यवान भगवान के प्रसाद के आकांक्षी गुरू भक्त मुमुक्षु इस शास्त्र के अधिकारी हैं। इस सिद्धान्त में भक्त का उत्तम स्थान होता है। यहाँ दो तत्व होते हैं। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। स्वतन्त्र ब्रह्म है। अस्वतन्त्र के दो भाग हैं- जीव और जड़। जड़ के तीन भाग हैं- अप्राकृत, प्राकृत और काल। द्वैताद्वैतवादियों के द्वारा जगत् और ब्रह्म का स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध स्वीकृत है। जीव-ब्रह्म का भेदाभेद जल-तरंग के समान होता है। भेदाभेद प्रतिपादक श्रुतियाँ हैं- ''यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयनि अभिसंविशन्ति च (तैत्तिरीयोपनिषद्), ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्योपनिषद्) इत्यादि। ये त्रिवृत्करण स्वीकार करते हैं। इनके मत में जीव कर्ता, भोक्ता, नित्य, चैतन्य स्वरूप अणु परिमाण और ज्ञान स्वरूप होता है। जीव ब्रह्म का अंश विशेष है, ऐसा ये स्वीकार करते हैं। जीव की चित् रूपता का विस्मरण ही अविद्या है, ऐसा इनका सिद्धान्त है। कर्म द्वारा चित्तशुद्धि, चित्तशुद्धि द्वारा अविद्या का निवारण होता है। उससे ज्ञान के प्रति कर्म के सहकारी कारणत्व को ये स्वीकार करते हैं। ये भक्ति, ध्यान, उपासना, यज्ञ आदि कर्म को ज्ञान साध न के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके मत में जीव का चिदात्मा में अवस्थान ही मुक्ति है। प्रारब्ध कर्म का भोग से ही क्षय होता है। जीव मुक्त अवस्था में भी ब्रह्म के अंश रूप में रहता है। जीवों का कर्मफलदाता ब्रह्म ही है। परमेश्वर के छः ऐश्वर्य हैं। ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, तेज और ऐश्वर्य। यहाँ तीन अवतार हैं। गुणावतार, पुरूषावतार और लीलावतार। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन गुणावतार हैं। स्वरूपावतार, आवेशावतार और शंक्यांशावतार लीलावतार के तीन भाग हैं। और भी, इस सिद्धान्त में राम, नृसिंह और कृष्ण पूर्णावतार रूप में प्रसिद्ध हैं। मत्स्य, वामन, कुर्म, वराह, ये स्वरूपावतार रूप से प्रसिद्ध हैं। परशुराम, सनत्कुमार, नारद और कपिल, चार शाक्यांशावतार हैं। इनके मत में ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वनियन्ता होता है। यहाँ ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्तिरीयोपनिषद्), ''यः सर्वज्ञ सर्वाविद्'' इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म के सर्वज्ञत्व

टिप्पणी

में प्रमाण है, ऐसा ये स्वीकार करते हैं। इनके मत में अक्षर, ईश्वर, जीव और जगत् चार रूप से ब्रह्म पूर्ण है।

## 16.4 मध्वाचार्य का द्वैत वेदान्त दर्शन-

मध्वाचार्य की दार्शनिक चिन्तन पद्धति द्वैतदर्शन प्रसिद्ध है। द्वैतवेदान्त दर्शन में परमात्मा स्वतन्त्र तत्व है। उसके अधीन जीव जड़ पदार्थ अस्वतन्त्र हैं। इस प्रकार जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्वतः परमात्मा से भिन्न होता है। भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है। यही द्वैतदर्शन स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र दो प्रकार से विभक्त होकर प्रवर्तित होता है। स्वतन्त्र तत्व भगवान विष्णु ही है। अस्वतन्त्र तत्व भावाभाव मुख से पुनः दो प्रकार का विभाजित है। वहाँ भाव पदार्थ चेतन, अभाव पदार्थ अचेतन प्रपञ्च है, ऐसा पदार्थ-विभाग होता है। उक्त है-

**''स्वतन्त्रम् अस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्वमिष्यते।**
**स्वतन्त्रे भगवान् विष्णुः भावाभावौ द्विधोरत्।।'' (तत्वसंख्यान, श्लोक)**

द्वैतवेदान्त दर्शन का सार इस प्रकार है। यथा-

1) श्रीमन् नारायण ही सर्वोत्तम हैं।

2) जगत् परमार्थतः सत्य है।

3) जीव परमात्मा से भिन्न है।

4) सभी जीव भगवान के दास हैं।

5) जीवों में परस्पर तारतम्य नित्य है।

6) भक्ति ही मोक्ष का उपाय है।

द्वैतवेदान्त दर्शन में भेद पारमार्थिक रूप में निरूपित है। भेद का नाम उससे इतर विलक्षण पदार्थ का स्वरूपत्व है। और वह पाँच प्रकार का भेद सभी अवस्थाओं में नित्य रूप से होता हे। उसमें जीव-ईश्वर का भेद, जीव-अजीव का भेद, जड़-जीव का भेद, जड़-ईश्वर का भेद, जड़-जड़ का भेद, ये भेद के पाँच प्रकार हैं। ये पाँच भेद सभी अवस्थाओं में नित्य हैं। इन भेदों में जीव-ईश्वर का भेद ही मुख्य होता है। अतः यह जीव-ईश्वर का भेद ही द्वैत दर्शन का मुख्य प्रमेय है, ऐसा परिगणित होता है।

### 16.4.1 प्रपञ्च सत्यत्व विचार

द्वैतमत में मुक्ति में भी जीव का तारतम्य और अस्वातन्त्रय अंगीकृत है। प्रपञ्च सृष्टि भगवान का लीलाकार्य है, ऐसा माध्वसिद्धान्त है। अतः तीनों कालों में भी प्रपञ्च सत्य,

विष्णु के वश में स्थित कहा जाता है। प्रलयकाल में भी प्रपञ्च तात्विक रूप से जीन नहीं होता है। किन्तु कार्यरूप ब्रह्माण्ड विष्णु में सूक्ष्मरूप से अवस्थित होता है, ऐसा सिद्धान्तसार है।

## 16.4.2 प्रमाण विचार

प्रमेय के स्वरूप-बोध के लिए प्रमाण दार्शनिकों के द्वारा निरूपित हैं। जिनके द्वारा यथार्थवस्तु-स्वरूप गृहण होता है, वह प्रमाण होता है। और वह प्रमाण प्रधान रूप से दो प्रकार से विभक्त है। केवल प्रमाण और अनुप्रमाण। प्रमेय का यथार्थ विज्ञान ही केवल प्रमाण कहलाता है। ज्ञान के साधन इन्द्रियाँ, युक्ति और आगम अनुमान प्रमाण व्यवहृत है। यह प्रत्यक्ष-अनुमान और आगम पुनः तीन प्रकार से अनुप्रमाण विभाजित है। उसमें दोष रहित इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष ही प्रत्यक्ष है। दोष रहित युक्ति ही अनुमान कही जाती है। अनुमान स्वार्थ और परार्थ दो प्रकार से विभक्त है। परोपदेश (अन्य को उपदेश) की अनपेक्षा करके ही विषय के अवबोध के लिए की गई युक्ति-अनुमान ही स्वार्थानुमान कही जा सकती है। अन्य को बोध कराने हेतु प्रयुक्त युक्ति परार्थानुमान प्रसिद्ध है। परार्थानुमान में पाँच अवयव हो, ऐसा न्यायविद् कहते हैं। किन्तु पञ्च अवयव भी नियमपूर्वक परार्थानुमान प्रयोजक हैं, ऐसा द्वैत विदान्त की प्रक्रिया में स्वीकार नहीं किया जाता है।

निर्दुष्ट वाक्य आगम रूप में व्यपदिष्ट है। आकांक्षा-योग्यता-सन्निधि सहित पदसमूह ही वाक्य के रूप में कहा गया है। यह वाक्य पौरूषेय और अपौरूषेय रूप से दो प्रकार का विभक्त है। ऋषियों के द्वारा योग बुद्धि से साक्षात्कृत शब्द राशि अपौरूषेय आगम होता है। पुरूष-बुद्धि द्वारा विरचित वाक्य पौरूषेय आगम कहलाते हैं। इस प्रकार द्वैतवेदान्त अनुगुण ज्ञेय-पदार्थों की यथार्थ-ज्ञानोत्पत्ति में तीन प्रमाण होते हैं।

## 16.4.3 विष्णु तत्व

द्वैतवेदान्त सम्प्रदाय में विष्णु का ही सर्वोत्तमत्व स्वीकार किया जाता है। सभी आगमों का विष्णुतत्व में ही महत् तात्पर्य है। विष्णु ही ब्रह्म शब्द से कहा जाता है। वही सर्वाधिक, अखिल दोष वर्जित, सकल कल्याण गुणपूर्ण, सर्वेश्वर, इस प्रकार से उपवर्णित है। विष्णु ही मोक्ष के प्रति भी कारण है। इस सम्प्रदाय में विष्णु का जगत् का निमित्त कारणत्व स्वीकृत है। लक्ष्मी जगत् की उपादान कारण है। यह लक्ष्मी विष्णु के अधीन है। लक्ष्मी विष्णु के संकल्पानुसार जड़ प्रकृति के सृष्टि-स्थिति-लय कार्यों में सहकारी होती है। इस प्रकार लक्ष्मी तत्व स्वयं में संस्थापित करके विष्णु जीव-जड़ पदार्थों का अन्तर्यामी होते है, ऐसा सिद्धान्त है।

टिप्पणी

## 16.4.4 जीव-स्वरूप

द्वैतदर्शन के अनुसार भगवान नारायण से भिन्न सूक्ष्म चेतन ही जीव है। सकलगुण युक्त जीव होते हैं। किन्तु वे गुण सभी जीवों में स्फुट अभिव्यक्त नहीं होते हैं। भगवान के यथार्थ ज्ञान के अभाव से जीव इस लौकिक संसार में जनन-मरण के चक्र में गिरता है। लिङ्ग शरीरान्तः स्थित चिदानन्दमय जीव होता है। यह जीवगण तारतम्य विशिष्ट सिद्धान्त है। सात्विक-राजसिक-तामसिक के भेद से जीव तीन प्रकार से विभक्त है। देव आदि का अन्तर्भाव सात्विक जीवगण में होता हे। ये स्वरूप से ही विष्णु भक्त होते हैं, कालक्रम से वैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं। मनुष्य राजसी जीवगण में अन्तर्निहित होते हैं। ये स्वभावानुसार भू-स्वर्ग-नरक लोकों में सञ्चरण कर नित्य संसारी होते हैं। अध र्म-मार्ग में प्रवृत्त मनुष्य और राक्षसों का तामस जीवगण में अन्तर्भाव होता है। ये सभी जीव प्रकृति सम्बन्ध से बद्ध होते हैं। राग, द्वेष आदि के संसर्ग से विषय भोग में प्रवृत्त होते हैं। अस्वातन्त्रय, अनेकत्व और अणु रूपतव जीव का लक्षण है, ऐसी माध्व वेदान्त की प्रक्रिया है।

## 16.4.5 मोक्ष-साधन

बद्ध जीव अपने स्वरूप की अवगति के प्रति मोक्ष-साधनों में रत्न करते हैं। द्वैत मतानुसार चार मोक्ष के साधन होते हैं। विषय वैराग्य, सत्कर्माचरण, ब्रह्मविचार ओर भगवत्भक्ति। विषय सुख के अनुभूत करके, उसके अनित्यत्व और असुखत्व को जानकार उसमें विरक्ति ही विषय वैराग्य कहा जाता है। शास्त्रेक्त प्रकार से नित्य-नैमित्तिक कर्मो का आचरण मोक्ष साधन होता है। शास्त्र चिन्तन, और श्रवण-मन-निदिध्यासन ब्रह्मविचार रूप मोक्ष-साधन होते हैं। भगवान की अनुग्रह-प्राप्ति के लिये उस परमेश्वर में अविच्छिन्न प्रीति ही भक्ति कहलाती है। भक्ति के द्वारा ही नारायण सम्प्रीत होते हैं। अतः भक्ति ही मुक्ति का परम साधन है। और वह भक्ति ज्ञानपूर्विका हो। नारायण ही सर्वोत्तम है, ऐसी भगवान में सुदृढ़ प्रीति होती है, वह भक्ति शब्द से कही जाती है। श्रवण, मनन आदि द्वारा सम्पन्न ज्ञान भगवान् में भक्ति को उत्पन्न करता है। अतः नैजसुखानुभूति रूप मुक्ति के लिए शुद्ध भक्ति ही परम उपाय है, ऐसा द्वैतवेदान्त दर्शन का सिद्धान्त है।

## 16.4.6 मुक्ति स्वरूप

अन्यथा स्थिति को छोड़कर स्वरूप स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। जीव अपने स्वरूप-ज्ञान को भूलकर संसारासक्त (संसार से आसक्त) होकर दुःख का अनुभव करता है। उसमें अविद्या ही बन्ध का कारण है। उस अविद्या से निवृत्त होकर जीव के स्वरूपानन्द का आविर्भाव होता है। अतः मुक्ति निजसुखानुभूति ही है। और वह मुक्ति चार प्रकार से विभक्त है। भगवान की सन्निधि में ही उसके अवच्छिन्न दर्शन को ही सालोक्य मुक्ति, ऐसा व्यपदेश किया गया है। उपासना आदि द्वारा भगवान के सन्निकृष्ट देश की प्राप्ति

टिप्पणी

ही सामीप्य मुक्ति कही जाती है। भगवान के ही शंख, चक्र आदि के सहित तत्व को सारूप्य-मुक्ति कहते हैं। भगवान नारायण में ही आश्रयपूर्वक आनन्द का अनुभव सायुज्य मुक्ति है, ऐसा उपदिष्ट है।

## 16.5 श्रीकण्ठाचार्य का शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन

आचार्य श्रीकण्ठ ने ब्रह्मसूत्र के ऊपर एक भाष्य की रचना की। यह भाष्य श्रीकण्ठ भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य में प्रतिपादित मतवाद शैवविशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है।

### 16.5.1 ब्रह्म का स्वरूप

जगत का जन्म, स्थिति, प्रलय का आवरण (जीव की नित्यसिद्ध ज्ञान, क्रिया और शक्ति का आवरणरूप बन्धन) और अनुग्रह (मुक्ति-प्रदान) पञ्चकृत्य जिससे उत्पन्न हुए, और जो चिदचित्प्रपञ्चाकार से परिणामी परमशक्ति विशिष्ट, और सभी शास्त्रों का तात्पर्य विषयी भूत, भव, शिव आदि से प्रकाशित, और सर्वकलङ्ग रहित निरतिशय ज्ञानानन्द महिमा से युक्त, उस प्रकार का शिव तत्व ही पर ब्रह्म है। इस दर्शन में उस शिव तत्व ब्रह्म के अनेक नाम हैं। उनमें प्रसिद्ध हैं-

1) सभी जगत सदा विराजमान होने के कारण यह भव कहलाते हैं।

2) सभी के संहारक होने से यह शर्व माने जाते हैं।

3) निरूपाधिक परमैश्वर्य विशिष्ट होने से यह ईशान कहलाते हैं।

4) ब्रह्म आदि स्थावरान्त, चेतन, अचेतन के स्वामी होने ये यह पशुपति कहलाते हैं।

5) संसार-ताप के दाहक होने से यह रूद्र कहे जाते हैं।

6) नियामक रूप से सभी चेतन के भय का हेतु होने से यह भीम कहलाते हैं।

7) स्वमहिमा से ही प्रकाशित होने से यह महादेव रूप में वर्णित हैं।

8) अशेष कल्याण गुणयुक्त होने से यह शिव कहलाते हैं।

9) अखिल जगत के शासक होने से यह परमेश्वर कहलाते हैं।

10) सुख स्वरूप होने के कारण यह शम्भु के रूप में अभिधेय हैं।

### 16.5.2 जगत का स्वरूप

चित्-अचित् प्रपञ्चाकार परम शक्ति विशिष्ट परमेश्वर इस जगत के अभिन्न निमित्त-उपादान

टिप्पणी

कारण हैं। परमेश्वर चित् तत्व और अचित् तत्व को स्वयं से विभक्त करके प्रपञ्चाकार रूप में परिणत हुए। परमेश्वर का चित् तत्व साक्षात् प्रपञ्चरूप में परिणत है। इस चित् तत्व का अपर नाम चिदम्बर और चिदाकाश है। चिदाकाश परमेश्वर का शरीरभूत होता है। 'आकाशशरीरं ब्रह्म'' (तैत्तिरीयोपनिषद् 1/6/2), ''आकाशः ह वै नामरूपयोः निर्वहिता'' (छान्दोग्योपनिषद् - 8/14/1) आदि श्रुतियाँ यहाँ प्रमाण रूप हैं ऐसा शैवविशिष्टाद्वैतवादी कहते हैं। इस चित्-शक्ति का नाम है- प्रज्ञा, ज्ञानशक्ति, परम प्रकृति, माया, महामाया, पराशक्ति, परमसत्ता, परमाकाश, उमा, अम्बिका इत्यादि। यह चित्-शक्ति इच्छात्मिका, ज्ञानात्मिका और क्रियात्मिका होती है। परमेश्वर के अधिष्ठित अव्यक्त से आकाश, आकाश विशिष्ट परमेश्वर से वायु, आकाश, वायु विशिष्ट परमेश्वर से तेज, आकाश, वायु तेज विशिष्ट परमेश्वर से जल, आकाश, वायु, तेज, जल विशिष्ट परमेश्वर से पृथिवी उत्पन्न होती है।

### 16.5.3 जीव का स्वरूप

अनादि काल से अज्ञान से उत्पन्न संस्कारों के द्वारा विधीत विचित्र कर्म-फल के भोगानुकूल देवता, तिर्यग आदि शरीरों में प्रवेश, जन्म और मृत्यु के अधीन, अनन्त ताप को सहन करने वाला और शिव प्रसाद द्वारा प्राप्त शिवसम, नितिशय और ज्ञानानन्दस्वरूप जीव होता है। मुक्ति की दशा में परमेश्वरापन्न नित्य जीव बाह्य करण से निरपेक्ष होकर मन से निरतिशय स्वरूपानन्द को अनुभव करता है। जीव अणुरूप और परमेश्वर का अंशविशेष है।

### 16.5.4 मोक्ष का स्वरूप और मोक्षोपाय

इस शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में यद्यपि, जीव शिव रूप परब्रह्म से भिन्न है तथपि ''अहं ब्रह्मास्मि'', और ''शिवोऽमस्मि'', इस प्रकार शिव से भेद भावना द्वारा पशु भाव में निवृत्ति होने पर ''अहं नित्यः निरतिशयः आनन्दस्वरूपः साक्षिस्वरूप निष्कलन्नः शिवः अस्मि'', इस प्रकार सगुणब्रह्मरूपशिवत्व-प्राप्ति ही मुक्ति है। इस मत में ज्ञान-कर्म का समुच्चय ही मोक्ष के प्रति साधन है। ज्ञान-कर्म का समुच्चय, यहाँ ज्ञान उपासना और निदिध्यासन है।

## 16.6 श्रीपति का वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन

वीरशैवविशिष्टाद्वैत शक्तिविशिष्टद्वैत और विशेषाद्वैत प्रसिद्ध है। यह दर्शन भारतीय शैव दर्शन परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते हैं। श्रीपति पण्डित प्रवर द्वारा विरचित श्रीकर ब्रह्मसूत्र भाष्य द्वारा यह दर्शन चौदहवीं शताब्दी में प्रवर्धित है। शक्ति विशिष्टाद्वैत प्राधान्यरूप से तीन पदार्थों को वर्णित करते हैं। पति, पशु और पाश पदार्थ हैं। इस सिद्धान्त में परम

टिप्पणी



ब्रह्म ही पति शब्द का वाच्य होता है। चिदचिदविशिष्ट पति इस दर्शन का सार है। पशु शब्द का वाच्य जीव शिव का अंश होता है। शक्ति विशिष्ट जगत् ही पाश शब्द द्वारा कहा जाता है। वह यह जगत् परमार्थतः सत्य है। शिवांश जीव मुक्तिकाल में शिव सायुज्य को प्राप्त करता है, ऐसा इस दर्शन का परम तात्पर्य है। इस दर्शन में शिव-शक्ति, जीव-ईश्वर और भेदाभेद (द्वैताद्वैत) स्वीकृत हैं। यह जीव-ईश्वर का भेदाभेद काल्पनिक नहीं है किन्तु पारमार्थिक ही है।

## 16.6.1 पशु, पति, पाश का स्वरूप

इस वीरशैवदर्शन में पशु शब्द द्वारा जीव अभिधेय है। यह जीव शिव का अंश, और परमात्मा का शक्ति विशिष्ट होता है, ऐसा सिद्धान्त का आशय है। वीरशैवदर्शन में पति पर ब्रह्म होता है। एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द शिव तत्व ही परम ब्रह्म रूप में अभिधेय होता है। यही शिव-तत्व सभी के सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कारण है, ऐसा कहते हैं। इसमें ''भुवनानि इति शिवः', इस व्युत्पत्ति से सकल लोकों का आश्रय शिव तत्व जाना जाता है। यही पर शिव तत्व शिवागम लिङ्ग शब्द द्वारा व्यपदिष्ट हैं। परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप का स्फुरण ही विमर्श शक्ति है। परमात्मा विमर्श शक्ति के द्वारा ही जगत् के सृष्टि-स्थिति-लय का कारण होता है। यह विमर्श शक्ति सभी पदार्थों में व्याप्त होती है। अतः सम्पूर्ण जगत् जैसे शिवमय है वैसे शक्ति विशिष्ट भी होता है, ऐसा शक्ति विशिष्टाद्वैती कहते हैं। कार्य रूप जगत् ही पाश शब्द से इस दर्शन में अभिहित है। पाश शक्ति विशिष्ट परमात्मा का परिणामरूप होता है। इस विशिष्टाद्वैत दर्शन में जगत सत्यत्व द्वारा ही जाना जाता है। 'स्वर्ण कुण्डल', यहाँ उपादान कारण स्वर्ण तत्वतः नाश के बिना भिन्न कुण्डल उत्पन्न होता है। वहाँ स्वर्ण का कुण्डल रूप में परिणाम अविकृत परिणाम कहा जाता है। इस प्रकार ही परमात्मा स्वयं की शक्ति के अंश से जगत का उपादान कारण और स्वयं के अंश से निमित्त कारण होता है। अतः वीरशैवदर्शन में जगत् रूप कार्य के प्रति शिव का अभिन्न निमित्त-उपादान कारणत्व स्वीकृत है। यह जगत् शक्ति विशिष्ट ब्रह्म-परिणाम है। अतः जगत् भी शक्ति विशिष्ट ही होगा। शक्ति रहित कोई पदार्थ नहीं रहता है। पाश रूप यह जगत सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैव दर्शन का सार है।

## 16.6.2 प्रमाण-स्वरूप

वीरशैवदर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, तीन प्रमाण हैं। संशय और विपरीत ज्ञान से रहित ज्ञान शक्ति ही प्रत्यक्ष कही जाती है। दृढ़व्याप्ति ज्ञान द्वारा परोक्ष अर्थ का अवबोधक प्रमाण ही अनुमान कहलाता है। वेद, शैवागम और आप्त वाक्य आगम प्रमाण के रूप में स्वीकार होते हैं।

टिप्पणी

## 16.6.3 मोक्ष का स्वरूप

वीरशैवदर्शन के अनुसार पर ब्रह्म लिङ्ग और अङ्ग रूप में भासता है। अङ्ग का अर्थ जीवात्मा और लिङ्गत्व से परशिव ही कहे जाते हैं। लिङ्गगत शक्ति अङ्गरूप जीवात्मा में भक्ति रूप में रहती है। शक्ति-भक्ति का एकत्व ही लिङ्ग-अङ्ग सायुज्य रूप में व्यवहृत है। लिङ्ग-अङ्ग रूप शिव-जीव का सायुज्य ही वीरशैव दर्शन में मोक्ष कहा गया है।

### पाठगत प्रश्न 16.1

1. विशिष्टाद्वैत दर्शन में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं?
2. विशिष्टाद्वैत दर्शन में भक्ति क्या है?
3. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रपत्ति क्या है?
4. विशिष्टाद्वैत में तीन सत्य क्या है?
5. विशिष्टाद्वैत दर्शन में भगवान् किस प्रकार के होते हैं?
6. विशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव के कितने भेद हैं?
7. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रत्यक्ष क्या है?
8. द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक कौन हैं?
9. द्वैताद्वैतवाद में प्रधान रूप से कितने अवतार हैं और वे क्या हैं?
10. विशिष्टाद्वैत दर्शन में मुक्ति क्या है?
11. शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव कैसा होता है?
12. वीरशैव दर्शन में पति क्या है?
13. वीरशैव दर्शन में प्रमाण कितने हैं?
14. वीरशैव दर्शन का सार क्या है?
15. वीरशैवदर्शन में पर ब्रह्म कैसा होता है?
16. द्वैतवेदान्त दर्शन में स्वतन्त्र कौन होता है?
17. द्वैतवेदान्त दर्शन का परमार्थ क्या है?

### पाठसार

विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तत्वत्रय विचार विहित है। चित् (जीव), अचित् (प्रकृति/जगत्) और चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर (ब्रह्म) तत्वत्रय हैं। वहाँ शेषत्व से चिदिचित् तत्वों का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा से चित्-अचित् तत्वों का अपृथक्भूत सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है। यह तत्वत्रय भी सत्य रूप है।

द्वैताद्वैत दर्शन में जीव कर्ता, भोक्ता, नित्य चैतन्य-स्वरूप, अणुपरिमाण और ज्ञान स्वरूप है। जीव ब्रह्म के अंश विशेष रूप है, ये स्वीकार करते हैं। जीव का चित् रूपता का विस्मरण ही अविद्या है, ऐसा इनका सिद्धान्त है। द्वैताद्वैतदर्शन में जीव का चिदात्मा में अवस्थान ही मुक्ति है। प्रारब्ध कर्म का भोग से ही क्षय होता है। जीव मुक्त अवस्था में भी ब्रह्म के अंश रूप में रहता है।

द्वैतवेदान्त दर्शन में परमात्मा स्वतन्त्र होता है। उसके अधीन जीव, जड़ पदार्थ अस्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्व अथवा परमात्मा से भिन्न हैं। भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र, ऐसे दो प्रकार से विभक्त होकर द्वैतदर्शन प्रवर्तित है। स्वतन्त्र तत्व भगवान् विष्णु ही हैं। शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में शिवतत्व ही पर ब्रह्म है। चिदचित्प्रपञ्चाकार परम शक्ति विशिष्ट परमेश्वर इस जगत का अभिन्न निमित्त-उपादान कारण है। चिदाकाश परमेश्वर का शरीरभूत होता है। मुक्ति की दशा में परमेश्वरापन्न नित्य जीव बाह्यकरण निरपेक्ष होते हुए मन से निरतिशय स्वरूपानन्द का अनुभव करता है। ''अहं नित्यः निरतिशयः आनन्दरूपः साक्षिरूप, निष्कलन्नः शिवः अस्मि'', इस प्रकार ही सगुण ब्रह्मरूप शिवत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है। इस मत में ज्ञान-कर्म का समुच्चय मोक्ष के प्रति साधन है।

वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन प्रधान रूप से तीन पदार्थों का वर्णन करता है। पति, पशु और पाश पदार्थ हैं। इस सिद्धान्त में पर ब्रह्म ही पति शब्द का वाच्य है। चिदचिद्वशिष्ट पति, ऐसा दर्शन का सार है। पशु शब्द का वाच्य जीव शिव का अंश होता है। शक्ति विशिष्ट जगत् ही पाश शब्द द्वारा कहा जाता है। वह यह जगत् परमार्थतः सत्य है। शिवांश जीव मुक्ति के काल में शिव-सायुज्य को प्राप्त करता है, ऐसा इस दर्शन का परम तात्पर्य है। इस दर्शन में शिव-शक्ति, और जीव-ईश्वर का भेदाभेद (द्वैताद्वैत) स्वीकृत है। यह जीव-ईश्वर का भेद काल्पनिक नहीं है किन्तु पारमार्थिक ही होता है।

## पाठ में आये हुए विषय

- विशिष्टाद्वैत दर्शन में ब्रह्म, जीव और जगत् तीनों सत्य होते हैं।
- विशिष्टाद्वैत दर्शन में भगवत् कृपा से ही मुक्ति होती है।
- सिद्धोपाय और साध्योपाय, विशिष्टाद्वैत दर्शन में दो प्रकार के मोक्षोपाय है
- ईश्वर चित्-अचित् विशिष्ट है, यह रामानुज दर्शन का मत है।
- जगत् और जीव परमात्मा के शरीरभूत है, यह विशिष्टाद्वैत दर्शन का सिद्धान्त है।
- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण विशिष्टाद्वैतवादी स्वीकार करते हैं।

टिप्पणी

- विशिष्टाद्वैतवादी सत्ख्यातिवादी होते हैं।
- द्वैताद्वैतवाद में ईश्वर स्वाभाविक गुण शक्ति आदि से युक्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होता है।
- द्वैताद्वैतवाद में जीव की चित्-रूपता का विस्मरण ही अविद्या है।
- द्वैताद्वैतवाद में जीव-ब्रह्म का भेदाभेद जल-तरंग के समान है।
- द्वैताद्वैतवाद में प्राधान्य रूप से तीन अवतार हैं।
- वीरशैव दर्शन में अङ्ग को जीवात्मा और लिङ्ग से परशिव ही कहे जाते हैं।
- पाशरूप यह जगत् सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैवदर्शन का सार है।
- वीरशैवदर्शन में पति परम ब्रह्म ही होता है।
- वीरशैवदर्शन में एकमेवद्वितीय सच्चिदानन्द शिवतत्व ही परम ब्रह्म के रूप में जाना जाता है।
- शिवविशिष्टाद्वैत दर्शन में शिवतत्व ही परम ब्रह्म है।
- शिवविशिष्टाद्वैत दर्शन में 'अहं नितयः निरतिशयः आनन्दस्वरूपः साक्षिस्वरूपः निष्कल्यः शिवः अस्मि'', इस प्रकार सगुण ब्रह्मरूप शिवत्व ही प्राप्ति ही मुक्ति है।
- द्वैतवेदान्त दर्शन में जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्व अथवा परमात्मा से भिन्न है।
- द्वैतवेदान्त दर्शन में भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है।

## पाठान्त प्रश्न

1. विशिष्टाद्वैत दर्शन में मोक्ष का स्वरूप क्या है?
2. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रत्यक्ष का स्वरूप क्या है?
3. विशिष्टाद्वैत दर्शन में बन्ध का स्वरूप लिखिए।
4. सिद्धोपाय और साध्योपाय, इसके आधार पर विशिष्टाद्वैतदर्शन की दिशा व्याख्यायित कीजिए।
5. ईश्वर-स्वरूप के आधार पर विशिष्टाद्वैत दर्शन की आलोचना कीजिए।
6. भक्ति का स्वरूप, विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर प्रतिपादित कीजिए।
7. विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार शब्द प्रमाण का वर्णन कीजिए।
8. विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर यथार्थ ख्याति की आलोचना कीजिए।
9. द्वैताद्वैतवाद में कितने अवतार हैं और वे कौन से हैं?

10. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार अविद्या क्या है?
11. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार गुणावतार कौन होते हैं?
12. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार भगवान् किस प्रकार के होते हैं?
13. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार जीव किस प्रकार का होता है?
14. वीर शैव दर्शन के आधार पर प्रमाण की आलोचना कीजिए।
15. वीरशैवदर्शन के आधार पर जीव का स्वरूप प्रतिपादित कीजिए।
16. वीरशैव दर्शन के आधार पर पति, पशु, पाश का स्वरूप वर्णित कीजिए।
17. शैवविशिष्टाद्वैत वेदान्त में मुक्ति क्या है?
18. द्वैतवेदान्त दर्शन के आधार पर जीव का स्वरूप प्रतिपादित कीजिए।
19. शैवविशिष्टाद्वैत वेदान्त में जगत का स्वरूप क्या है?
20. द्वैतवेदान्त दर्शन के अनुसार मोक्ष का स्वरूप वर्णित कीजिए।

## पाठागत प्रश्नों के उत्तर

1. प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण हैं।
2. प्रीतिरूप धी भक्ति है।
3. प्रपत्ति का नाम शरणागति है।
4. ब्रह्म, जीव और जगत्, ये तीनों सत्य हैं।
5. भगवान् चित्-अचित् विशिष्ट होता है।
6. जीव तीन प्रकार का है- बद्ध, मुक्त और नित्य।
7. साक्षात्कारि प्रमा का करण प्रत्यक्ष है।
8. द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य हैं।
9. गुणावतार, पुरूषावतार और लीलावतार।
10. 'अहं नित्य निरतिशयः आनन्दस्वरूपः साक्षिस्वरूपः निष्कलन्नः शिवः अस्मि', यही सगुण ब्रह्मरूप शिवत्वप्राप्ति ही मोक्ष (मुक्ति) है।
11. जीव नित्य, अणुरूप होता है।
12. वीरशैवदर्शन में पति परम ब्रह्म होता है।

टिप्पणी

13. तीन प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

14. पाशरूप यह जगत् सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैवदर्शन का सार है।

15. वीरशैवदर्शन में एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द शिवतत्व ही ब्रह्म रूप से कहा गया है।

16. द्वैतवेदान्त दर्शन में स्वतन्त्र भगवान विष्णु ही हैं।

17. ब्रह्म, जीव और जड़ जगत् का परस्पर भेद ही सत्य है, यह ही इस द्वैतवेदान्त दर्शन का परमार्थ है।

**।।सोलहवाँ पाठ समाप्त।।**